॥ श्री ॥

विषय	पृष्ठ

———.0:———

भूमिका ।

भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये ।
नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा गभीरमर्थं कतिचित् प्रकाशताम् ॥ १ ॥

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी हंसस्वरूपजी महाराज के व्याख्यान—विषय में कुछ कहना मानो सूर्यको दीपक लेकर दिखलाना है । प्रथम तो आपका भाषण ही स्वभाव से सरस और मधुर होता है, तिसपर भी युक्ति, प्रमाण, तथा दृष्टान्तोंसे परिपूर्ण होने के कारण सोना और सुगंध की कहावतको चरितार्थ करदेता है । व्याख्यानो के अन्तर्गत प्रत्येक विषय को श्रुति, स्मृति आदि संस्कृत ग्रन्थों से सिद्ध करना और फिर उसी तात्पर्य को, मुसल्मानों के कुरान, हदीस, तथा अंग्रेजों के इंजील (Bible) आदि से दिखाकर पुष्ट करदेना आप ही का काम है । अन्य व्याख्यानदाताओं से श्री स्वामीजी महाराज में और विशेषता यह है कि आप संस्कृत के अतिरिक्त अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि से भी पूर्ण परिचित है, इस कारण आपके व्याख्यान सब प्रकार के श्रोताओं को विशेष उपकारक होते है ।

प्रिय पाठको ! भारत वर्ष में ऐसा कौन प्रान्त और कौनसा प्रसिद्ध नगर है ? जहां कम से कम एकबार भी श्री स्वामीजीके व्याख्यानों की धूमधाम न मचगई हो । इस सम्बन्ध में दिग्दर्शन मात्र एक दो नगरों का संक्षिप्त समाचार उस समयके पत्रोंसे उद्धृत करके आपके सन्मुख उपस्थित किया जाता है ।

(१) लाहौर—यहा तीन सप्ताह अर्थात् २१ दिन लगातार रातके दस २ बजे तक आपके व्याख्यान होते रहे । दिन २ श्रोताओंकी भीड़ ऐसी बढ़ती गई कि, सभा भूमिमें तिल धरनेको स्थान शेष नहींरहता था।

विदा होते समय जब श्री स्वामीजी महाराजकी सवारी नगरसे स्टेशनको आरही थी उस समय साथ में कई सहस्र मनुष्योंकी इतनी भीड़ थी कि सड़कमें लोगोंको चलना कठिन होगया और नगरके बीच ठौर २ छत और झरोखोंसे पुष्पोंकी वर्षा ऐसी हुई कि, आपकी सेजगाड़ी फूलोंसे भर गई और सड़कोंमें जहां तहां फूल ही फूल दिखाई देनेलगे। उस समय एक घटना आश्चर्य जनक यह हुई कि, इस भीड़में एक मनुष्य आपकी गाड़ीके नीचे आगया और गाड़ीके चारों पहिये बराबर उसके शरीरके ऊपर होकर निकल गये, ऐसी दशामें लोगोंको उसके मरजानेका भय होगया था, परन्तु उसका एक बाल भी बांका नहीं हुआ और वह पूर्ववत् उत्साह पूर्वक सवारी के साथ स्टेशन तक पहुंचा। यह आपहीके महत्वका फल था। सविस्तर वर्णन देखनेकी इच्छा वाले पाठक गण मास दिसम्बर सन् १८९९ के सनातन धर्म गजट को लाहौरसे मंगाकर देखलें।

(२) पूना—यहां लगातार १२ व्याख्यान हुए। जगत्प्रसिद्ध पं० बाल गंगाधरतिलक स्वयं प्रबन्ध कर्त्ता थे और कई व्याख्यानोंमें सभापति के पद पर भी नियत थे। प्रोफ़ेसर जिन्सी जो पूनाके एक बड़े प्रसिद्ध विद्वान्थे वेदोंको पौरुषेय मानते थे, उनसेभी स्वामीजी महाराजका शास्त्रार्थ हुआ जिसमें श्री स्वामीजी महाराजने वेदोंका अपौरुषेय होना सभाके बीच सिद्ध करदिया।

आनन्दाश्रमके अधिकारी (प्रोप्राइटर) आपके व्याख्यानोंको श्रवण कर ऐसे प्रसन्न हुए कि, अपने आश्रम में छपे हुए सब ग्रन्थोंकी एक २ प्रति (कापी) जो सब मिल कर १२ मनके लगभग थी, आपके भेट की। पूनासे सतारेकी यात्राके समय नगर से स्टेशन तक जैसे आदरके साथ आपकी सवारी निकली थी, उससे पूना वासियोंका अपूर्व प्रेम प्रकट होता था। स्वयं मि० तिलक महोदयने श्री स्वामीजी महाराजको आग्रह पूर्वक एक प्रकारकी विचित्र सेजगाड़ी पर सवार करा, कई सहस्र मनुष्योंको संग

ले पूनाके बड़े २ विद्वान् तथा मान्य पुरुषोंके साथ आप की सवारीको स्टेशन तक पहुंचाया ।

और देखिये प्रत्येक व्याख्यानके अन्तमें किसी एक भक्तका इतिहास उसी विषयके सम्बन्धमें ऐसी मधुरतासे वर्णित होता है कि श्रोताओंके हृदय गद्गद होजाते हैं और नेत्रोंसे अश्रुधाराका प्रवाह चल पड़ता है। क्या सनातनधर्मी, क्या दयानन्दी, क्या ब्रह्मसमाजी, क्या नानकशाही, क्या मुसल्मान, ईसाई, सब आपके व्याख्यानों को श्रवण कर तत्काल मुग्ध होजाते हैं। जिस किसी महाशयने आपके व्याख्यानको एक बार भी श्रवण किया होगा वह इस मेरे लेखको किंचिन्मात्र भी अत्युक्ति न समझेंगे। जड़ लेखनीमें इतनी शक्ति नहीं है कि, आपके व्याख्यानोंके यथार्थ स्वरूपका वर्णन करसके।

एवं चिरकाल पर्यन्त देशदेशान्तरमें पर्यटन द्वारा श्री स्वामीजी महा-राजने वाचिक व्याख्यानोंसे श्रोताओंको केवल सन्तुष्टही नहीं किया प्रत्युत कई सहस्र मनुष्योंको सनातन धर्ममें दृढ़ताके साथ आरूढ़ करदिया। अब एकान्तवासकी अवस्थामें भी मधुर वाग्ग्रथित लेख द्वारा लोकोपकारमें प्रवृत्त है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि, वाचनिक उपदेशकी अपेक्षा लेखगत उप-देश सार्वदैशिक और चिरस्थाई होनेके कारण अधिक लाभदायक होताहै।

हृसनादके प्रथम भागमें ५ व्याख्यान प्रकाशित होचुके हैं और इस भागमें भी ५ व्याख्यान प्रकाशित कियेजाते हैं। एवम् और भागभी क्रमशः प्रकाश किये जावेंगे। आशा है कि, पाठकगण इनसे अवश्य लाभ उठावेंगे।

मुद्रण आदि दोषसे यदि कोई त्रुटि रहगई हो तो पाठक उससे सूचित करेंगे। द्विरावृत्तिमें उसका संशोधन करदिया जावेगा।

अलवर
२८—२—१९१७

पं० चन्द्रदत्त पन्त शास्त्री
विद्यारत्न, महोपदेशक
राजपंडित, अलवर राजपूताना

पाठकोंके अवलोकनार्थ उन अभिनन्दनपत्रोंमेंसे कतिपय पत्र यहां प्रकाशित कियेजाते हैं, जो भिन्न २ नगरोंके विद्वानों ने श्री स्वामीजी महाराजको विदा करते समय समर्पण किये थे ।

श्रीयुत हंसस्वरूप योगिराजानां प्रशस्तिः

स्वस्ति श्रीशारदाविशारदशारदाम्भोजवदनान्, अकुण्ठकण्ठपाठिनवैकुण्ठगुणजालोज्ज्वलितमहाशयान्, यमनियमप्राणायामाद्यैनकाङ्गोपचितविमलब्रह्मचर्यान्, केवलाज्ञानोपकल्पितनास्तिकमतवादिगिरिवरविदारणनिशितकुलिशान्, निरवद्यविद्याविद्युदुद्योतापहृतपरिपञ्जनमलीमसतिमिरपटलान्, विस्तारियशः प्रकाशितदशादिङ्मण्डलान्, श्री हंसस्वरूपयतिवरान्, भक्तिपुरःसरं प्रणम्येयंसप्तर्षि (सतारा) नगरास्थिता संमेलकपर्षत् (The Union club) भवत्कृपावलम्बेन किंचिदावेदनीयं निवेदयति ।

अहो, अतीव प्रमोदास्पदमेतत्—यदद्य भारतोद्धारणार्थमेव केवलमङ्गीकृतकाषायवाससाम्, आजन्मन ऊर्द्धरेतसाम्, अजितात्मेतसा श्रीमतां मुखचन्द्रमण्डलान्निःसृतां स्वच्छां वाक्पीयूषधारामाकण्ठं पिवन्तो वयं कामपि निर्वृतिमन्वभूम । अगाहिषत चानन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक श्रीप्रभुवररघुवर विमलयशःपयःपारावारमखिलपौरजानपदाः । अध्यगीषत च शरीरान्तःस्थ नाडीकमलविज्ञानोपबृंहितं पूरककुम्भकरेचकादिभिर्वायुविशेषाकर्षणधारणाविमोचनोपकल्पितं साङ्गोपाङ्गं प्राणायामं सम्पूर्णमध्यधिकारी प्राज्ञो जनः ।

सद्धर्मो हि राष्ट्राभ्युदयद्वाराऽखिलानन्दस्य निदानम् । स च भारते वर्षे मन्वादि धर्म सूत्रकारै र्भक्तिकर्मयोगज्ञानादिभिश्चतुर्धाप्रपञ्चय वर्णितः । तेषु कर्ममार्गो बह्वायासकरो द्रव्यराशिसाध्यः केवलचित्तशुद्धिकरश्च । योगस्तुशरीरसौष्ठवाधीनो दृढाभ्यासेनापि यथाकथंचिदाकलनीयश्चिरकालज्ञेयश्च । तथापि कर्ममार्गे सन्ध्यादिकर्मजातमिव योगमार्गेपि नित्यतया प्राणायामादिकं किंचिदनुष्ठेयमेव । चतुर्थो ज्ञानमार्गस्त्विदानीन्तनानां जनानां केवलं " ज्ञानादेव हि कैवल्यम् " इत्यादिना कैवल्यप्राप्तये चरमोपाय इति निश्चयार्थ मेव भगवतोक्तः । यतः पूर्वेषामपि राजर्षीणां ब्रह्मर्षीणां च

मध्ये केचिदेव हस्ताङ्गुलिपरिमितास्तेन सिद्धिं लेभिरे । अतः कलौ भक्तिमार्ग एव केवलमाबालवृद्धैः सर्वैरप्यनुष्ठेय इति सिद्धम् । स एव श्रीमद्भिर्वाक्पाटवेन यथावसरमुज्ज्वलीकृतः । अनयैव च दिशाऽस्मिन्नार्यभूमौ सद्गुणबीजावापः कृतश्चेज्जनाः सौराष्ट्रफलभाजो मुक्तियोग्याश्च भवेयुरित्यस्मान्प्रतिभाति । अतः श्रीमन्तोऽस्मिन्कर्मणि परां सिद्धिं प्राप्नुयुरिति जगदीश्वर मनवरतं प्रार्थयाम इत्यलं वाग्लताऽकाण्डताण्डवेनेति शिवम् ।

भवति विमलं धर्मप्रोतं यदीयसुवर्त्तनम्,
उपकृतिपरं विद्याशुद्धं मनश्च महोन्नतम् ।
परमसुखदो धर्मालापै रघूत्तमवर्णनैः
भुवि विजयतां धीमान् योगी सदा यतिराडसौ ॥ १ ॥

वसतु विमला कीर्त्तिर्लोके चिराय गुणोज्ज्वला,
कुरु च सुगुणैः पूर्णाशान्नःस्ववाङ्मतिवैभवैः ।
पुनरपि समागत्यात्रत्यान् विलोक्य रागतः
इति सुरभितः सर्वोलोकः सदा तव दर्शनैः ॥ २ ॥

सप्तर्षिग्रामस्थसम्मेलकसभासदैः श्रीशालिवाहनशके १८२४ मिते ज्येष्ठ वदि प्रतिपत्तिथौ मंदवासरे सम्मोदपुरस्सरमर्पिता	कार्यसभाध्यक्षाः रघुनाथ पाडुरंग करदीकर सतारा

श्री हंसस्वरूप स्वामी यांच्या चरणा सेवेशीं, अनंत वामन बर्वे, लोकसेवाकर्ते, नाशिक,

याजकडून गीतिद्वारां ॥

मातृस्तनीं असावें सिद्ध जसें बालजीवनार्थ पय ।
प्रभु आर्यधर्म ठेई तेंवि अम्हा हा विशुद्ध वेदमय ॥
कालांतरें विकारे परि ताहि शिरूनियां अनार्यमतें ।
शुद्ध्यर्थ यत्न त्याच्या विबुधां कर्तव्यकर्म हें असतें ॥
नीरक्षीरविशोधनपटु ते असतात एक हंस जसे ॥

हें शुद्धिकार्यादि तरीसाधाया कुशल परमहंस बघे ॥
दैवें यास्तव आज्ञा सांप्रत हंसस्वरूप हे मिलती ।
राहूनि विमल तत्वें नुरतीं अविमल जयापुढें तिल वीं ॥
बहुविध दृष्टांतें जशि केली केली ज्ञानेश्वरें सुगम गीता ।
प्रचुर प्रमाणवचनें वैदिकमत पटवितात हे चित्ता ॥
व्हावी अराजक स्थिति तशि झाली भारतीय सद्धर्मी ।
उतराया तीस तुह्मासम संप्रति धर्मवैद्य हे याचे ।
यत्नें तीव्र तयांच्या धार्मिक मालिन्य आसुचें जावें ॥
आर्याभ्युदयीं निजसुख आहे जरि मानिलें तुह्मीं सारें ।
शुभ काय चिंतु तुमचें, हेतु करावे प्रपूर्ण ईशवरें ॥

तारीख ५ माहे जुलै सन् १९०२ हे विज्ञप्ति.

बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, सिंध, गुजरात, महाराष्ट्र नैपाल आदि भिन्न२ प्रान्तोंके जिन२ प्रसिद्ध नगरोंको आपने अपने व्याख्यानोंसे पवित्र किया, उनके नाम नीचे वर्णमाला के क्रमसे लिखेजाते है ।

अकोला
अजमेर
अजीमगंज
अनूपशहर
अमृतसर
अम्बाला
अमरावती
अयोध्या
अलवर (राजधानी)
अलाहाबाद (प्रयाग)
अलीगढ़
अलीपुर (राजधानी)
अहमद नगर
अहमदाबाद
आगरा
आजमगढ़
आरा
इन्दौर (राजधानी)
इटावा
इसलामपुर
उज्जैन
उदयपुर (राजधानी)
उन्नाव
एटा
औरंगाबाद
कटरास (राजधानी)
कटवा
करनौल
करनाल
करांची (सिंध)
कलकत्ता
काठमांडव (रा० नैपाल)
कानपुर
काम्पटी
काशीपुरी (बनारस)
कासगंज

कृष्णगंज
कृष्णगढ़ (राजधानी)
कोकिलवारा (नैपाल)
क्वेटा (बिलूचिस्तान)
खँडवा खानदेश
खुरजा
खैरा (राजधानी)
गया
गाजीपुर
गिद्धौर (राजधानी)
गृहडीह
गुजरानवाला
गोंडा
गोरखपुर
ग्वालियर (राजधानी)
चनारगढ़
चैनपुर
चँदौसी
चरखारी (राजधानी)
छतरपुर (राजधानी)
छपरा
जगन्नाथपुरी
जगदीशपुर
जगाधरी
जब्बलपुर
जमालपुर

जम्बू (रा० कश्मीर)
जमुई
जयपुर (राजधानी)
जलन्धर
जसवन्त नगर
जहानाबाद
झांसी
टिहरी (रा० गढ़वाल)
टीकमगढ़ (राजधानी)
टुण्डला
डाकोरजी
डुमराव (राजधानी)
ढुलिया
तमकुही (राजधानी)
ताजपुर
थानेश्वर
दतिया (राजधानी)
दर्भंगा (राजधानी)
दमोह
दिनाजपुर (राजधानी)
दिगपतिया
देहली
देरा इसमाइलखा
देरा गाजीखा
देवगढ़
देवमूंगा (राजधानी)

देवरी (सागर)
देवास (राजधानी)
धारा नगर (राजधानी)
नरहन
नरहा
नवाब-गंज
नागपुर
नाटौर
नासिक
नीमच
नैनीताल
नैमिष्यारण्य
पंचगछिया
पंजवारा
पटना
पटियाला (राजधानी)
पटेढ़ी
पण्डुई
पसरूर
पानीपत
पाटरी (राजधानी)
पीलीभींत
पुरनिया
पुरुलिया
पूना
पूसा

पौरी (गढवाल)
फतहपुर
फतहगढ़
फरुखाबाद
फ़ीरोज़पुर
बदाऊँ
बड़ोच
बड़ोदा (राजधानी)
बरदवान (राजधानी)
बरही
बलिया
बलिहार (राजधानी)
बलरामपुर (राजधानी)
बहरैच
बाजिदपुर
बांसबरेली
बीकानेर (राजधानी)
बुलन्दशहर
बेगूसराय
बेतिया (राजधानी)
भरतपुर (राजधानी)
भागलपुर
भुसावल
मऊ
मंझोली (राजधानी)
मथुरा

मधुपुरा
मनकापुर (राजधानी)
मांडा (राजधानी)
मिर्जापुर
मुकामा
मुंगेर
मुजफ्फरपुर
मुम्बई
मुरादाबाद
मुर्शिदाबाद
मुल्तान
मेरठ
मैनपुरी (राजधानी)
मोतीहारी
यवनपुर
रंगपुर (राजधानी)
रसूलपुर
राजमहल
रानीगंज
रायबरेली
रायपुर
रावलपिंडी
रुड़की
लखनऊ
लालगंज
लाहौर

लिम्बड़ी (राजधानी)
लुधियाना
बकसर
वृन्दावन
बस्ती (राजधानी)
बांदा
विहार
वैद्यनाथ धाम
शाहजहांपुर
शिकारपुर (सिंध)
शिकोहाबाद
सक्खर (सिंध)
समस्तीपुर
सहसराम
सहारनपुर
सागर
साहबगंज
सियालकोट
सूरजपुरा
सूरत
हनुमाननगंज (नैपाल)
हरदा
हरदोई
हरद्वार
हाजीपुर
हाथरस
हैदराबाद
होशंगाबाद
होशियारपुर

नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

वक्तृता ६ वीं

LECTURE 6th.

अहिंसा

Not killing

ॐ सयथेमानद्यः स्यन्दमाना समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिम्।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम्॥

एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम् ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि ॥

प्यारे सभासदो ! इस ससार रूप नाट्यशाला (Theatre) में हम लोग चौरासीलक्ष जीव रूप शैलूष वृन्द [नर्तक गण] (Actors) कर्म रूप नेपथ्य में खड़े हुये अपने २ पाठ (Part) को पूर्णरूप से सम्पादन करने के लिये तत्पर है जहां चारों वेद-रूप वादक गण [बाजा बजाने वाले] कर्म, उपासना, ज्ञान, भक्ति रूप तबला, सारङ्गी, तानपूरा, मंजीरा को एक स्वर ताल से बद्ध होकर कुशल पूर्वक बजा रहे हैं, जहां माया रूप नटी रज, सत्व, तम रूप तेताला पै नृत्य करती हुई ऐसी तान ले रही है जिसकी ध्वनि मृत्यु लोक से ब्रह्मलोक पर्यन्त व्यापती हुई इन्द्र, वरुण, कुवेर औ ब्रह्मादि बडे २ नाट्य देखने वालों को मोहित कर रही है, ऐसे सुन्दर नाट्य शाला में आज हम लोग भी अपना २ पाठ पूर्ण करते हुए एक उत्तम गान हरि नाम का किस प्रकार करें कि—

हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे, ।

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे, ॥

प्यारे सभासदो ! जैसे सब देश की भाषाओं में मुख्य अक्षर वर्णमाला के २६ हैं जिन में अनेक प्रकार की विद्या यथा न्याय, मीमांसा, ज्योतिष, व्याकरण, वैद्यक, युद्धविद्या, संगीतविद्या, नाविक विद्या (Navigation) शिल्पशास्त्र इत्यादि लिख कर विद्यार्थियों को सिखाते है, इसी प्रकार ब्रह्मविद्या के भी २६ ही मुख्य अक्षर है, कहने का तात्पर्य यहहै कि ब्रह्मविद्या [علم الٰہی]

(Divine knowledge) की वर्णमाला में भी २६ ही अक्षर है, जो प्राणी ब्रह्मविद्या की श्रद्धा रखता है औ परम पद की प्राप्ति को ही अपना मुख्य कर्तव्य समझता है वह अवश्य इस ब्रह्मविद्या की पाठशाला में प्रवेश करते ही इसके अक्षरों अर्थात् अङ्गों को अभ्यास करने में चित्त लगावेगा औ श्री गुरु महाराज के चरणों की कृपा से भवसागर पार हो परमानन्द में मग्न होजावेगा औ उस परम धाम को पहुंच जावेगा जहा जाकर फिर लौटना नहीं होता।

प्यारे सज्जनो! मुझे बार २ यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस अमूल्य ब्रह्मविद्या के २६ अक्षर कौन है, इन के नाम आप को पूर्व व्याख्यानों में सुना चुका हूं [देखो वक्तृता न० २ पृष्ठ ६५] और यह भी बतला चुका हू कि ब्रह्म-विद्या की प्रथम श्रेणी (Entrance class) कर्म है, जिस कर्म का मुख्य अङ्ग सन्ध्या है जिसके महत्व का वर्णन आप पिछले चार व्याख्यानों में सुन चुके हैं किन्तु जबतक वर्णमाला में अभ्यास न हो तब तक कोई पुरुष श्रेणी(Grades) में उत्तीर्ण (Pass) नहीं हो सकता, इसालिये मै आज के व्याख्यान में ब्रह्म विद्या के अक्षरों को विलग २ वर्णन कर सुनाऊगा, एकाग्र चित्त हो श्रवण कीजिये औ एकबार सब मिल कहिये—

हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे, ।
हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे, ॥

प्यारे श्रोतृगण! जैसे ब्रह्मविद्या की श्रेणियों में प्रथम कर्म है ऐसे ही अक्षरों में प्रथम औ मुख्य अहिंसा है क्योंकि जितने और

अक्षर अर्थात् अङ्ग हैं उनमें अहिंसा ही पर ध्यान रखागया है, जैसे क, ख, ग, घ इत्यादि अक्षरों से (अ) जो वर्णमाला का प्रथम अक्षर है निकाल लिया जावे तो क् ख् ग् घ् इत्यादि अक्षरों का उच्चारण ही नहीं हो सकता, अकार के निकालते ही सब अक्षर निर्जीव होजाते है इसी प्रकार ब्रह्मविद्या के किसी अङ्ग से अहिंसा निकाल लीजिये तो सब निर्जीव होजावेंगे फिर तो न वर्णमाला की सिद्धि होगी, न कर्म उपासना इत्यादि किसी श्रेणी में उत्तीर्ण होगा अर्थात् हिंसा करने वाले की गति नहीं होगी, इसको बुद्धिमान् भली भाँति जानते है इस पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, देखिये पतञ्जलि भी यम नियम इत्यादि योग के अङ्गों का वर्णन करते कहते है कि—

अहिंसा[१] सत्या[२]ऽस्तेय[३] ब्रह्मचर्य्या[४]ऽपरिग्रहा[५] यमाः

यहां आप लोग प्रत्यक्ष देख रहे है कि योग के अङ्गों के आरम्भ करते ही **अहिंसा** ऐसा पद लिखा, तात्पर्य कहने का यह है कि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि जो योगविद्या के आठ अङ्ग है इनमें सब से प्रथम **यम** है तिस यम का भी प्रथम भेद अहिंसा है इसलिये योगशास्त्र से भी यही सिद्ध होता है कि ब्रह्मविद्या का प्रथम अक्षर **अहिंसा** ही है फिर श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द **दैवी** औ **आसुरी** सम्पदा के वर्णन में अर्जुन प्रति कहते हैं।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।

दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

भगवद्गीता अ० १६ श्लोक २, ३.

अहिंसा, सत्य, अक्रोध (क्रोध नहीं करना), त्याग, शान्ति अपैशुन (निन्दा नहीं करना), दुखियाजीवों पर दया, अलोलुप्त्व (विषय भोगने का सामर्थ्य होने पर भी विषयों को न भोगना औ उन में आसक्त न होना), मार्दव (कोमल वाणी बोलना), ह्री (लज्जा अर्थात् निर्लज्ज न होना), अचापल (चंचल न होना), तेज, क्षमा, धृति (दृढ़ता वा धीरज), शौच (भीतर बाहर से पवित्र रहना , अद्रोह (किसीसे वैर न करना), नातिमानिता (अपना मान नहीं चाहना वा पूज्य होने की इच्छा न करना) ये सब दैवी सम्पदा हैं औ उन पुरुषों में होते हैं जो दैवी सम्पदा से उत्पन्न है ।

प्यारे सभासदो ! यहां भी देखाजाताहै कि श्रीकृष्णभगवान् ने सम्पदाओं की गणना में प्रथम अहिंसा ही रक्खा ।

अब वह अहिंसा क्या है सो सुनिये, श्रीव्यासदेव कहतेहै कि " तत्र प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारो हिंसा " साच सर्वानर्थहेतुः । तदभावोऽहिंसा । हिंसायास्सर्वकालमेव परिहार्यत्वात्प्रथमं तदभावाया अहिंसाया निर्देशः ।

अर्थात् " तत्र प्राणवियोग० " शरीर से प्राण को विलग करदेने के प्रयोजन से जो किसी प्रकार का व्यापार कियाजावे वह हिंसा

है चाहे खड्ग, परशु, कुठार इत्यादि द्वारा, अथवा गम्भीर जल में डुबाकर वा सखिया इत्यादि विषदेकर चाहे गला इत्यादि मर्म स्थानों को घोंट कर वा सोते हुए के घर में अग्नि लगाकर अथवा जिस वृत्ति से किसी प्राणी का जीवन होताहै उसके उस वृत्ति को छेदन करके किसी भी प्रकार क्यों न हो शरीर से प्राण विलग करदेने के व्यापार ही को हिंसा कहतेहै । " साचसर्वा० " सो हिंसा सर्व प्रकार के अनर्थ का कारण है अर्थात् सब पापों का मूल है । " तदभावोऽहिंसा" तिस हिंसा का न करना अहिंसा है "हिंसायासर्व०" सर्व काल में अर्थात् धर्म के सब अंगों में केवल हिंसा को त्यागदेनाही उचित समझागयाहै, इसलिये अहिंसा धर्म के अंगों के नाम की गणना में सब से प्रथम रखीगई है ।

इस व्यासभाष्य से भी सिद्ध होता है कि सब से प्रथम अहिंसा है, फिर जो कोई धर्मात्मा होने की अभिलाषा रखता हो वह इसे छोड़ ही देवे ।

प्यारे सज्जनो ! इस भाष्य को मै फिर एकवार आपको अंग्रेज़ी भाषा करके सुनाता हूं जिसे सुन हमारे अंग्रेज़ी के विद्वान भलेप्रकार समझ जावेंगे—

Forbearance (Yama) Consists of (Not killing) Veracity) (Not stealing) (Continence) & (Not coveting).

Among these (to speak first of first) "Killing" is acting for the purpose of removing life and this is the cause of all evils. The absence of this is what is meant by (Not killing). Since " Killing" must be abstain-

ed from at all times, its opposite "Not Killing" is set down first in the list.

फिर सुनिये—

अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा परमं तपः ।
अहिंसा परमो लाभः, हिंसायां, परमोह्यघः ॥

अर्थात् अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा परम तप है अहिंसाही परम लाभ है औ हिंसाकरना परम पाप है ।

पृथ्वी मण्डल भर में किसी धर्मवाले हिंसा की आज्ञा नहीं देते अहिंसा का सबही प्रतिपादन करते है, देखिये मैं पहले आपको अपने सनातनधर्म से अहिंसा का मण्डन करता हूं फिर अन्य मतावलम्बियों का सिद्धान्त देखलाऊंगा ।

मनुस्मृति का वचन है—

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते ॥

अर्थात् जो कोई अपने सुख के लिये पराये निरपराध जीवोंको मारडालता है वह इस लोक में औ परलोक में सुख कुछ भी नहींपाता, तात्पर्य्य यह कि हिंसक (जीवश्च) इस लोक में जीवते हुए पर्य्यन्त नाना प्रकार के रोगों से दुखी रहता है, औ (मृतश्चैव) मरजाने के पश्चात् परलोक में नरक का भागी होता है। यदि किसी मासा-हारी को यह शका हो कि मनु ने तो केवल जानमारना ही निषेध किया है मास खाना तो निपेध नहीं किया इसलिये कोई जान न मारे

हाट, बाज़ार से मांस लेकर भोजन करे तो क्या दोष है, प्यारे श्रोताओ ! इसी शंका के निवारणार्थ मनु फिर कहते है:—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यः स्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥

अर्थात् विना किसी जीव के मारे मांस की प्राप्ति नहीं होसक्ती औ जीवका मारना स्वर्ग का कारण नहीं होसकता औ नरक का कारण है इसलिये मनुष्य मात्र को उचित है कि मांस खाना बर्जदेवे । क्योंकि मांस खाने वालों को बदला देना पड़ेगा ।

मांसभक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

अर्थात् जिसके मांस को (इह) इसलोक में [अद्म्यहम्] मै भक्षण करताहूं वह मुझको (अमुत्र) परलोक में भक्षण करेगा वही मांस का मांसत्व पण्डित लोग कहते है ।

प्यारे सज्जनो ! हमलोगों के धर्म में खाना तो अलग रहे मांस को छूने तक की आज्ञा नहीं है अपने अथवा अपने किसी इष्ट मित्र के लिये भी मांस के उद्योग करने की आज्ञा नहीं है—सुनिये ।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥

अर्थात् १ [अनुमन्ता] जीवमारने की आज्ञा देनेवाला २ [विशसिता] मांस को टुकड़े २ करनेवाला, ३ [निहन्ता]

मारनेवाला, ४ [क्रयविक्रयी] खरीदनेवाला औ बेचनेवाला, ६ [संस्कर्त्ता] पकानेवाला, ७ [उपहर्त्ता] खानेवाले के आगे लाधरनेवाला, औ ८ [खादक] खानेवाला, इन आठों की गणना घातकों में है, तात्पर्य्य यह कि इन आठों को समान पाप लगता है, सब के सब एक समान दोषी है, इसलिये जो दण्ड मारने वाले को मिलेगा वही और सातों को भी मिलेगा, हमारे श्रोताओं में बहुत यों विचार रहे होंगे कि यह तो बड़े अंधेर की बात है कि पकाने वाले, परोसनेवाले को भी समान पापलगे, ऐसा धर्म किस काम का औ ऐसी आज्ञा किस काम की, मेरे प्यारे श्रोताओ ! थोड़ी विचारने की बात है, थोड़ी भी बुद्धि से आप काम लेवेंगे तो यह आज्ञा आपको अति उत्तम औ यथार्थ जान पड़ेगी, मनु ने यह उचित आज्ञा दी है।

मनुस्मृति हमलोगों का धर्मशास्त्र है अर्थात् धार्मिक क़ानून (Religious Law) है जिस में सर्व प्रकार के पापों के दण्ड लिखे हैं इसलिये हिंसा औ मांसाहार का भी दण्ड मनु ने यथोचित लिखदिया है औ यह दण्ड न्याय से विरुद्ध नहीं है, इन दिनों अंग्रेज़ी क़ानून (British Law) के न्याय की प्रशंसा पृथ्वीमंडल भर में है विशेष कर इस समय पिनलकोड (Penal-code) को प्रायः सभी देशवाले मानते है तिस पिनलकोड की आज्ञा से यदि मनुस्मृति की आज्ञा मिलतीहो औ दोनों एक सम्मति हों तब तो आप मानें नहीं तो मनुस्मृति ही का तिरस्कार करें। देखिये पिनलकोड अध्याय ५ धारा [दफा] १०९ (Penal-code chapter V. section 109) में लिखा है कि किसी प्रकार के जुर्म [अपराध] में शरीक होनेवाले अर्थात् सहायता करने वाले का वही दण्ड होगा

जो उस अपराध के करने वाले का, जैसे मान लीजिये कि मिस्टर यौफ़मसाहब जज के इजलास पर नत्थूचौधरी कलाल के मारेजाने का मुक़द्दमा [अभियोग] पेश हुआ जिसमें मोहन, सोहन, गिरिधारी, धनीराम, मनीराम, कालूराम, दयालदास, शिवशंकर चौधरी आठ अपराधी [मुजरिम] पकड़कर लाये गये, गवाहान् के इ-ज़हार से अर्थात् साक्षीगण के वचन से यों सिद्ध हुआ कि इन सातों में १ मोहन ने नत्थू कलालको अपने घर निमंत्रण कर बुलाया था,(२) सोहन ने उसके लिये अनेक प्रकार के पकवान बनायेथे, (३) गिरिधारी ने उसके सोजाने के लिये पलंग बिछायाथा, (४) धनीराम उसे पलंग पर सोजाने लेगया,(५) मनीराम हारमोनियम बजानेलगा, (६) कालूराम राग अलापने लगा,(७) दयालुदास उसके मुखपर पंखा झलने लगा. ऐसे राग तान सुनते २ जब नत्थू कलाल को निद्रा आगई और सुषुप्ति में सोगया तब शिवशंकरचौधरी ने उसका मस्तक खड्ग द्वारा शरीर से अलग करदिया। अब विचारना चाहिये कि जजसाहब अंग्रेज़ी क़ानून के अनुसार इन आठों में किसी को छोड़ भी देवेंगे अथवा सबों को दण्ड देवेंगे, मै जानता हूं कि जो लोग कुछ भी अंग्रेज़ी क़ानून को जानते होंगे वे अवश्य कहेंगे कि जजसाहब इन आठों मे किसी को न छोड़ेंगे सब को समान दण्ड देवेंगे क्योंकि जैसा मैं पहले कह आया हूं कि पिनलकोड अध्याय ५ धारा १०९ के अनुसार सहायकों का भी वही दण्ड है जो अपराध के करनेवालों का, फिर यदि जान मारनेवाला शिवशंकर चौधरी कालापानी भेजा जावेगा अथवा फांसी पड़ेगा तो मोहन, सोहन, इत्यादि की भी वही दशा होगी.

Sidney साहब लिखते हैं-- Those who purchase the

flesh create the demand and are aiders and abettors of the evil that is done to gratify their degenerate appetites

यदि किसी को शंका हो कि मोहन, सोहन, इत्यादिने तो कुछ भी अनुचित कार्य्य नहीं किया किसीने पक्वान्न बनाया, किसी ने सोलाया, किसी ने राग अलापा, किसीने पंखा झला, फिर इन उत्तम कार्य करने वालों का दण्ड क्यों ? तो स्मरण रहे कि कार्य्य करने वाला कैसे भी उत्तम से उत्तम कार्य्य क्यों न करे पर उसकी वासना यदि निकृष्ट हो तो फलभी नीच ही होगा। अंग्रेज़ी में भी यही शिक्षा है कि Good actions done with a bad motive produse bad result गुड एकशन्स डन विद ए बैड मोटिव प्रोड्यूस बैड रेज़ल्ट्॥

अर्थात् भले काम यदि बुरी वासना वा प्रयोजन से किये जाँवें तो उनका फल भी बुराही होगा।

प्यारे सभासदो! इसी प्रकार मांस की प्राप्ति करने में जो अनुमन्ता, विशसिता, निहन्ता, इत्यादि आठ सहायक हैं इन आठों का समान दण्ड जो मनु ने लिखा तो क्या अनुचित किया, यह तो ठीक २ अंग्रेज़ी क़ानून से मिलता हुआ क़ानून है।

बहुत से मनुष्य अपने मनही मन यों कहते होंगे कि छी! छी! हिन्दू धर्मशास्त्र कैसा कठोर और निर्दयी है कि हम मांसहारियों पर इसे थोड़ी भी दया न आई भला ऐसे उत्तम पदार्थ को न नित्य तो दूसरे तीसरे दिन भी तो खाने की आज्ञा देनी चाहिये थी, एकदम वर्जित करदेना बडी ही कठोरता है, चलो जी चलो! ऐसे कठोर धर्मको छोड़ो! मैंने तो पहले ही भाई कलबुल्लाखां

से मित्रता कर रक्खी है, वह मुझको वार २ कहचुके है कि तुम मुसलमान होजाओ चलो आज ही मै لاالہ الااللہ محمد رسول اللہ (ला एलाह इल्लिल्लाह मुहम्मदरसूलुल्लाह) कल्मा अर्थात् मुसलमानी गायत्री पढ़कर मुसलमान होजाऊं औ भाई कलबुल्लाह के साथ भोजन में मनमाना आनन्द करूं अर्थात् खूब क़लिये उड़ाऊ क्योंकि मुसलमानी मत में तो * क़ालिया, क़ुर्मा, मुतञ्जन, ज़रदा, पुलाव इत्यादि के खाने की मनमानी आज्ञा दीगई है।

प्यारे सभासदो। यह बातें एकदम विना सिर पैर की हैं, मुसलमानों में भी जानमारने औ मांस भक्षण करने की आज्ञा नहीं है इनमें भी जो पूर्ण प्रकार धर्म के पालन करने वाले है औ ईश्वर प्राप्ति निमित्त कुछ भी साधन आरम्भ करते हैं तो प्रथम ही मांसका परित्याग करते हैं, जिसको (तर्के हैवानात] ترک حیوانات कहते हैं।

जो लोग कुर्बानी करते है औ बकरे, बकरी, गाय, बैल, ऊंट इत्यादि को मारना कुर्बानी करना समझते है औ यह समझते है कि जो जीव मैं कुर्बानी के नाम पर वध करताहूं उनके मांस इत्यादि ईश्वर को पहुंचते है उनके विषय कुरान में अल्लाह तआला यों फ़र्माता है अर्थात् ईश्वर यों आज्ञा देता है – सुनिये।

कुरान सूरा हज आयत ३६ قرآن سورہ حج آیت ۳۶

لن ینال اللہ لحومها ولا دماؤها ولکن ینالہ التقوی منکم

लैंयनालल्लाह लहूमोहा व लादेमाओहा, व लाकीं यनालहू अत्तक़वा मिन्कुम्।

अर्थात् नही पहुंचते है अल्लाह (भगवान) को मांस उन

---

* ये सब मांस बनाने के कई भेद हैं

जानवरों के जिनको तुम कुर्बानी के नाम से मारते हो औ नहीं पहुंचता है उसको उनका खून [रुधिर] परन्तु पहुचती है उसको तुम्हारी परहेज़गारी अर्थात् जो तुम जानमारने से अथवा और किसी प्रकार के पाप से वचो वही पुण्य उसको पहुंचता है तात्पर्य्य यह कि तुम्हारे अहिंसा धर्म को वह स्वीकार करता है देखिये मुसलमानों में तो शिकार खेलना भी रोका गया है—

कुरान सूरा उलमायद सिपारा ४ मंज़ल २ आयत ३

ایایہاالذین امنوا لا تقتلوا الصید وانتم حرم ومن قتلہ منکم وغیرہ وغیرہ

अया ऐओहल्लज़ीन आमनू लातक़तोलुस्सेद अन्तुम हरुम ओ मिनक़तलहू मिनकुम् ।

अर्थात् ऐ ईमानवालो न मारो शिकार जिस समय तुम अहराम में हो अर्थात् कावाशरीफ़ में हो यदि तुम में से कोई मारेगा तो पापी होगा इत्यादि २ ।

प्यारे सभासदो ! इस सूरा से यही सिद्ध होताहै कि शिकार मारना बुरा काम है इसलिये ऐसे पवित्र तीर्थस्थान में ईश्वर ने रोकदिया यदि उत्तम होता तो पवित्रस्थान में रोका क्यों जाता ।

फिर किसी मुसलमानी साधू ने कहा है कि—

هزار گنج قناعت هزار گنج کرم
هزار طاعت شبها هزار بیداری
هزار سجده و هر سجده را هزار نماز —
قبول نیست اگر خاطری بیازاری

हज़ार गंजे क़नाअत हज़ार गंजे करम
हज़ार ताअते शबहा हज़ार बेदारी

हज़ार सिजदाओ हर सिजदारा हज़ार नमाज़
कबूल नेस्त अगर ख़ातिरे न आज़ारी

अर्थात् हज़ारो सन्तोष की राशि एकत्र करलेवे औ हज़ारों प्रकार का दान देवे, हज़ारों रात्रि जागकर हज़ारों बन्दगी करे, हज़ारों बार ईश्वर के आगे सिर झुकावे और एक २ बार सिर झुकाने में हज़ारों मंत्र नमाज़ का पढ़े पर इनमें से एक भी वह जगदीश्वर स्वीकार न करेगा यदि एक किसी जीव के चित्त को सतादेवे।

फिर शेख़ सादी कहतेहैं कि—

مباش درپے آزار ہرچہ خواہی کن
کہ در شریعت ما غیر ازین گناہے نیست

मवाश दरपये आज़ार हचैं ख़ाही कुन्
कि दर शरीअते मा गैर अज़ींगुनाहे नेस्त

अर्थात् किसी जीव के दुखदेने के पीछे मत पड़ो और जो कुछ चाहो करो क्योंकि मेरे धर्मशास्त्र में इस से बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है।

ऐसे २ अनेक प्रमाण मुसल्मानी मत में हैं जिनसे सिद्ध होता है कि जानमारना निषेध है जब जान मारना निषेध हुआ तो मांसखाना भी निषेध हुआ क्योंकि बिना जान मारे मांसकी उत्पत्ति नहीं होसक्ती

यदि कोई मुसलमान यों कह पड़े कि तुम क़ुरान से हमारा मांसखाना रोकते हो तो हम खावें क्या? तो इसका उत्तर मै उसी क़ुरान से यो दूंगा

क़ुरान सूरा इनआम् आयत १४२

ومن الانعام حمولة وفرشا كلوا مما رزقكم الله

व मिनल अनआमे हमूलतुन् व फ़र्शाकुल्लू मिम्मा रिज़क़कुमुअल्ला हो।

अर्थात् पैदा किये मै ने जावनरों में से बोझ उठानेवाले इसलिये तुम उनसे बारबरदारी अर्थात् बोझ उठाने और हल जोतने का काम लो और खाओ उनको जो पृथ्वी से लगी हुई है अर्थात् गेहूं, चावल, मटर, चना, मोठ इत्यादि अन्न क्योंकि अल्लाह (ईश्वर) ने इनही वस्तुओं को रिज़क (रोज़ी) अर्थात् खाने को दिया है तुमको।

प्यारे सभासदो ! यह तो मै ने मुसलमानी मत से अहिंसा सिद्ध कर देखलाया पर अब अनेक मांसाहारी यों कहेंगे कि चलो जी चलो मुसलमानों में भी अनेक प्रकार का गोलमाल है इनमें भी कोई जानवर हलाल (विधि) है कोई जानवर हराम (निषेध) है चलो ऐसे मत में चलें जहां न कोई हलाल है न हराम है सबके सब एक रंग हैं जो जानवर पशु अथवा पत्ती अपने सामने पड़जावे झट मारो और खाओ चार पांववालों में चारपाई, कुरसी, टेबल, और पत्तियों में अर्थात् उड़ने वालों में कनकौआ, (तिलंगी गुड्डी, जो लड़के सूत में बांधकर उड़ाया करते हैं) छोड़कर और सब चरिन्द परिन्दके खाने की आज्ञा है. किसी ने पूछा भाई? ऐसा कौन मत है! तो कोई बोलउठा, ईसाई, अर्थात् ईसाई धर्म में हलाल हराम का भेद नहीं है जो चाहो मारो और खाओ।

प्यारे सभासदो ! ऐसे कहनेवालेकी भूल है ऐसा नहीं है, ईसाई धर्म तो परमपवित्र धर्म है, उत्तम है, ऐसी सुन्दर २ शिक्षा इस धर्म में दीहुई है कि यदि आप सुनें तो जी चाहेगा कि ईसाई होजाऊं

ईसाई धर्म में दया तो सार है अर्थात् ईसाई धर्म में सर्वत्र यही उपदेश है कि जहांतक सभव हो जीवों पर दया करो इस ईसाई धर्म के जो दस मुख्य नियम है उनमें एक यह है कि Thou shalt not Kill (दाउ शैल्ट नौट किल) अर्थात् जानमतमारो फिर जो लोग ऐसा समझरहे है कि ईसाई धर्म में जिसे चाहो मारो खाओ ऐसी आज्ञाहै वे भूल करते है वे नहीं जानते ईसाई धर्म का सिद्धान्त क्या है, सुनिये अब मै आपको ईसाई धर्म से अहिंसा सिद्ध कर देखलाताहूं।

वाइवल अर्थात् इंजील से अहिंसा सिद्ध होती है

HOSIA CHAPTER VIII Ph. 13.

They sacrifice flesh, for the sacrifices of mine offerings, and eat it, but the Lord accepteth them not; now will he remember their iniquity and visit their sins.

होशिया अध्याय ८ वाक्य १३

दे सैक्रिफाइस फ्लेश फ़ौर दि सैक्रिफाइसेज़ औफ माइन औफ़रिंग्स ऐंड ईट इट , बट दि लौर्ड ऐकसेपटेथ देम नौट; नाउ विल ही रिमेम्बर देअर इनइकुइटी ऐंड विज़िट देयर सिन्ज़ ।

वे लोग मेरे भेट के नाम पर मांस का वलिदान करते है औ झट उसे खाजाते हैं परन्तु वह जगदीश्वर इनका कुछ भी ग्रहण नहीं करता इसलिये वह अब इन के अन्याय को स्मरण रखेगा औ इन के पापों का बदला लेगा ।

HOSIA CHAPTER IV PHRAZE 2 & 3.

By swearing, and lying, and killing, and stealing, and committing adultery they breakout, and blood toucheth blood. Therefore shall the land mourn.

होशिया अध्याय ४ वाक्य २, ३,

बाइ स्वयरिंग, ऐंड लाइंग, ऐएड किलिंग, ऐंड स्टीलिंग, ऐएड कमिटिंग एडल्टरी दे ब्रेकआउट, ऐंड व्लड टचेथ व्लड देअर-फ़ोर शैल दि लैंड मोर्ण ।

अर्थात् सौगंध खाने से, झूंठ बोलने से, जान मारने से, चोरी करने से औ परस्त्री गमन करने से सब के सब फूट पड़ते है औ रुधिर रुधिर को स्पर्श करता है इसलिये जिस पृथिवी पर ऐसे बुरे काम होते है उसके निवासियोंको पछताना पड़ेगा अथवा उतनी पृथ्वी उजाड़ होजावेगी ।

ISAIAH CHAPTER I PHRAZE 11 & 15.

To what purpose is the multitude of your sacrifices unto me said the Lord, I am full of the burnt offering of rams and the fat of the fit beasts and I delight not in the blood of bullocks or of lambs or of the goats.

इसाया अध्याय १ वाक्य ११, १५,

टु व्हाट पर्पज़ इज़ दि मलटीच्यूड़ औफ़ इयोर सक्रिफाइ-सेज़ अन्टू मी सेड दि लार्ड, आइ ऐम फुल औफ़ दि बर्न्ट औफ़-रिंग्स औफ़ रैम्स ऐंड दि फैट औफ़ दि फ़िट बीस्ट्स ऐंड आइ

डिलाइट नौट इन दि ब्लड औफ़ बुलौक्स और औफ़ लैम्ब्स और औफ़ दि गोट्स ।

अर्थात् ईश्वर ने कहा कि तुम्हारे बलिदान का समूह मेरे किस काम का है, मैं तो भेड़ों औ पुष्ट चौपायों की चर्बी के होम के भेंट से थक गया हूं अर्थात् तुम लोगों ने इतने बलिदान किये कि खाते २ मेरा पेट भरगया है, इसलिये मैं नहीं प्रसन्न होता हूं बैलों, मेमनों, औ छागों के लहू से ।

लीजिये और सुनिये ।

NEW TESTAMENT.

ROMANS CHAPTER XIV PHRAZE 20 & 21.

For meat destroy not the work of God. All things indeed are pure, but it is evil for that man who eateth with offence. It is good neither to eat flesh nor to drink wine, nor anything whereby thy brother stumbleth or is offended or is made weak.

रोमैंस अध्याय १४ वाक्य २०, २१,

नवीन संहिता

अपने भक्ष के लिये ईश्वर की रचना को नष्ट मत करो । इसमें सन्देह नहीं कि सब वस्तु जो ईश्वर ने बनाई है पवित्र हैं परन्तु जो मनुष्य किसी को दुःख पहुंचाकर खाता है वह पाप करता है, मांस खाना अथवा मद्य पीना भला नहीं है अथवा किसी प्रकार का ऐसा कार्य करना उत्तम नहीं है जिस से तुम्हारे भाई को ठोकर लगे, धक्का पहुंचे, वा दुःख हो वा निर्बलता प्राप्त हों ।

प्यारे सभासदो ! बहुतेरे ईसाई अपने बाइब्ल (इंजील) के पूर्वभाग पुरानी संहिता को नहीं मानते इसालिये मैने यह वाक्य उनकी नई सहिता (NeW Testament) से दिखलाया है ।

और प्रमाण लीजिये ।

HOSIA CHAPTER VI PHRAZE 6.

For I desire mercy and not sacrifice, and the knowledge of God more than burnt offerings.

होशिया अ० ६ वा० ६

फ़ौर आइ डिज़ायर मरसी ऐंड नौट सैक्रिफ़ाइस ऐंड दि नौलेज औफ़ गौड मोर देन वर्न्ट औफ़रिंग्स ।

ईश्वर कहता है कि मै दया चाहता हूं बलिदान नहीं चाहता, ईश्वर का ज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान इन हवन औ चढावे इत्यादि से उत्तम है ।

फिर सुनिये

Micha Chapter III Phraze 2 to 5.

Who hate the good and love the evil; who pluck off their skin from off them and who their flesh from off their bones. who also eat the flesh of my people, and flay their skin from off them; and they break their bones and chop them in pieces, as for the pot, and as flesh within the caldron. Then shall they cry unto the Lord but he will not hear them, he will even hide his face from them at that time as they have behaved themselves ill in their doings.

मीका अध्याय ३ वाक्य २ से ५ तक

हू हेट दि गुड ऐंड लव दि ईव्ल, हू प्लक औफ़ देयर स्किन फ़ौम औफ़ देम ऐंड हू देयर फ्लेश फ़ौम औफ देयर वोन्स। हू आलसो ईट दि फ्लेश औफ माइ पील ऐंड फ्ले देयर स्किन फ़ौम औफ देम; ऐंड दे ब्रेक देयर वोन्स, ऐंड चौप देम इन पीसेज़ ऐज़ फ़ौर दि पौट ऐंड ऐज़ फ्लेश विदिन दि कैल्डरन. देन शैल दे क्राइ अनटू दी लौर्ड बट ही विल नोट हियर देम। ही विल ईव्न हाइड हिज़ फ़ेस फ़ौम देम ऐट दैट टाइम ऐज़ दे हैव विहेव्ड देम-सेल्व्ज़ इल इन देयर डूइंग्स।

अर्थात् जो लोग भलाई से घृणा करते हैं औ बुराई को प्यार करते हैं, जो पशु पत्तियों के खाल को उन के शरीर से और मांस को उन की हड्डी से खींच लिया करते है, जो मेरे बनाये हुए जीवों का मास भक्षण करते है औ उनसे उनका चमड़ा निकाल डालते है, जो उनकी हड्डियों को तोड़ डालते हैं औ उनको टुकड़े २ काट कर बोटियां बनाते है औ भिन्न २ पात्रों में और दे-गचों में उनके मास को उसनते हैं तो वे हज़ारों वार उस ईश्वर के सामने पुकारेंगे तौभी वह उनकी एक भी नहीं सुनेगा किन्तु उस समय वह अपना मुह उनसे फिरालेगा क्योंकि उन लोगों ने अपनी करनी बहुत ही बुरी की है।

यदि कोई ईसाई यों कहे कि मांस ऐसे उत्तम पदार्थ को तो तुम खाने के लिये रोकते हो तो हम लोग खावें क्या? तो सुनो तुम्हारा ईश्वर तुम्हारे वाइबल में खाने को यों आज्ञा देता है औ

खाने की वस्तुओं को बताता है ।

Genesis Chapter I PHRAZE 29

And God said, behold, I have given you every her bearing seed which is upon the face of all the earth, and every tree, in which is the fruit of a tree yielding seed, to you it shall be for meat.

ऐंड गौड सेड बिहोल्ड, आइ हैव गिव्न इउ एवरी हर्ब बेयरिंग सीड व्हिच इज़ अपौन दि फ़ेस औफ़ औल दि अर्थ ऐंड एव्री ट्री इन व्हिच इज़ दी फ्रूट औफ़ ए ट्री ईलडिङ्ग सीड, टू इउ इट शैल बी फ़ौर मीट ।

अर्थात् ईश्वर ने कहा, देखो मैंने तुमको प्रत्येक उद्भिज चांवल, मूंग, अरहर, चना, मोठ इत्यादि दिया है जिसमें बीज लगा हुआ है (अर्थात् खाने के पश्चात् उनके बीज से फिर आगे के लिये वही उत्पन्न होंगे) जो सर्वत्र सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल पर हैं फिर तुमको दिया है मैंने वृक्ष जिनमें उन के फल लगते हैं जिस फल से बीज होता है, यही तुम्हारे भोजन के पदार्थ है ।

प्यारे श्रोताओ ! मैंने आप को अपने सनातन धर्म से, मुसल्मानों के मत से औ ईसाइयों के धर्म से (जान मारना औ मास भक्षण करना निषेध है) भली प्रकार सिद्ध कर दिखलाया और भी मैं अनेक प्रकार के प्रमाण इन तीनों मत से दे सकता हूं पर अत्यन्त विस्तार औ अति उक्ति के भय से संक्षिप्त करदेता हूं क्योंकि अभी तो इस विषय में बहुत कुछ कहना है ।

प्यारे सज्जनो ! अनेक व्यक्ति जिनको हिंसा पर अत्यन्त प्रीति है, दिन रात हिंसा करने औ मांस भक्षण करने ही में आनन्द मान रक्खा है. अपनी अमूल्य आयु का अधिक भाग हिंसा ही में व्यय करते है. हिंसा करना अपने जीवन का लाभ मान रक्खा है, वे यों कहपड़ेंगे कि चलोजी चलो ! मै किसी भी धर्म का ग्रन्थ नहीं मानता, जितने धार्मिक ग्रन्थ हैं सब मनुष्यों के बनायेहुए ढकोसले है. मै किसी धर्म के बन्धन में नहीं, मै स्वतन्त्र स्वेच्छाचारी ( ) हूं और फ्रीथिंकर (Free thinker) हूं. अनीश्वरवादी हूं मैं कुरान, पुरान, इंजील तिंजील नहीं मानता, मै केवल प्रकृति (Nature) का प्रत्यक्ष प्रमाण मानता हूं, यदि कोई मुझको इस सृष्टि के प्रत्यक्ष प्रमाण से यह दिखला देवे कि मनुष्य मांसाहारी नहीं बनाया गया है तब मै मानजाऊंगा ।

मेरे बुद्धिमान फ्रीथिंकरो ! लीजिये मै भी आप के कहने से थोड़े काल के लिये किसी धार्मिक ग्रन्थ को नहीं मानता हूं, जानेदीजिये सब ग्रन्थों को तिलांजलि देदीजिये, आइये अब मेरे समीप आइये मै आप को प्रत्यक्ष प्रमाण से औ ईश्वर की रचना के नियम से अर्थात् सृष्टिक्रम (Nature) से सिद्ध कर दिखलाता हूं कि मनुष्य मांसाहारी नहीं है इसलिये व्यर्थ हिंसा करना इसका धर्म नहीं है ।

देखिये इस सृष्टि में चार खान के जीव परमात्मा सृष्टिकर्त्ता ने बनाये । अण्डज, पिण्डज, उष्मज, स्थावर, जिन में प्रथम तीन अर्थात अण्डज, पिण्डज, उष्मज, की संज्ञा* वहिर्मुख बनाई इस-

* समझने की शक्ति

लिये उनको दुःख, सुख, का भान होता है औ चौथे स्थावर की संज्ञा अन्तर्मुख बनाई इसलिये उनको दुःख सुख का भान नहीं होता, इसी कारण इन स्थावरों के छेदने, कूटने, पीसने इत्यादि में किसी प्रकार की हिंसा नहीं है, क्योंकि हिंसा का तो तात्पर्य क्लेश पहुंचाने से है औ जिसको क्लेश का भान ही नहीं होता उसे कोई क्या क्लेश पहुंचावेगा अतएव अनाज, फूल, फल, इत्यादि के भोजन में हिंसा नहीं है, यदि कोई कहपड़े कि उनकों भी क्लेश होता होगा, हम लोगों को इसका ज्ञान नहीं होता इस से क्या ? संभव है कि स्थावरों को काट कूट करने में भी क्लेश होता हो तो भाई पहिले जिनको हम प्रत्यक्ष देख रहे है कि दुःख होता है उनके त्यागने का तो उपाय करलें पीछे अनाज इत्यादि को भी छोड़ केवल हवा पीकर अथवा जल पीकर निर्वाह करेंगे फिर हवा औ पानी को भी छोड़ देवेंगे क्योंकि इनमें भी जीव है अर्थात् एकदम् अन्न जल छोड़ तप करना आरम्भ कर देवेंगे जैसा पूर्व के ऋषि मुनि महात्माओं ने किया है, यह बात तो बड़े ऊंचे स्थान वालों की है, जो लोग महात्मा है वे ऐसा अनुमान करने लगजाते है कि सर्वत्र जीव ही जीव है इसलिये सब छोड़ निराहार हो तप करे ! हम लोगों का इस प्रकार बात करना छोटा मुंह बड़ी बात है, क्योंकि एक दिन भोजन न मिले तो आकाश के तारे गिनने लग जावें, आखों से सूझे नहीं, किसी से बात न की जावे फिर ऐसी ऊंची श्रेणी की बात क्यों करनी ।

प्यारे श्रोताओ ! अब ही जिनको प्रत्यक्ष देखते है कि दुःख सुख का भान होता है उनके विषय सुन लीजिये । मै सृष्टिक्रम

(Nature) से अपने नेचरियों को दिखलाता हूं कि मनुष्य मांसाहारी नहीं बनाया गया।

अब विचारिये अण्डज, पिण्डज, उष्मज, इन तीन जानवारों में हम लोग पिण्डज है अर्थात् माता के पिण्ड से उत्पन्न होते हैं अब पूछना चाहिये कि सृष्टिक्रम से पिण्डजों को जगत्कर्त्ता ने मांसाहारी बनाया वा नहीं? तो प्रत्यक्ष देखते हैं कि बैल पिण्डज है, मांस नहीं खाता, भैंस पिण्डज है मास नहीं खाता, घोड़ा पिण्डज है मांस नहीं खाता, गदहा पिण्डज है मांस नहीं खाता, ऊंट पिण्डज है मांस नहीं खाता, बन्दर पिण्डज है मांस नहीं खाता, मृग पिण्डज है मांस नहीं खाता, इसी प्रकार बकरे मेंढे, इत्यादि सब पिण्डज है मास नहीं खाते।

हमारे श्रोता इधर उधर सुनकर मन ही मन कहरहे होंगे कि देखो बाबाजी कैसी चतुराई के साथ उन ही पिण्डजों का नाम लेरहे है जो मांस नहीं खाते, हमें बोलने की आज्ञा मिलती तो हम कहदेते उन पिण्डजों को जो मांस खाते है।

प्यारे श्रोताओ! आप तकलीफ़ न करें, मै भी उन पिण्डजों को जानताहूं जो मांस खातेहै सो सुनिये— व्याघ्र (شیر) पिंडज है मास खाता है, श्याल पिंडज है मांस खाता है, भेडिया पिडज है मांस खाता है, कुत्ता पिंडज है मांस खाता है, बिल्ला पिंडज है मांस खाता है इत्यादि २।

लीजिये साहब! अब तो बडाही कठिन हुआ— मैं तो चाहता था कि मनुष्य पिंडज है इसलिये बैल घोडे इत्यादि दो एक पिंडजों को देखलाकर झट् सिद्ध करदूं कि पिंडज मांस नहीं खाते इसलिये

मनुष्य भी पिंडज होने के कारण मांस खाने का अधिकार नहीं रखता पर सो तो मेरी वात नहीं वनी, पिंडजों में बहुत से मासाहारी भी निकल आये।

प्यारे सभासदो! घवडानेकी वात नहीं है अवही तो वात पक्की वनी अव तो और भी उत्तम हुआ कि दोनों प्रकार के पिंडज निकल आये अव तो मै वहुतही शीघ्र सिद्ध करदूंगा कि मनुष्य मासाहारी नहीं है।

देखिये अभी आप सुनचुके हैं कि दो प्रकार के पिंडज हैं एक घासाहारी दूसरा मांसाहारी, अव हमलोग वैल घोडे इत्यादि घासाहरियों को एक ओर एक पंक्ति [قطار Row] में खडा करें औ व्याघ्र भेडिये इत्यादि मासाहारियों को दूसरी ओर एक पंक्ति में खडाकर के दोनों पंक्तियों के मध्य में मनुष्य को खडाकर यों विचारें कि मनुष्य को किस पंक्ति में डालना चाहिये? इनका न्याय तव ही होगा जव इनके आगे कुछ खाने पीने को रखाजावे, देखिये खाने पर तो विवाद ही उठाहुआ है इसलिये सफ़ाई का गवाह **पीना** होगा क्योंकि न्याय करते समय जिस पर शंका होती है उसकी सफ़ाई का गवाह उसके समीप वाला होता है फिर खाने पर झगडा है तो **पीना** सफ़ाई का गवाह होगा अर्थात् पानी पीने के समय प्रत्यक्ष देख पड़ेगा कि मनुष्य किस पंक्ति वाला है।

घासाहारी, मांसाहारी, औ मनुष्य तीनों के आगे पानी रख दीजिये तो फिर देखिये जितने घासाहारी है [वैल, घोडे, गदहे, ऊंट, वकरे इत्यादि] सव होठ जुटा कर घोंट से पानी पीवेंगे

और जितने मांसाहारी है (व्याघ्र, भेडिये, श्याल, कुत्ते, बिल्ले इत्यादि) सब जीभ लटकाकर पानी को चाटेंगे घोंट से नहीं पीवेंगे, मध्य में मनुष्य पानी पीरहा है उसकी ओर देखिये यदि वह स्वभाव से जिह्वा लटकाकर पानी पीता हो तो मांसाहारियों की मण्डली में डालिये नहीं जो होंट जुटाकर पानी पीता हो तो घासाहारियों की मंडली में डालिये। (करतल ध्वनि) अब आप प्रत्यक्ष देखलें कि मनुष्य मांसाहारी नहीं बनाया गया। एक बार सब मिल बोलिये।

हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।
हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे॥

प्यारे श्रोतृगण। सृष्टिकर्त्ता ने इस संसार में दो प्रकार के पिंडज बनाकर दोनों में नानाप्रकार के भेद दिखलाकर मानो मनुष्यों को यह उपदेश करदिया कि तुम मांसाहारी नहीं हो।

एक भेद तो मैं आपको अभी दिखला ही चुकाहूं कि मासाहारी जिह्वा लटकाकर पानी पीते है औ घासाहारी होठों को जुटाकर पानी पीते है मनुष्य भी होठ जुटाकर पानी पीता है इसलिये मांसाहारियों में इसकी गिनती नहीं होसकती

अब मै और भी कई प्रकार के भेद दिखलाता हूं सो सुनिये—

देखिये जितने घासाहारी है उनके दांत चौड़े २ (Flat) होते है और मांसाहारियों के दांत नोकीले सूओं के ऐसे होते हैं, मनुष्य के दांत भी चौड़े २ है इसलिये मनुष्य फलाहारी है, मांसाहारी नहीं।

मांसाहारियों के नख नोकीले तीक्ष्ण ऐसे होते हैं कि जिस

शरीर से चाहें पजे मारकर मांस निकाल लें औ घासाहारियों के नख चौड़े २ होते है मनुष्य के नख भी चौड़े है इसलिये मनुष्य घासाहारी है मासाहारी नहीं है और सुनिये—

मांसाहारियों की आख की वनावट विधाता ने ऐसी बनाई है कि अंधेले में अधिक सूझे औ उजेले में अर्थात दिन में कम सूझे। व्याघ्र कुत्ते बिल्ले सवों को दिन में कम सूझता है औ रात्रि में अधिक इसलिये व्याघ्र श्याल इत्यादि रात्रि को जगलों में फिरते है औ शिकार मारकर खाते हैं दिनको सोजाते है। बिल्ले रात्रि को अत्यन्त अंधेरे घर में चूहोंको जिस शीघ्रता के साथ पकड़ते है वैसी शीघ्रता से दिन को नहीं पकड़ते क्योंकि दिनको कम सूझता है। घासाहारियों को दिन में पूर्णप्रकार सूझता है औ रात्रि के अंधेले में कम सूझता है इसीकारण गाड़ियों में वहलियों में घोड़ो औ वैलों के आगे दीपक जोड़कर चलाने की आज्ञा है। इसी प्रकार मनुष्य को दिन में अधिक औ रात्रि को कम सूझता है अतएव मनुष्य घासाहारियों में है मासाहारियों में नहीं।

मांसाहारी पिण्डजों की आखें जन्म के समय बन्द रहती हैं अर्थात् माता के गर्भ से निकलने के पश्चात् दस पन्द्रह दिन तक इनकी आखें नहीं खुलतीं औ घासाहारियों की आंखें जन्म ही के समय से खुली आती है इसीप्रकार मनुष्य की आंखें भी जन्म ही से खुली निकलती हैं इसलिये मनुष्य मांसाहारियों में नहीं है वनस्पत्याहारी है।

मांसाहारी जब अपने जोड़े से मिलते है तब फसजाते है आपने

कुत्ते कुत्तियों को फंसजाते देखा होगा इसी प्रकार व्याघ्र, श्याल, इत्यादि सब मांसाहारी फंसजाते हैं पर घासाहारी नहीं फंसते इसलिये मनुष्य शाकाहारी है, मांसाहारी नहीं।

मांसाहारियों को पसीना नहीं होता और शाकाहारियों को पसीना होता है इसीप्रकार मनुष्य को पसीना होता है इसलिये मनुष्य शाकाहारी है

प्यारे सभासदो! अब तो मैं ने अपने फ्रीथिंकरों के लिये नेचर से प्रत्यक्ष सिद्धान्त करदिया कि मनुष्य मांसाहारी नहीं है बनस्पत्याहारी है

यदि कोई यह शंका करे कि मांस नहीं खाने से निर्बलता होगी, मनुष्य दुर्बल हो जावेंगे, तो यह उनकी शंका ठीक नहीं, देखिये अरने भैसे औ शूकर जो मांस नहीं खाते कैसे बलिष्ठ औ पुष्ट होते है कि जिस बन में ये रहते हैं उस में व्याघ्र मारे डरके नहीं जाता यहांतक कि यदि ये शूकर औ अरने भैसे व्याघ्र के बन में चलेजावें तो व्याघ्र उस बन को छोड़ देता है। व्याघ्र औ शूकर को एक संग छोड़ दीजिये फिर देखिये शूकर व्याघ्र से कभी नहीं भयभीत होगा व्याघ्र ही शूकर से पीठ फिरा लेवेगा।

मनुष्यों में भी जो मांस खाने लगते है वे शाकाहारियों से दुर्बल होजाते है, देखिये बंगाली औ तिर्हुतनिवासी अधिक मांस औ मछली खाते है औ मथुरा के चौबे मास नहीं खाते पर एक मथुरा का चौबे पांच सात बंगालियों को औ तिर्हुतियों को अपने कक्ष (बग़ल) में दाब रखेगा।

अंग्रेजी डाक्टरों की कई पुस्तकों से यह सिद्धान्त होचुका है की मांस में पौष्टिक सत्ता अनाज से कम है, क्योंकि मांस के १०० भाग में केवल ३६ भाग वह सत्ता रहता है जिस से पुष्टि होती है शेष ६४ भाग पानी ही पानी है और अनाज के १०० भाग में ८० से लेकर ९० तक पुष्ट करने वाली सत्ता है केवल १० अथवा २० भाग पानी है।

जो लोग शाकाहारी (Vegetarian) है अनाज खाकर रहते है उनमें शारीरक रोग इतने नहीं होते जितने मांसाहारियों में, इंगलैंड औ अमेरिका के वनस्पत्याहारियों (Vegetarians) में आजतक कोई विशूचिका से ग्रस्त नहीं हुआ है यह दृष्टान्त है।

प्रौफ़ेसर फ़ारेम ने लिखा है कि अंग्रेज़ों से जो बड़े मांसाहारी हैं उनके भाई स्काटलैंड़ के रहने वाले जो कम मास औ अधिक वनस्पति खाते है, अधिक बलवान होते है औ स्कौच लोगों से आयर्लैण्डी लोग जो केवल रोटी औ आलू खाकर निर्वाह करते है अधिक पुष्ट औ बलवान होते हे

अब मै आपको कई अंग्रेजी डाकटरों की सम्मति ठीक २ अंग्रेज़ी में लिखकर दिखलाताहू, यदि इस विषय को पूर्ण प्रकार जानना हो तो(Sidney H Beard) सिडनी एच वियर्ड साहब की एक छोटी सी पुस्तक जिसका नाम (Is flesheating Morally Defensible) है पढकर देखिये—

Linnaeus (whose zoological classification is generally accepted) places man with the Anthropoid apes, at the head of the highest order of the mammiferous animals. The structure of these apes bears the closest resemblance to that of man and they are all fruit-eaters in their natural state.

अर्थात् डाक्टर लिनायस जिनके बनाये हुए प्राणिविद्याशास्त्र के बिभाग को सब बुद्धिमान स्वीकार करते है वह जीवों के बिभाग करते समय स्तन रखने वाले जीवों की सब से ऊपर श्रेणी में मनुष्य को मनुष्याकार वाले बानरों के साथ रक्खा है जिनका रूप मनुष्यों से मिलजाता है इन बानरों का स्वभाविक आहार फल है मांस नहीं इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य मांसाहारी नहीं है।

Prof. Sir Richard Owen F. R. S, states "The Anthropoids and all the quadrumana, derive their alimentations from fruits, grains, and other succulent vegetable substances and the strict analogy which exists between the structure of these animals and that of man clearly demonstrates his frugivorous nature."

अर्थात् प्रॉफ़ेसर सर रिचार्ड ओवन एफ, आर, एस, वर्णन करते है कि मनुष्याकार बानर औ सर्व प्रकार के मनुष्य समान चार हाथ पाव वाले जीव फल अनाज औ अन्यान्य प्रकार के रसमय बनस्पतियों से अपना भरण पोषण करते है और इनमें औ मनुष्यों में जो आकार की अत्यन्त समता है वह सिद्ध करदेती है कि मनुष्य बनस्पत्याहारी है मांसाहारी नहीं।

Professer Baron Cuvier says " The natural food of man, judging from his structure, consists of fruits, roots, and vegetables".

अर्थात् प्रोफ़ेसर वैरन कूवियर कहता है कि मनुष्य की रचना की ओर विचार करने से ऐसा बोध होता है कि मनुष्य का स्वाभाविक आहार फल कन्द और वनस्पतिया है ।

प्यारे सभासदो ! जैसा कि मै पाहिले आपको सुना चुका हूं कि मनुष्य के दात की वनावट घासाहारी पिण्डजों से मिलती है इसीके विषय में प्रोफ़ेसर लौरन्स कहता है, सो सुनिये ।

Prof W M Lawrence F R. S states " The teeth of man have not the slightest resemblance to those of carnivorous animals, and whether we consider the teeth, jaws, or digestive organs, the human structure closely resmbles that of the frugivorous animals"

प्रोफेसर डवल्यू एम लौरेन्स एफ. आर. एस. कहते है कि मनुष्यों के दात की समता मासाहारियों के दात से एक दम कुछ भी नहीं है और जव हमलोग दात, चौआ, औ पाकस्थली की रचना ध्यान देकर देखते हैं तो वेखटके यह वात सिद्ध होजाती है कि मनुष्य की प्रकृति फलाहारी पशुओं के समान है ।

Doctor Oldfield M. R C. S. L. R. C. P. writes " To day there is the scientific fact assured that man belongs not to the flesh-eaters, but to the fruit-eaters. To day there is the chemical fact in the

hands of all, which none can gainsay, that the products of the vegetable kingdom contains all that is necessary for the fullest sustenance of human life"

डाक्टर ओल्ड फ़ील्ड एम. आर. सी. एस. एल. आर. सी. पी. लिखते है कि इन दिनों न्याय से यह भली भांति निश्चय हो चुका है कि मनुष्य मांसाहारियों में नहीं है वरु फलाहारियों में है आज सबों के हाथ में रसायनिक सिद्धान्त प्राप्त है जिसे कोई नहीं खण्डन करसकता कि बनस्पतियों की जाति में वे सब आवश्यकीय पदार्थ वर्त्तमान है जिनसे मनुष्य जीवन का पूर्ण प्रकार भरण पोषण हो सक्ता है।

Doctor F. A. Pouchet, the author of the Universe, declares "It has been truly said that man is frugivorous. All the details of his intestinal canal, and above all his dentition, prove it in the most decided manner."

डाक्टर एफ़. ए. पौचेट, यूनीवर्स ग्रन्थ का कर्त्ता कहता है कि यह सत्य है कि मनुष्य फलाहारियों में है इस की आंत की नलियों से विशेष कर इस के दांत की रचना औ भेद से यह वार्त्ता स्वच्छ रीति से सिद्ध है।

प्यारे सभासदो! इस विषय में अनेक विज्ञानविद प्रौफ़ेसरों औ चिकित्सा शास्त्र में प्रवीण बड़े २ डाकटरों के वचन देसकता- हूं पर समय थोड़ा है औ बहुत कहना रहगया इसकारण इतना बहुत है।

सरकार इंगालिशिया की आज्ञा से यूरोप के कृषिकारों के आहार के विषय जो एक रिपोर्ट सन् १८७२ ईस्वी में तैयार हुई थी उसके देखने से बोध होता है कि स्वीडन (Sweden) रूस (Russia आयरलैंण्ड (Iroland) हौलैंड (Holland) इत्यादि देशों में गृहस्थ लोग बहुत ही कम मांसाहार करते हैं कहीं २ तो करते ही नहीं कहीं २ कम करते हैं औ यह सिद्ध होगया है कि जो लोग पहिले मास खाने के कारण दुर्बल रहते थे वे अब मास छोड़ देने से पुष्ट औ बलवान होगये हैं ।

प्यारे सभासदो ! क्या कहूं ? किससे कहूं ? इस अंधाधुन्ध के समय मेरी कौन सुने ? जो कठोरता औ निर्दयीपन बेचारे गरीब नहीं बोलनेवाले (बे ज़बान) जीवों के साथ की जाती है कहने योग्य नहीं है, जब उनके भयकर औ असह्य दृश्य नेत्रों के सामने स्मरण होआते हैं तब शरीर कम्पायमान होजाता है, रोंगटे खडे हो आते हैं, कलेजा दहल जाता है, आखों में आसू भर आते हैं, औ दोनों हाथ जुटकर आकाश की ओर होजाते हैं औ ईश्वर से यही प्रार्थना करनी पड़ती है कि हे दयामय, तू इन गरीब भेड बकरे, गाय, बैल इत्यादि को कहा भूल गया, इन पर जो ज़ुल्म औ निर्दयीपन हो रहे हैं उन की कहीं सीमा नहीं है, बूचडख़ानों तक पहुंचाने के लिये ये रेलगाड़ी औ स्टीमरों (अग्निनौका) पर भूखे, प्यासे, निर्बलता से गिरते पडते दण्डों की मार खाते जाडे औ गरमी को सहते घसीटे जाते कैसी कठोरता के साथ चढ़ाये जाते हैं कि जब ये रेल के स्टेशनों पर अथवा समुद्र के किनारे उतरते हैं तो सैकड़ों मरे हुये निकलते हैं, कितनों की टाग कितनों के सींग

टूट जाते हैं, फिर ये वूचड़ खाने हत्यागार में पहुंचाये जाते है जहां क़साई लोग इनको तीन २ दिन बिना अन्नपानी के रखते है पश्चात बडी कठोरता से मारते है:—

Plymouth Veterinary Department Report to the Privy Council records that in one year 14024 animals in course of transit to this country were thrown into the sea (by what methods you must imagine) 1240 were landed dead and 455 were slaughtered on the quays to save them from dying of their wounds.

अर्थात् प्लैमथ (Plymouth) के पशुचिकित्सा के दफ़तर से जो प्रीवी कौन्सल (Privy Council) में रिपोर्ट (Report) भेजीगई है उस में लिखा है कि इस देश के व्यापार में १४०२४ पशु एक साल के भीतर समुद्र में फेंकदियेगये आप अनुमान कर सक्ते है कि किस कठोरता से वे फेंकेगये होंगे १२४० मरेहुए निकले और ४५५ ऐसे घायल होरहेथे कि उनको इस क्लेश से मरजाने के भय से उतरने के स्थानों पर काट दियेगये।

हमारे सभासद अनुभव कर सकते हैं कि जब एक स्थान के व्यापार में २७१९ अर्थात् तीन हज़ार पशुओं की इस प्रकार हत्या की जाती है तो इस समय सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल पर मांसाहारियों के कारण न जाने कितने लाख जीवों की हत्या होती होगी।

सिडनी साहब (Sidney) अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि Now having given you some faint idea of these atrocities let me tell you that every day in so called

Christian countries at East one million cattle, sheep and pigs are put to death-being at the rate of nearly 1000 (one thousand) per minute. This statement is supported by the statistics furnished by Sir Robert Giffen to the Royal Commission on agriculture.

अर्थात् अव मै आपको इस महाघोर पाप कर्मों का एक संक्षिप्त तात्पर्य्य देखाकर कह सकताहूं कि ईसाई देशों में प्रतिदिन कमसे कम एक मीलियन १०००००० अर्थात् १० लाख गाय, बैल, भेंडी औ सूअर के वच्चोंकी हत्या की जाती है, सर रावर्ट गिफेन साहब के पत्रों से जो इन्होंने कृषी के रायल कमीशन को भेजा है यह बात पुष्ट होती है।

प्यारे सभासदो! अव इन वेचारे निर्वल जीवों की जो दशा मारने के समय की जाती है उसे आप न पूछें सुनने से आंखों से आसू निकल पडेंगे, हृदय काप उठेगा, वूचड खानों में कसाइयों का यह सिद्धान्त है कि किसी प्रकार पशुओं को मारडालना चाहिये इसकी आवश्यकता नहीं है, कि ये वेचारे तलवार से शीघ्र मारदिये जावें वरु इनके वीच मस्तक पर कुल्हाडों की मार ऐसी मारी जाती है कि ये वहुत देर में वड़े कष्ट के साथ मरते है

Dr. Oldfield M. A, M. R. C S, visiting the Deptford abattoir where the most experienced men are employed, saw a poor cow struck repeatedly until she felt literally sick, one blow of the axe entering the eye.

सिडनी साहब लिखते है कि डाक्टर ओल्डफ़िल्ड ने स्वयं अपने नेत्रों से डेप्टफ़ोर्ड (Deptford) के हत्यागार में देखा कि एक गायके मस्तक पर बारंबार कई कुल्हाड़े चलाये गये यहां तक कि एक कुल्हाड़ा उस बेचारी अनाथ गौ के आंख में घुसगया जिसकी चोट से वह बेचारी निश्चेष्टा होगई।

इसी प्रकार बारंबार देखा गया है कि इन पशुओं के मस्तक पर कई कुल्हाड़ों की मार पड़ती है तब इनके प्राण बड़े कष्ट से निकलते है।

इस प्रकार इन जीवों के मारने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि चमड़ा बड़ा निकले और उसका मूल्य अधिक मिले क्योंकि एक ही बिलस्त चमड़ा छोटा होजाने से मूल्य कम होजाता है।

प्यारे सभासदो! न तो यह बलिदान है न कुर्बानी है यह तो केवल लोभ वश औ जिव्हा स्वाद वश महाघोर पाप करना है क्योंकि ऐसे मारने से जानवरों का रुधिर बाहर नहीं निकलने पाता खाने वाले कहते है कि लहू नहीं निकलने से मांस स्वादिष्ट होता है।

अब मै इस महाघोर अन्याय के विषय अधिक कुछ न कहकर यह देखलाता हूं कि मांस खानेवाले नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त होकर अत्यन्त कष्ट पाते है औ बहुत से प्राणी इसीकारण शीघ्र अपना प्राण खो बैठते है

गाय, बैल, भेड़ी इत्यादि पशुओं में औ शूकरों में नाना प्रकार के विचित्र रोग उत्पन्न होते है, प्लीहज्वर (Splenic fever.) पार्श्व शूल सन्निपात (Pleuro-pneumonia) चेचक (Tuberculosis)

नाडीवर्ण (Tuberculosis) इत्यादि रोगों से झुण्ड की झुण्ड भेड बकरियां एक दिन में मरजाती है, इनके मास को जो लोग खाते है उनको भी इसी प्रकार के रोग सताते है दमा इत्यादि रोग इनही पशुओं के मांस खाने से उत्पन्न होते है।

प्रायः ऐसा देखागया है कि भेड़ी, बकरी पालने वाले गडरिये जब देखते है कि उनके जानवरों में किसी को रोगी होने का लक्षण पाया गया चट बूचड़ खाने में लेजाकर सस्ते दाम से बूचड़ों को दे आते हैं, जब बूचड़ (क़साई) उनको मार उनका मांस बनाता है तब उस मांस में कई ठौर रोगों के चिन्ह पाये जाते है, बूचड़ खूब समझ जाता है कि यह मास भ्रष्ट है रोगों का उत्पन्न करने वाला है पर अब क्या करे पैसा दे चुका है इसलिये उस मास को फेंक नहीं सकता केवल उन टुकड़ों को जिन में कुछ चिन्ह पाये जाते है निकालकर अलग करदेता है औ सब मासाहारियों के हाथ बेचलेता है, इन चिन्हवाले टुकड़ों को इन्सपैक्टर के भय से बूचड़ अलग करदेता है क्योंकि जिन २ बड़े २ शहरों में मास के हाट की परीक्षा करने को एक इन्सपैक्टर गवर्नमैण्ट की ओर से नियत रहता है जो मांसको जांचता है मास में किसी प्रकार का विकार देखने से फेंकवा देता है, पर यह इन्सपैक्टर भी केवल ऊपर की दृष्टि से अत्यन्त साधारण रीति से देखता है इसलिये जो रोगों के अत्यन्त छोटे २ कीड़े मांस में गुप्त रीति से फैलजाते है उन्हें देख नहीं सकता

मुख्य तात्पर्य्य कहने का यह है कि सहस्रों मनुष्य मासाहार के कारण भिन्न २ रोगों से ग्रस्त हो प्रति वर्ष इस देश में औ अन्य यूरोप अमेरिका इत्यादि देशों में मरजाते हैं।

डाक्टरों ने इस विषय में वारंवार जहां तहां सम्मति दी है।

यही मांसाहार मद्यपान के फैलाने का भी मुख्य कारण है जो लोग वनस्पत्याहारी हैं उन में मद्य का प्रचार हो ही नहीं सकता।

मद्य प्रचार से क्या २ हानियां होती हैं सर्वों पर भली भांति प्रकट है, एक तो मद्यपियों का चित्त अत्यन्त ही चंचल होता है किसी कार्य्य को मद्यपी स्थिरतापूर्वक समझ कर नहीं करता जो वात जिस समय मद्य के झोंक में चित्त पर चढ़गई विना विचारे कर बैठता है पीछे पछताता है ऐसा करने से कभी २ द्रव्य इत्यादि की व्यर्थ बहुत बड़ी हानि होती है, अमूल्य समय भी निरर्थक चला जाता है दूसरे मद्यपी की चित्त वृत्ति पाप की ओर अधिक झुकती है जिस से बहुत बड़े २ अनिष्ट होते है।

अनेक प्राणी इस मेरे वचन को सुन झट यों कह पड़ेंगे कि मांस खाने औ मद्यपान करने में तो कोई दोष नहीं है मनुस्मृति धर्मशास्त्र में लिखा है कि।

न मांसभक्षणे दोषो, न मद्ये नच मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला॥

मनु० अध्याय ५, श्लो० ५६

अर्थात् मासभक्षण करने में, मद्यपान करने में तथा मैथुन(स्त्रीप्रसंग) करने में दोष नहीं है क्योंकि जीवों की प्रवृत्ति इन कामों में देखी जाती है यदि इनसे निवृत्ति होजावे तो महा उत्तम फल है अर्थात् जो मनुष्य इन कर्मों को त्याग देवे उसे महा फल प्राप्त हो।

प्यारे सभासदो ! इस श्लोक के प्रथम भाग से यह तो अवश्य नि श्चय होजाता है कि मांस खाने, मद्यपीने औ मैथुन करने में दोष नहीं है, यदि ऐसा ही है तो इस स्मृति का नाम धर्मशास्त्र क्यों रखाजावे इसे अधर्म शास्त्र क्यों न कहें, दूसरी बात यह है, कि मनु ऐसे महात्मा को बुद्धिमान् क्यों कहें पागल अथवा उन्माद ग्रस्त क्यों न कहें क्योंकि वही मनु उसी अध्याय के श्लोक ४६ में लिखते है कि विना जीवहिंसा किये मास की प्राप्ति नहीं होसकती औ हिंसा करना अस्वर्ग्य है अर्थात् नरक का कारण है इसलिये मास खाना वर्जित है जैसा मैं अभी थोड़ी देर पहले आपको सुनाचुका हूं (देखो पृष्ठ) फिर वही मनु उसी अपने अध्याय में दूसरे ठौर लिखते है कि मास खाने में दोष नहीं है, तो इससे मनु का एक वचन उन्ही के दूसरे वचन से खण्डन होजाता है ।

फिर तो जिस ग्रन्थ में इस प्रकार का उन्माद हो वह बुद्धिमान् के मानने योग्य नहीं है, औ न उस ग्रन्थ का कर्त्ता बुद्धिमान् कहा जावेगा, लीजिये और सुनिये ।

वही मनु जो यहा कहते हे कि (न मद्ये) अर्थात् मद्यपान में दोष नहीं है वही मनु अपनी स्मृति के ग्यारहवें अध्याय में लिखते है कि—

सुरां पीत्वा द्विजो मोहा, दग्निवर्णां सुरां पिवेत् ।
तया सकाये निर्दग्धे, मुच्यते किल्विषात्ततः ॥
गोमूत्रमग्निवर्णं वा, पिवे दुदकमेव वा ।

पयो घृतं वा मरणा द्गो शकृद्रसमेव वा ॥

मनु अध्याय ११ श्लोक ९१, ९२

अर्थात् जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) सुरा (शराव) पीवे तो उसे चाहिये कि पीने के पश्चात् अग्निवर्ण का सुरा पीवे तात्पर्य्य यह कि मद्यपान के पश्चात् उस मद्य को इतना तपावे कि लालवर्ण जलती हुई आग के समान होजावे तब उसे पीकर एकदम शरीर से दग्ध होकर मरजावे तब मद्य पान के पाप से छूटता है ।

गोमूत्र, जल, गो का दूध, घृत, औ गोवर का रस इनमें से एक किसी को इतना तपावे कि अग्नि समान दहकता हुआ औ खौ-लताहुआ देख पड़े फिर उसे तबतक पीता जावे जबतक मरजावे तब सुरापान का पाप दूर होता है ।

गौड़ी पैष्टीच माध्वीच विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवेको तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः।

मनु० अ० ११ श्लोक ९५

गुड़ से बनै सो गौड़ी, चावल की पिष्ट से बनी हुई पैष्टी औ महुआ के वृक्ष को मधु कहते है सो महुआ के फूलों से बनी हुई को माध्वी कहते है यही तीन प्रकार की सुरा है सो जैसे इनमें एक को नहीं पान करने योग्य कहा वैसे और दोनों भी ब्राह्मण के पान करने योग्य नहीं, इसी प्रकार मनु महाराज इस अध्याय में ९८ श्लोक तक मद्य पान का प्रायश्चित्त कहते चले गये है ।

वही मनु जो एक स्थान में लिखते है कि (न मैथुने) मैथुन करने में दोष नहीं है फिर वही मनु बारहवें अध्याय श्लोक ६० में लिखते हैं कि—

संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम्।
अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः॥

पतितों के साथ अर्थात् महाघोर पापियों के साथ सगति करने से, पराई स्त्री के साथ प्रसंग करने से, औ ब्राह्मण का धन हरलेने से, मनुष्य ब्रह्मराक्षस होता है। इस प्रकार पर स्त्री प्रसंग में श्रुति स्मृतियों ने नानाप्रकार के दोष लगा इस मैथुन रूप पाप को वर्जित किया।

प्यारे सभासदो! बहुतेरे प्राणी ऐसा भी कहदेते है कि (न मैथुने) यहां मैथुन का तात्पर्य्य अपनी धर्म पत्नी के संग से है इसलिये मनु कहते हैं कि मैथुन में दोष नहीं है, भला थोड़ी देर के लिये मै ने भी मानलिया कि मनु का ऐसा ही तात्पर्य्य है, पर मांस औ मद्य के विषय जो लिखा कि दोष नहीं है सो किस प्रकार के मांस औ मद्य के लिये लिखा तो बहुतेरे प्राणी यों उत्तर देवेंगे कि यज्ञ में जो विधि मास है औ सोमरस जो मद्य है सो यज्ञ में दियाजाता है, ऐसे मास औ मद्य में दोष नहीं है अर्थात् मनु महाराज का यह तात्पर्य्य है कि यज्ञ का अवशिष्ट मास औ मद्य (सोमरस) औ धर्म पत्नी के संग मैथुन में दोष नहीं है, सच है, बुद्धिमानों ने इस श्लोक को मनु का समझकर मनु महाराज पर किसी प्रकार का कलक न लगे इस बचाव के लिये खैंच खाचकर यह अर्थ लगा दिया पर यह श्लोक ऐसे किसी साधारण पक्षपाती का रचा हुआ है कि इस खैंचातानी के अर्थ का भी निर्वाह न होने दिया क्यों कि आगे लिखा है कि (प्रवृत्तिरेषाभूतानां) भूतों अर्थात् जीवों की इन कामों में प्रवृत्ति होनी जीवों का स्वभाविक धर्म है, सच है केवल एक मैथुन

में तो अवश्य देखाजाता है कि पशु पत्ती इत्यादि का स्वभाविक धर्म है, मांस भत्तण में भी सबका तो नहीं पर किसी २ जीव की स्वभाविक प्रवृत्ति है पर मद्य पान में तो किसी की भी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती है भला विचारिये तो सही कि पशु पत्ती इत्यादि जीवों की प्रवृत्ति मद्य पान में कहा है, किस भट्टी में इनके लिये मद्य चुलाया जाता है, किस बोतल औ किस ग्लास में ये मद्य डालकर पीते है ? कहीं नहीं ! कभी नहीं !! किसी भी काल में नहीं !!! इसलिये (प्रवृत्ति- रेषा भूतानां) ऐसा कहना एकबारगी अयोग्य है, कहने वाले ने सम्पूर्ण अङ्ग पर विचार नहीं किया, अपने स्वार्थ सिद्ध करने के उन्माद में कह मारा ।

अब हमारे बुद्धिमान सभासद विचार की दृष्टि से देखें कि मनु ऐसे महात्मा जिनकी स्मृति सम्पूर्ण भारत देश में प्रचलित है जिसकी आज्ञा सब छोटें बड़े मानते है क्या एकदम ऐसे विचार हीन होजावेंगे कि अपने वचन को आपही खंडन करें जबतक कोई विशेष कारण ऐसे खण्डन मण्डन करने का न हो तबतक कोई बुद्धि- मान अपना वचन आपही खंडन नहीं कर सकता, औ इस मांसाहार के विषय में इस अध्याय में कोई विशेष कारण भी नहीं देखाजाता इससे निस्सन्देह यही कहना पड़ेगा कि श्लोक नं० ५६ (न मांस भत्तणे दोषो) मनु का नहीं है यह श्लोक वाम मार्गियों ने अपना तात्पर्य्य सिद्ध करने के लिये इस अध्याय में डालदिया है ।

बहुत से ग्रन्थों से इस बात का पता लगता है कि बंगदेश में औ मिथिला प्रान्त में कुछ दिन तांत्रिक मत का विशेष प्रचार होगया यहांतक कि बड़े २ विद्वान बंगवासी औ मैथिल वाम मार्गी बनगये,

मद्य, मांस, मैथुन इत्यादि में जिनकी अत्यन्त प्रवृत्ति होगई, विद्वान होने के कारण इन का प्रभाव बड़े २ राजा महाराज औ धनवानों पर भली भांति पडने लगगया, फिर तो देश का देश वाम मार्गी हो मांस मत्स्य इत्यादि का भक्षण करने लगगया, इन्ही विद्वान वाम मार्गियों ने सनातन धर्म के अनेक पुस्तकों में अपना मन माना हाथ लगादिया, उस समय कहीं किसी प्रकार का छापाख़ाना (यन्त्रालय) प्रेस नहीं था हाथ से लिखकर पुस्तकें तैयार की जाती थीं, लेखक विद्वान होते थे, इस कारण वाम मार्गावलम्बी लेखकों ने केवल मनुस्मृति ही नहीं वरु सैकड़ों ग्रन्थों में मन माना हाथ लगादिया इन लेखकों के इस अन्याय के पकड़ने की सीधी रीति यह है कि जहां जहा धर्म के विरोध न्याय विहीन कुबुद्धि की बढ़ाने वाली मलीन बातें पाई जावें समझ जाना चाहिये कि वाम मार्गियों का लेख है।

प्यारे सज्जनो ! इन वाम मार्गियों ने यहांतक अन्याय किया कि जहां तहां से योग विद्या के श्लोक का ग्रहण कर अपना तात्पर्य्य सिद्ध करलिया, देखिये मै आपको योग विद्या की खेचरी मुद्रा साधन करने के विषय एक श्लोक हठ योग प्रदीपिका का सुनाता हूं —

गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिवेदमरवारुणीम् ।
कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः ॥

अर्थात् जो प्राणी नित्य गोमांस भक्षण करे औ अमर वारुणी को पीवे मै उसको कुलीन मानता हूं औ जो ऐसा नहीं करता वह कुलघातक है।

प्यारे श्रोताओ ! वाम मार्गियों ने झट इस श्लोक को ग्रहण कर अपना तात्पर्य्य सिद्ध करलिया, पर इसका अर्थ यह नहीं है,

मै आपको इसका यथार्थ अर्थ सुनाता हूं सुनिये —

श्री स्वामी सहजानन्द योगी कहते है कि (**गोमांसं भक्षयेन्नित्यं**) नित्य गोमांस भक्षण करे अर्थात् गो कहिये जिह्वा तिस जिह्वाके मांसको (अर्थात् सम्पूर्ण जिह्वा को उलटकर कण्ठ के भीतर प्रवेश करदेने को) गोमांस भक्षण कहा, फिर तिस जिह्वा के अग्रभाग (नोक) को ऊपर मस्तक के छिद्र में बढ़ाकर सीधी करदे जब ऐसा करेगा तब मस्तक में जो चन्द्रमा का निवास है उससे अमृत रस टपक कर जिह्वा के अग्रभाग पर गिरेगा उस गिरते हुए अमर रस को पान करता जावे ऐसे पान करने को अमर वारुणी पीना कहते हैं।

अब श्री योगी सहजानन्द जी कहते है कि जो पुरुष इस प्रकार जिह्वा को तालु में प्रवेश करके अमृत पान करता है अर्थात् खेचरी मुद्रा करता है उसे हम कुलीन मानते है औ जो ऐसा नहीं करता वह कुलघातक है।

प्यारे सभासदो ! मै कहांतक कहूं इसी प्रकार योग विद्या की वज्रोलीमुद्रा के विषय एक प्रकार के मैथुन का वर्णन है उसको वाम मार्गियों ने साधारण मैथुन में ग्रहण कर यह अर्थ लगालिया कि मैथुन में दोष नहीं है।

जिस मद्यपान औ मैथुन इत्यादि में धर्मशास्त्र नाना प्रकार के दोषों का निरूपण कर रहा है जिन कर्मों के लिये स्मृतियां नाना प्रकार के दण्डों की आज्ञा देरही है (जैसा मै पहले कहचुका हूं) कब संभव है, कि ऐसे घोर कर्मों में दोष न हो।

यदि कोई कट्टर मासाहारी यों कह पड़े कि नहीं जी (**नमांस भक्षणे दोषो**) यह श्लोक मनु ही का है और किसी का नहीं तो लीजिये

मैं भी थोड़ी देर के लिये मानलेताहूं कि यह मनु ही का श्लोक है तथापि मांसाहार का त्याग इस से भी सिद्ध होही जाता है क्योंकि इस श्लोक के अन्त में (**निवृत्तिस्तु महाफला**) ऐसा कहा जिसका अर्थ यह है कि मासभक्षण करने, मद्यपीने, औ मैथुन करने से निवृत्ति हो जावे तो बहुत बड़ा उत्तम फल है, मेरा भी तात्पर्य्य तो किसी प्रकार निवृत्ति से है।

बहुत से प्राणी जो मासाहार को अत्यन्त प्रिय समझ ते हैं औ शरीर पोषण अथवा जिह्वा स्वाद के वशीभूत होरहे है झट यों कह पड़ेंगे कि तुम (**न मांस भक्षणे दोषो**) इस श्लोक को मनु का नहीं मानते तो क्या —

श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा ।
भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥१८॥

इस श्लोक को भी मनु का नहीं कहोगे, यदि कहोगे तो इस श्लोक में तो श्वाविध (सेधा नाम जीव भेद) शल्यक, गोह गेंडा, कछुआ, शश (खरहा) इनको पंचनखों में मनु आदि भक्ष्य कहते हैं अर्थात् इन जीवों का मांस खाना चाहिये।

सच है, मैं इस श्लोक को मनुका मानताहूं औ स्वीकार करताहूं कि मनु ने इन जीवों के मांस को भक्षण करने योग्य कहा, पर बुद्धिमानों को इतना तो अवश्य विचारना चाहिये कि मनु ने ऐसा महात्मा होकर इन जीवों के मास भक्षण करने की क्यों आज्ञा दी ?

प्यारे सभासदो ! सृष्टि के आरंभ में दो प्रकार के प्राणियों की रचना हुई, एक की आसुरी सम्पदा से, दूसरे की दैवी सम्पदा

से, (देखो गीता अध्याय १५) इसी प्रकार मनुष्य भी इन दोनों सम्पदा से उत्पन्न हुए, दैवी सम्पदावाले कंद मूल फल इत्यादि से निर्वाह करते थे, जो आसुरी सम्पदा से हुए उनका स्वभाव आसुरी हुआ, अर्थात् जीवों को मारकर भक्षण करजाना जिनका साधारण व्यवहार था, कारण यह था कि पहले अन्न का अभाव था, जैसे अब कृषीकार इत्यादि हल जोतकर नाना प्रकार के बीज बोकर लाखों मन गोधूम, जौ, चांवल, शमा, कांगनी, अरहर, मूंग, मोठ, मटर इत्यादि उपजा लेते है ऐसे उस समय अर्थात् सृष्टि के आरंभ में नहीं उपजाने जानते थे, हल कोदाल इत्यादि बनाने नहीं जानते थे, किसी प्रकार के अन्न का कहीं पता भी नहीं लगता था, इस कारण अपने पेट की आग बुझाने के लिये ये आसुरी सम्पदा वाले मनुष्य जो जङ्गलों में वृक्षों के नीचे अपना निवास कर रात्रि बिता दिया करते थे दिन निकलते ही अपने आहार के खोज में जङ्गलों में इधर उधर फिरते हुए जिस किसी पशु पक्षी को पाजाते थे पत्थरों से मार अग्नि में झुलस खाजाया करते थे इनको यह विचार एकदम नहीं था कि किसे छोड़ना औ किसे खाना चाहिये, ये लोग भील गोंद, चुहाड़, धीमर इत्यादि के नाम से पुकारे जाते थे एवम् प्रकार जब कुछ दिन सृष्टि चल चली, दैवी सम्पदा वाले कन्द मूल फल से निर्वाह करते रहे, औ ये आसुरी सम्पदावाले नाना प्रकार के जीवों के मांस से निर्वाह करते रहे, जब मनु महाराज का समय आया औ मनु ने देखा कि आसुरी सम्पदावाले सर्व प्रकार के जीवों को मार खाजाते है जिससे हिंसा बहुत होती है तब मनु विचारने लगे कि हिंसा की निवृत्ति करनी चाहिये पर इन आसुरी सम्पदा वालों की संख्या

बहुत बड़ी है यदि एकदम मासाहार रोकदू तौ इनको किस प्रकार पालन करूं क्योंकि अन्नों के बीज का कहीं पता नहीं है, कृपी करना कोई नहीं जानता, हल कोदाल इत्यादि कृपी के शस्त्रों का भी प्रचार नहीं है, इस कारण पहले यह उचित है कि भिन्न २ पर्वतों से भिन्न २ प्रकार के अन्नों के बीज लाये जावें, पृथ्वी को हल कोदाल इत्यादि शस्त्रों से जोतकर अन्न उत्पन्न करने की विद्या इन आसुरी सम्पदा वाले मनुष्यों को सिखलाई जावे, जब अन्न उत्पन्न होने लगजावे तब अन्न देकर इनके मासाहार की निवृत्ति की जावे, ऐसा विचार कन्द मूल फल से निर्वाह करने वाले देवी सम्पदावालों को आज्ञा देदी कि वे भिन्न २ पर्वतों में भ्रमण कर जहां से जिस प्रकार के अन्न का बीज हाथ लगे ले आवें औ पृथ्वी खोदने के भिन्न २ शस्त्रों के बनाने की शिक्षा देवें औ जबतक इन कामों की पूर्त्ति हो तबतक इन मासाहारियों के पेट की आग की शान्ति के निमित्त गिने गिनाये थोड़े जीवों के मास खाने की आज्ञा दीजावे, इस आज्ञा से इतना लाभ तो अवश्य होगा कि जहा सैकड़ों हज़ारों जीव मारे जाते हैं तहा केवल चार पांच ही मारे जावेंगे, ऐसा करने से १०० में ९५ की जान बचजावेगी हिंसा की थोड़ी कमी होजावेगी ऐसा कम करते २ किसी समय इस हिंसा की एकदम निवृत्ति होजावेगी।

प्यारे सभासदो! ऐसा विचार एक प्रकार का आपत् धर्म जान ये आज्ञा दी कि —

श्वाविधं शल्यक गोधां (देखो पृष्ठ)

इस श्लोक का तात्पर्य्य मै पहले सुना चुकाहूं इसलिये फिर दोबारा कहने की आवश्यकता नहीं है।

इस आज्ञा के अनुसार जव कुछ दिन निर्वाह करालिया औ इधर अन्नों के उत्पन्न करने की रीति सिखलाकर निर्वाह योग्य अन्न का प्रवन्ध करलिया तव यों आज्ञा दी कि विना यज्ञ के मांस खाना उचित नहीं औ जव ऐसी दशा आनपड़े कि विना मांस के प्राण की रक्षा न होती हो प्राण नाश होजाना संभव हो तव प्राण रक्षा मात्र मांस ग्रहण करलेवे अन्यथा न करे —

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया ।
यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये ॥
यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधिः स्मृतः ॥
अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसोविधिरुच्यते ॥

(मनु अध्याय ५ श्लो ० २७ , ३१ ,)

अर्थात् जव ब्राह्मण को भी मांस खाने की इच्छा उत्पन्न हो तो प्रोक्षित मांस (अर्थात् यथाविधि यज्ञ से शुद्ध किये हुए औ वचे हुए मास) को नियमानुसार भक्षण करसक्ता है, अथवा दूसरा आहार न मिलने से अथवा किसी रोग से अत्यन्त पिड़ित हो तो प्राण की रक्षा निमित्त औ रोग से मुक्त होने के निमित्त किंचित् मांस भक्षण करसकता है, (यह भी आपत धर्म है यथार्थ तो यह है कि प्राण चलाजावे तो जावे पर ज्ञानी पुरुष तो मांस कदापि भक्षण न करे) श्लो० २७

फिर कहते हैं कि यज्ञ के लिये मांस का खाना दैव विधि है औ इस से अन्यथा विना यज्ञ के मांस खाना राक्षस विधि है । श्लो०३१

जव कुछ दिन ऐसे चलालिया औ यह देख लिया कि अव

इतना अन्न साल २ उत्पन्न होसकता है कि विना मांस के सबों का निर्वाह होसक्ता है तब विधि मास के विषय भी यों आज्ञा दी कि वह विधि मांस भी आपत्तिकाल छोड़ दूसरे काल में खाना उचित नहीं. सो सुनिये ।

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदि द्विजः ।
जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैरद्यतेऽवशः ॥ ३३

अर्थात् मांस खाने की विधि का जाननेवाला द्विज विना आपत्तिकाल के विधिमांस भी न खाय क्योंकि विना आपत्तिकाल के जिनका मांस वह खाता है उन कर के वह परलोक में खायाजाता है ।

ऐसे धीरे २ हिंसा की निवृत्ति करते हुए जब देखा कि अब सर्व प्रकार के अन्न पुष्कल होनेलगे अब मांस की कोई आवश्यकता नहीं है तब एकदम मांस खाना वर्जित करदिया औ कहदिया कि

योऽहिंसकानि भूतानि ०— श्लो० ४५
नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां ०— श्लो० ४८
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता० — श्लो० ५१

इन श्लोकों का तात्पर्य मैं पहले पूर्ण रीति से सुना चुका हूं अब वारम्वार कहने की आवश्यकता नहीं है ।

प्यारे ! इसी पांचवें अध्याय में मनुमहाराज हिंसा निवृत्ति करते करते अन्त में यों आज्ञा देते हैं कि -

वर्षेवर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् । ५३

अर्थात् जो सौ वर्ष तक प्रत्येक वर्ष में अश्वमेध इत्यादि यजन करता

है औ जो जन्म भर मांस को नहीं खाता उन दोनों के पुण्य का फल समान है।

यहां तक कि अन्त में मनु महाराज को यों कहना पड़ा कि

मांस भक्षयितामुत्र तस्य मांसमिहाद्म्यहम्
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः । ५५

अर्थात् इस लोक में जिसके मांस को मैं खाताहूं वह मुझको परलोक में खायगा वही मांस शब्द का अर्थ पण्डितों ने किया है।

प्यारे सभासदो ! यह अन्तिम आज्ञा मनु महाराज की है मास की निवृत्ति के विषय कहते २ अन्त में यह ५५ श्लोक कह समाप्त किया इसके आगे फिर मांस का विषय नहीं है, पर हमारे वाममार्गियो ने जब देखा कि अब हमारा काम बिगड़ता है अब मांस ऐसा रत्न हाथ से जाता है तब अछता पछता कर वही श्लोक नं० ५६ झट लगादिया कि —

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।

मनु महाराज के इतने बडे किये हुए परिश्रम पर झट यह श्लोक कहकर मानो ख़ाक डालदिया।

बहुतेरे मासाशी यों कहा करते है कि वेद में गोमेध, अश्वमेध, इत्यादि यज्ञों में पशुओं की हिंसा लिखी है इसलिये वैदिक धर्मवालों को हिंसा करने में कोई दोष नहीं लगता।

प्यारे श्रोताओ ! सचहै ! गोमेघ, अश्वमेध, इत्यादि का वेद में लेख है पर तहां हिंसा नहीं है, हिंसा में और पशुओं के बलिदान में बहुत ही अन्तर है। आजकल के भोले भाले हिन्दू

दुर्गाजी औ कलकत्ते की कालीमाई के स्थान में अथवा विन्ध्याचल देवी में जीवों की हिंसा करके वलिदान के नाम से पुकारते है और वलिदान को निन्दित करते है यथार्थ में सो वलिदान नहीं है वह तो हिंसा ही है, दुर्गाजी और कालीमाई की उपासना करनेवाले मन ही मन मुझपर क्रोध करेंगे पर मेरे प्यारे शाक्तो ! आपके वलिदान का मै खण्डन नहीं करता पर शोक की वात यह है कि जिस विधि से वलिदान होना चाहिये वह विधि वर्तमान काल में लुप्त होगई है उस विधि के जानने वाले विद्वानों का भी इस समय अभाव है इसलिये जो वलिदान आप करते है सो अविधि है और हिंसा है, वेद में जो पशुओं का वलिदान लिखा है सो हिंसा नहीं है सो हिंसा क्यों नहीं है मै आपको सुनाता हूँ सुनिये –

मै चौथे दिवस के व्याख्यान में जागरित १, स्वप्न २, सुषुप्ति ३ और तुरीय ४, इन चारों अवस्थाओं का वर्णन करचुका हूं (देखो व्याख्यान न० ४ पृष्ट १६२ से १७६ तक) जहाँ यह दिखलायागया है कि इस जीव की चार अवस्था है जिनमें जागरित, स्वप्न, सुषुप्ति, तक तो जीवों को दुख सुख का भान होता है पर तुरीय, अवस्था में आकर दुख सुख का भान नहीं होता इसलिये तीन अवस्था तक उनके प्राण का वियोग कराया जाय तो अवश्य हिंसा होती है पर तुरीय अवस्था में जीव को लाकर शरीर से वियोग करादेना हिंसा नहीं है क्योंकि तुरीय अवस्था में जीवत्व नाश होकर केवल शुद्ध चैतन्य निर्मल आत्मा आनन्द स्वरूप रहजाता है इसलिये उसे शरीर के दुख सुख का भान नहीं होता अतएव उस समय शरीर का वियोग करादेना एक प्रकार का बहुत बड़ा उपकार में है क्योंकि ऐसी अवस्था में यदि शरीर का वियोग न करादिया जाय

सो शरीर के साथ रहकर जीव को अनेक प्रकार के दुखे सुख बहुत दिनोंतक भोगने पड़ेंगे, सभव है कि फिर मरने के पश्चात् भी अनेक योनियों में भ्रमना हुआ चिरकाल तक दुख सुख भोगाकरे और फिर कभी उसको तुरीय की प्राप्ति नहो, इसलिये महात्माओं ने जब यह विचार किया कि मनुष्यों को तो उपदेश द्वारा प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, इत्यादि क्रियाओं को सिखलाकर उनमें मृत्यु के समय तुरीय अवस्था प्रगट कर शुद्ध चैतन्य निर्मल आत्मा हो मुक्त होजाने की शक्ति प्राप्त करदेते है पर पशुओं को जिन्हें स्वयम् अपने उद्धार करने का कोई भी उपाय नहीं है न जाने कितने दिन में अपनी मुक्ति का अवकाश पावेंगे कितने दिनतक अपने कर्मों के बन्धन द्वारा चौरासीलक्ष योनियों में भ्रमण करते रहेंगे ।

इस लिये यदि इन अशक्य और अनाथ जीवों की मुक्ति शीघ्र होजावे तो क्या अच्छीबात है अतएव उनके उद्धार का उपाय वेद मे इन यज्ञों को ही नियत करदिया ।

यह सब लोगों पर विदित है कि योगी लोग योगाभ्यास करके अन्तकाल में तुरीय अवस्था को प्राप्तकर शरीर छोड मुक्त होजाते हैं सो तुरीय जीव मात्र में है, यदि मरण काल में किसी जीव को तुरीय अवस्था प्राप्त होजावे तो वह अपना शरीर छोड़ मुक्त होजावे पर तहाँ प्रश्न यह है कि सो तुरीय इस में प्रगट कैसे होवे ? मनुष्य तो अपने परिश्रम द्वारा योगादि क्रिया का अभ्यास करके प्रगट करलेता है पशु पक्षी कैसे करै ? कीट पतग की तो गिनती ही नहीं है इसलिये जिस क्रिया द्वारा इनमें मृत्यु के समय तुरीय की प्राप्ति हो अथवा तुरीय प्राप्त होने के साथ ही इनका शरीर छूटजावे तो,

यह मुक्त ही है सो पूर्व के महात्माओं ने वेद में कुछ आश्रय पाकर यज्ञ द्वारा पशुओं के मुक्त करने की रीति निकाली अर्थात् यज्ञों में पशुओं को लाकर वेदी के सन्मुख खडाकर उसके चारों ओर वेद को स्वरों में गान करते हुए और नाना प्रकार के बाजों को ठीक ठीक स्वर और ताल में बजवाते हुए नाद द्वारा पशुओं में तुरीय प्रगट करने का परिश्रम करते थे, एक पशु छ: छ: महीने तक यज्ञशाला में रक्खा जाताथा और प्रतिदिन मन्त्रों और वाक्यों के द्वारा तुरीय प्रगट करने का परिश्रम किया जाता था जबतक तुरीय अवस्था उस पशु पर प्रगट नहीं होती थी तबतक आलंभन नहीं करते थे जब तुरीय अवस्था आजाती थी तब उसपर इतनी शीघ्रता के साथ खड्ग देते थे कि फिर उसका संकल्प लौटकर शरीर की ओर न आने पावे और खड्ग पड़ने का दुख न होने पावे क्योंकि यदि लौटकर फिर कहीं आलभन के समय जीव को शरीर की सुधि होगई तो हिंसा होजाती थी फिर उसको यज्ञ के नाम से नहीं पुकारते थे और यजमान को नाना प्रकार के प्रायश्चित्त करने पडते थे पर यह विद्या अर्थात् पशुओं में तुरीय प्रगट कर उनको शरीर से अलगकर मुक्त करदेना थोड़े ही दिनतक चली पश्चात् लुप्त होगई, इसी कारण गोमेध, अश्वमेध, औ श्राद्ध में मांस का पिण्ड देना इत्यादि कर्मों को रोकना पड़ा और अब वर्तमान समय में तो जो कुछ बलिदान के नाम से किया जाता है सब हिंसा ही है क्योंकि अब ऐसे महात्मा बहुत ही कम है जो अपने शरीर में भी तुरीय अवस्था प्रगट कर सकें जब उनमें तुरीय अवस्था की पहिचान ही न रही तो कब संभव है कि पशुओं में वह तुरीय अवस्था को प्रगट करसकें फिर तो उनका बलिदान इत्यादि देना महा अनर्थ है इसलिये "गवालंभनं

अश्वालंभन, इत्यादि रोक दिये गये अतएव किसी समय यदि गोमेध, अश्वमेध, इत्यादि होते भी थे तो अब उनके विषय बोलना भी निरर्थक है।

पशुओं में तुरीय अवस्था के आने की पहिचान यह है कि सुरीले शब्दों के सुनते २ एकाग्रता बढ़ती २ जब एकाग्रता की पूर्णता होजाती है तो एक प्रकार का सुख प्राप्त होता है और पशुओं की आंखों की पुतलियां पलकों के भीतर चली जाती है और वह अर्धोन्मीलित जान पड़ती है, दोनों कान खड़े होजाते हैं, शिर नीचे को अपने आपसे झुकजाता है, जीव संकल्प रहित होजाता है, फिर शिर का झुकना और खड्ग का मारना एक साथ होना चाहिये, जैसे गोलियों के लगने के पश्चात् बन्दूक का शब्द सुनने में आता है ऐसे ही प्राण वियोग के पश्चात् शरीर का पतन होना उचित है।

(शंका)

यदि तुरीय अवस्था में जीवों को लाकर मारदेना पुण्य है और उपकार समझा जाता है तो क्या अच्छी बात है कि किसी महात्मा अथवा योगी को जो तुरीय अवस्था में बैठारहे झट एक तीक्ष्ण खड्ग लेकर मारडाले जिससे बहुत बड़ा पुण्य हो।

(उत्तर)

इसमें सन्देह नहीं है कि तुरीय अवस्था में शरीर का वियोग करदेना बहुत ही बड़ा उपकार है पर महात्मा और योगियों के प्राण को ऐसी अवस्था में शरीर से विलग करदेने का विधि नहीं है निषेध है, वेद ने जिस कर्म को जिस स्थान में विधि करदिया है अर्थात् आज्ञा देदी है उसी स्थान में वह कर्म विधि है और दूसरे

स्थान में निषेध है क्योंकि कोई कर्म स्वतः न पाप है न पुण्य है पर वेद ने जहां विधि किया है वहां वही कर्म पुण्य है और जहां निषेध किया है वहां पाप है, कर्म का फल चाहे हो वा नहो पर विधि के स्थान पर विधि और निषेध के स्थान पर निषेध ही होगा जैसे कोई ब्राह्मण किसी चाण्डाली के साथ प्रसंग करे तो कर्म का फल पुत्र होना वेद रोक नहीं सकता अर्थात् ऐसा जानकर कि यह चाण्डाली है पुत्र होगा बन्द नहीं होसकता पर वेद ने ऐसी आज्ञा नहीं दी इस-लिये वही स्त्रीप्रसंग जो अपनी स्त्री के साथ धर्म समझा जाता है अन्य स्त्री में पाप समझा जायेगा अब प्रत्यक्ष देखा जाता है कि वही स्त्रीप्रसंग एक स्थान में पाप और दूसरे स्थान में पुण्य है, स्त्रीप्रसंग स्वतः न पाप है न पुण्य है प्रकृति का धर्म है क्योंकि सब योनियों में बिना विचार के ही देखा जाता है पर महापुरुषों ने और निगमागम इत्यादि ने मनुष्यों में बिना विचार के मैथुन करना पाप कर दिया है, इसी प्रकार वेद ने जहां २ प्राण को शरीर से भिन्न करने की आज्ञा दी है वहां विधि है और स्वर्ग का देने वाला है जैसे युद्ध में मरनेवाले और मारनेवाले वीर स्वर्गगामी कहलाते हैं और युद्ध करना वीरों का धर्म है और युद्ध नहीं करना अधर्म है इसीपर सम्पूर्ण गीता बनीहुई है पढ़लो ।

(श्लोक)

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वार मपावृतं ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ ! लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥

इसी भीष्म को अर्जुन यदि दूसरे स्थान में मारदेते तो बहुत बड़े नर्क के भागी होते पर युद्ध में स्वर्ग के भागी हुए, इसी प्रकार

योगियों को तुरीय अवस्था में लाकर मारदेना पाप है और पशुओं को तुरीय अवस्था में मारदेना पुण्य है पर इस तुरीय के लुप्त होजाने से वर्तमान काल में अश्वालंभन, गवालंभन, पलपैत्रिक अर्थात् मांस से श्राद्ध में पित्रों को पिण्ड देना और मधुपर्क इत्यादि जितने काम मास के संवन्ध से होते थे सब रोक दियेगये।

प्रियसज्जनवृन्द! मैंने हिन्दू, मुसल्मान, औ ईसाई के धार्मिक ग्रंथों से और प्रकृति (Nature) से आपको सिद्ध करदिया है कि हिंसा करना उचित नहीं, जो प्राणी हिंसा का परित्याग करेगा उसी को और सब धर्मों के करने की शोभा है, हिंसा करने वाला चाहे कितना भी कुछ पुण्य करे ईश्वर को स्वीकार नहीं होगा, वेदों में भी बारबार यही आज्ञा है कि (माहिंᳬसि) अर्थात् जीव मत मारो, इसलिये जो लोग हिंसा को परित्याग करके अहिंसा धर्म के पालन करने वाले है वह चाहे कैसी भी नीच अवस्था में क्यों न हों ईश्वर के कृपापात्र होजाते है और उच्चगीत को प्राप्त होते है।

अब मै आपको अन्त में एक भक्त का वृत्तान्त सुनाकर यह दिखलाता हूं कि अहिंसा धर्म के पालन करने वालों पर ईश्वर किस प्रकार प्रसन्न होता है।

॥ कथा शबरी भीलनी की ॥
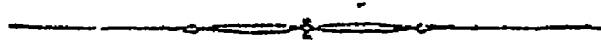
त्रेता के समय नागपुर में भीलों का राजा रहता था उसकी एक कन्या शबरी नाम करके थी जब वह विवाह के योग्य हुई तो उसके पिताने विवाह के निमित्त बहुत बड़ी २ तैयारियां कीं, बारातियों के भोजन के निमित्त हरिण, शूकर, बकरे, बकरी, साबर, इत्यादि अनेक प्रकार के सहस्रों जीवों को एकत्र करलिया।

एक दिन शबरी अपनी सखियों के साथ नगर की शोभा देखने निकली, नाना प्रकार की सजावटों और बनावटों को देखती हुई जब चिड़ियाखाने की ओर गई तो क्या देखती है कि सहस्रों जीव बँधे पड़े हैं, भूख प्यास से व्याकुल जिह्वा निकाले सांस लेरहे हैं, शबरी को यह देखकर बड़ी दया आई और सखियों से पूछा, यह जीव किसलिये एकत्र कियेगये हैं?

सखियों ने उत्तर दिया कि तुम्हारे विवाह में जो बाराती आवेंगे उनके भोजन के निमित्त यह सब मारे जावेंगे, यह सुन शबरी के नेत्रों में आंसू भरआया और आंखें बन्दकर ईश्वर से यों प्रार्थना करने लगी!

हे नाथ! हे दीनबन्धो! जब केवल मेरे इस एक जीव के निमित्त सहस्रों जीव वध किये जावेंगे तो परलोक में मैं क्या उत्तर दूंगी, न जाने मेरी क्या दशा होगी न जाने रौरव, कुंभीपाक, असीपत्र, इत्यादि किन २ नर्कों को भोगना पड़ेगा, त्राहि! त्राहि!! त्राहि!!!

एवम् प्रकार अत्यन्त उदासीन होकर और घबड़ाकर अपने रनिवास में लौटगई और चिन्ता करने लगी कि इस पाप से कैसे उद्धार होगा ? विचारते २ यों विचारा कि यदि मैं चुपके किसी जङ्गल की ओर विकल जाऊं और किसी पर्वत की कन्दरा मे छुपकर बैठरहूं तो न मेरा विवाह होगा, न बाराती आवेंगे, न यह जीव मारे जावेंगे, ऐसे विचार अर्द्ध रात्रि के समय अपने सब भूषण और वस्त्रों को उतार एक मैला कुचैला वस्त्र पहन दासी का स्वरूप बना रनिवास से बाहर विकल गई, रात्रि भर चलते २ जब प्रातःकाल होगया तो पर्वत की एक कन्दरा में जाबैठी कन्दरा का द्वार झाड़ियों से बन्द करदिया, जब रात्रि हुई कन्दरा से निकल आगे चलीं, इस प्रकार दिन को छुपती और रात्रि को चलती हुई छः महीने तक बराबर चलती २ दंडक वनमें पंपासर के किनारे जा पहुंची उधर प्रातःकाल होते ही नागपुर नगर में धूम मचगई कि शबरी का पता नहीं है। उस के पिता ने चारों ओर सवारों को भेज ढुंढवाया पर पता कहीं नहीं लगा, बहुत शोक के साथ विवाह रोकवादिया और उन पशु पक्षियों को छुड़वादिया, वे सब अपनी २ जान बचाकर जङ्गल को भागगये।

अब इधर शबरी का वृत्तान्त सुनिये, जब शबरी पंपासर के किनारे पहुंची तो विचारने लगी कि मैंने संसार सुख को तो परित्याग ही करदिया अब उचित है कि महात्माओं की सेवा करूं जिस से परलोक का सुधार हो, उसी पंपासर के तटपर श्री मतङ्गजी महाराज का आश्रम था जहां महापुरुष लोग रहा करते थे, शबरी ने विचारा कि मैं जाति में अत्यन्त नीच भीलनी हूं मेरा स्पर्श किया हुआ अन्न जल महापुरुष ग्रहण नहीं करैंगे फिर सेवा करूं तो क्या करूं

ऐसा विचार दिनभर जङ्गलों से लकड़ियों को तोड़ती और चुपकेसे थोड़ी रात रहते लकड़ियों के बोझ को और केले के पत्तों को चुपकेसे स्थान में पटक आती। बहुत दिनतक साधुओं को कुछभी पता न लगा कि ऐसा कौन भक्त है जो चुपकेसे लकड़ी और केले के पत्तों को रखजाता है।

अकस्मात् एक दिन मतङ्ग का एक चेला प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में पंपासर स्नान करने को चला जाता था उधर से शवरी लकड़ी और पत्ते लिये चली आती थी, मार्ग में शवरी के शरीर का धक्का उस चेले को लगा और एक जगह लकड़ी की नोकसे कुछ छिलगया इसलिये उस चेले ने क्रोध में आकर शवरी को एक लात मारी, शवरी गिरपड़ी. लकड़ी और पत्ते बिखरगये, शवरी घबड़ाकर रोने लगी और मनहीमन पछताने लगी कि मैं कैसी अभागिनी हूं कि संसारसुख तो मेरे प्रारब्ध से उतर ही गया अब परलोक सुधारने के निमित्त साधुओं की सेवा करती थी सो भी नहीं बनपड़ा साधु को मुझसे क्लेश पहुंचा अब क्या करूं? किधर जाऊं? और अपना दुख किस से कहूं? इतने में श्री मतङ्गजी महाराज स्वयम् स्नान करने को निकले, क्या देखते हैं कि मार्ग में एक कन्या बैठी रोरही है, समीप जा पूछा, पुत्री! तू कौन है? और क्यों रोती है? शवरी ने चरणों को पकड़ दण्डवत् कर अपने राज्य छोड़ने का कारण और उन के शिष्य के लात मारने का कारण कह सुनाया, मतङ्ग सुनकर बहुत पछताये और शवरी से कहा कि पुत्री! तू शोक मतकर! तू मेरे संग चल! फिर उसे अपने आश्रम में लेजा आश्रम के समीप एक पर्ण कुटी बनवाकर रहने की आज्ञा देदी और स्थान से भोजन वस्त्र इत्यादि का प्रबन्ध करादिया और उसे राममंत्र उपदेश कर यह शिक्षा देदी कि तू इस मंत्र को जपतीहुई रघुनाथ जी

की मधुर मूर्ति का ध्यान करतीहुई अपने भजन में मग्न रहाकर अब मेरे चेलों मे से कोई भी तुझे किसी प्रकार का क्लेश नहीं देगा।

अब आगे का वृतान्त सुनिये, जिस दिन से मतङ्ग के शिष्य ने शवरी को लात मारी उसी दिन से पंपासर का जल धीरे २ विगड़ना आरंभ होगया, बिगड़ते २ यहांतक विगड़ा कि उसमें कीड़े पड़गये और दुर्गन्ध आने लगा, जिस शिष्य ने शवरी को लात मारीथी उसी का काम स्थान में जल पहुंचाने का था, पंपासर के बिगड़जाने से उसको दो मील के दूरीपर एक झरने से पानी लाना पड़ताथा जव उसे पानी लाते २ अत्यन्त क्लेश हुआ तव वह अपने समान दो चार मूर्ख चेलों से मेल करके यह विचारने लगा कि भाई पंपासर क्यों विगड़ गया, हो नहो श्री गुरुजी महाराज जब से शवरी कन्या को अपने आश्रम में लेगये है तवही से पंपासर का जल नष्ट होगया है सो हम लोग सब चलकर गुरु महाराज से यों कहै कि यह कन्या आश्रम से निकाल दीजावे, ऐसे विचार सव मूर्ख चेले श्री गुरु महाराज के पास पहुंचे, मतंगजी उनके सब हृदय की वात जानगये और वोले, अच्छा भाई! मेरे पूर्व जन्म का कोई नष्ट कर्म उदय होआया जिस से तुम लोग इस प्रकार का कलंक लगाने को उचत होगये, वुद्धिमानों ने कहा है कि जब शरीर को इस प्रकार कलक लगजावे तब उस शरीर को शीघ्रही छोड़देना चाहिये सो मै अब इस शरीर का त्याग करूँगा, मेरे चेलों को और शवरी को वुलावो! इतनी आज्ञा पाते ही सब पछताने लगे, यह बात सर्वत्र फैलगई कि श्री मतङ्ग महाराज आज शरीर त्याग करैगे, सब के सब एकत्र होआये, मतङ्ग ने शवरी से यों कहा कि पुत्री! तू यहां ही इसी आश्रम में रहकर मेरी शिक्षा के अनुसार राम नाम मंत्र को जपती

हुई रघुनाथ जी की माधुरी मूर्ति के ध्यान में बैठी रह, एक सहस्र वर्ष बीतने पर जब वह परब्रह्म सच्चिदानन्द दशरथ के गृह में अवतरेंगे, तब यहां आकर तुझे नवधा भक्ति उपदेश करेंगे, यह मेरा अन्तिम वरदान तुझको है, तू किसी प्रकार की चिन्ता मतकर, फिर चेलों से यों कहा कि योगानल प्रगट करने के लिये योगासन तैयार करो ।

· एवम् प्रकार योगासन तैयार करवाकर योगानल में अपने शरीर को भस्म करादिया ।

इधर शबरी अपने गुरु की आज्ञानुसार भजन करने लगी, ऐसे करते २ जब ९९९ वर्ष बीतगये तब उस स्थान की एक पगदडी पै जा खड़ी होजाती और एकटक लगा उत्तर की ओर देखती रहती ऐसे मार्ग जोहते जब कुछ दिन और बीतगये तब बहुत शोच करने लगी कि क्या कारण है कि अभीतक रघुनन्दन पपासर की ओर नहीं आये, जिनके दर्शनों के लिये बड़े २ मुनी, ऋषी, योगी ध्यान लगाये बैठे रहते हैं कब संभव है कि मुझ ऐसी अभागिन को दर्शन देवेंगे क्योंकि एक तो मैं अपवित्र नारी, दूसरे जाति की भीलिनी, तीसरे सर्वप्रकार भक्तिहीन, और मेरी ऐसी कोई कमाई भी नहीं जिस से श्यामसुन्दर मुझ पर प्रसन्न हों, फिर बड़े २ महात्माओं के स्थानों को छोड़ कब मेरे स्थान पर आवेंगे, इसी प्रकार रात्रि भर पछताती और रोती, जब प्रातःकाल होजाता तब यह विचार कर कि गुरु महाराज का बचन मिथ्या नहीं होगा इसलिये आज पगदंडी पर खड़ी होकर फिर बाट जोहूं !

कभी २ उसके चित्त में यह आता कि दशरथनन्दन जिनके कोमल चरणारविन्द कमल से भी अधिक कोमल है यदि मेरी इस पर्णकुटी में आजावेंगे तो मैं उनको कहां बिठाऊंगी यदि मै अपने

राज्य भवन में रहती तो दूध के फेन से भी अधिक उज्वल और कोमल बिछावन और गद्दियों पर लेजाकर बिठालती पर अब इस वन में क्या करूं, सुनती हूं कि श्यामसुन्दर बड़े दयालु हैं और प्रीति की रीति को जानने वाले है (जानत प्रीति रीति रघुराई) चौ० (रामहिं केवल प्रेम पियारा ॥ जानलेहु जो जाननहारा ॥)

इसलिये वह प्रेमियों के स्थान में कोमल और कठोर का विचार न करके जहां बिठालूगी वहां बैठ जावेंगे फिर चलूं वन से कुश काटकर चटाई बुन रक्खूं।

ऐसे नित्य कुश काटकर लेजाती और चटाई बुना करती। चटाई बुनते समय नेत्रों से जो अश्रुधार टपक २ कर कुश पर पड़ते थे तहां ऐसा जान पड़ता था कि कोई यज्ञकर्त्ता महर्षि यज्ञ सिद्ध करने के लिये कुश को गङ्गाजल से सिक्त कररहा हो, सो शबरी प्रेम के यज्ञ को सिद्ध करने के निमित्त कुश को सिक्त कररही है, फिर कभी २ उसके चित्त में ऐसा आता कि जो दशरथ कुमार नाना प्रकार के पकान्न के भोजन करनेवाले मेरी झोंपड़ी में आजावेंगे तो मैं क्या भोजन कराऊंगी ऐसा विचार वन में जा बेर के फलों को तोड़ती और दोने में सजकर अपनी झोंपडी के भींतर रखदेती बेर तोड़ते समय विचारती कि जो बेर खट्टे होंगे वे रघुनाथ के मुख में कटु लगेंगे इसलिये चख २ कर जो मीठे बेर होते उन्हें दोने में रखती जाती और खट्टे बेरों को फैंक देती।

इधर दशरथ के गृह में श्री रामचन्द्र आनन्दकन्द प्रगट हुए और रावण को विध्वंस कर देवताओं के बन्धन छुड़ाने के लिये पिता की आज्ञानुसार वन में विचरते हुए दण्डकवन में आ पहुंचे, पंपासर के समीप

आतेही वनवासियों से पूछने लगे कि हे वनवासियो ! शवरी मैयाका आश्रम किधर है ? मुझे शीघ्र बतादो ! वनवासी बोले, हे नाथ ! शवरी का आश्रम पूछकर आप क्या करेंगे वह तो एक पगलीसी बुढ़िया है जो कभी हँसती है, कभी रोती है, कभी गाती है, और एक अत्यन्त छोटीसी पर्णकुटी में पडी रहती है. उसके स्थान में तो भोजन शयन का कुछ भी सुपास नहीं है वहा जाने से आपको क्लेश होगा यदि आप यहा रात्रि को निवास किया चाहते हो तो यहां से दाहिने हाथ की ओर वह जो विशाल बरगद का वृक्ष दीख पड़ता है वहा सघन कुञ्ज है उसी के भीतर श्री मतङ्ग महाराज का आश्रम है वहा सर्व प्रकार का सुपास है, आप वहा जाइये पहिले शवरी भी उसी आश्रम में रहती थी पर जब से मतंग ऋषी ने देह छोड़दिया तब से वहा से बायें हाथ की ओर बहुत दूर पर रहती है, रघुनन्दन ने कहा, नहीं भाइयो ! पहिले शवरी के ही आश्रम को जाऊंगा, पीछे मतंग के आश्रम के विषय देखा जावेगा, वनवासियों ने उत्तर दिया अच्छा महाराज आप बायें हाथ की ओर सीधे चले जाइये ।

अहा, प्यारे सभासदो ! देखिये रघुनाथ की दयालुता, भक्तवत्सलता, और प्रेम के प्रत्युत्तर देने का स्वभाव, जैसे शवरी आपके प्रेम में व्याकुल और विह्वल होरही है वैसे ही आपभी उसके विह्वल होते हुए वनवासियों से उसका आश्रम पूछते फिरते है । वह त्रिलोकी के ठाकुर चौदहों भुवन जिनके करतलगत है क्या नहीं जानते कि शवरी का आश्रम किधर है, पर नहीं, वह तो प्रेम भक्ति का प्रभाव दिखलाते है कि जो मेरे लिये व्याकुल होता है उसके लिये मै भी

विह्वल होता हूं (श्लोक) ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्
(जो नर नारद मोहिं न बिसारे तेहि न बिसारूं एक घड़ी)

तात्पर्य्य कहने का यह है कि जैसे शवरी रघुनाथ के प्रेम में व्याकुल होरही है तैसे ही वेभी उसके प्रेम में व्याकुल वन में ढूढ़ते जा रहे है।

चलते २ जब शवरी के आश्रम के समीप आये क्या देखते है कि शवरी एक पगदंडी पर ध्यानावस्थित खड़ी है और उसके नेत्रों से अश्रू बह रहा है कैसे जान पड़ता है मानो तपस्या स्वयम् रूप धारण कर खड़ी है, इतना देखते ही प्रीति की रीति जानने वाले रघुकुलभूषण श्री रामचन्द्र ने अपना धनुष बाण वहां ही पटकदिया और प्रेम से विह्वल हो दौड़ते हुए शवरी के गले में जा लिपटे और बोले मैया! आखें खोल! मै वही हूं जिसके ध्यान में तू दिन रात खड़ी रहती है, जब शवरी की आंखे खुलीं तो क्या देखती है कि गले में एक चन्द्रमा आकाश से उतरकर लिपट रहा है, बोली कि क्या मै स्वप्न देखरही हूं अथवा सचमुच कोई चन्द्रवदन मेरे गले से आलिपटा है, रघुनाथ बोले मैया! स्वप्न नहीं देख रही है मै हीं दशरथनन्दन रामचन्द्र हूं जिसके स्मरण में तू दिन रात व्याकुल रहती है, ले अब मै तेरे पास आगया हूं जैसी तेरी इच्छा हो मुझको आज्ञा दे मै उसे पालन करने को तत्पर हूं, इतना सुनते ही शवरी की आंखें फिर बन्द होगईं और अश्रू की धार फिर बहने लगी, रघुनन्दन अपनी जटा से आंसू पोंछने लगे और समझाने लगे कि हे मैया शवरी! तू किसी प्रकार की चिन्ता मतकर, मै तेरा होचुका, तू मेरी होचुकी, फिर शवरी प्रेम में मग्न होतीहुई राम लक्ष्मण दोनों भैया को गोद में उठा अपनी पर्णकुटी में लेगई और प्रेम से ऐसी

मस्त होगई कि उसको यह स्मरण न रहा कि मैं रघुनाथ को चटाई पर बिठाती हूं अथवा भूमिपर, जब रघुनाथ ने उसकी ऐसी व्याकुलता देखी तब उसके हाथ की बुनीहुई चटाई जो वहां पड़ी थी जिसे उसने इनके बैठालने को बनाई थी अपने हाथ से खैंचकर बैठगये और रघुनाथ को यह स्मरण होआया कि वे जूंठे बेर जो शबरी ने मेरे खाने के लिये रक्खे हैं अवश्य खाना चाहिये ऐसा विचार बोले, हे मा ! बहुत भूख लगी है कुछ खाने को हो तो ला शबरी तो मारे प्रेम के अपने शरीर की दशा ही भूल रही है क्या लावे बहुत दिन के जूंठे बेर के दोने जो पर्णकुटी में लाकर रक्खे थे रघुनाथ के सामने लाकर रखदिये रघुनाथ ने दोना उठालिया और जिन बेरों में दांत के चिन्ह स्पष्ट थे उन्हें रखलिये और जिन में दांत के नहीं थे उन्हें दोने से बाहर निकाल फेंकदिये फिर उसके दो भाग कर आधा लक्ष्मण को दिया और आधा आपने लिया, लक्ष्मण ने जब दांत के चिन्ह देखे तो उसे जूठे समझकर रघुनाथ की आखें बचाकर हाथ से पीछे की ओर फेंकदिया, वह दोना उनके हाथ से छूट धवलागिरि पर जागिरा और जिस स्थान पर जाकर गिरा उस स्थान का नाम द्रोणाचल होगया ।

इधर रघुनाथ लक्ष्मण की मनकी गति जानगये और मनहीं मन यों प्रण किया कि अच्छा भाई लक्ष्मण ! इस समय तुमने मेरे भक्त के जूंठे बेर का निरादर किया है पर बिना इस जूंठे बेर के खाये तुम्हारा कल्याण नहीं है ।

प्यारे श्रोताओ ! उसी बेर की गुठली द्रोणाचल पर्वत पर सजीवन जड़ी होगई और यह बात संसार में प्रसिद्ध है कि जब मेघनाद की शक्ति लक्ष्मणजी को लगी है तब हनुमानजी उसी

द्रोणाचल को लेआये और वही सजीवन मूरि निचोड़ कर उन के मुख में डालदियां तब उनका प्राण लौटा।

प्यारे श्रोताओ! आप जानते हैं कि वह सजीवन मूरि क्या थी उसी जूंठे बेर की गुठली थी जो लक्ष्मण ने फैंक दीथी। सच है! भक्तवत्सल भगवान ने अपनें भक्तों के जूंठन की बहुत बड़ी प्रशंसा की है। सब जानते हैं कि नारदजी भक्तों और साधु महात्माओं के जूंठन को खाकर ऐसे पवित्र होगये कि दासी पुत्र से ब्रह्म पुत्र होगये इसलिये साधु महात्माओं के जूंठन का निरादर नहीं करना चाहिये।

प्यारे सभासदो! इतने में मतङ्ग ऋषि के शिष्यों को यह सुधि मिली कि रघुकुलमणि श्री रामचन्द्र दण्डक वन में आगये और शवरी की पर्णकुटी को शोमायमान कर रहे हैं फिर सब शिष्यों ने यह विचार किया कि चलो रघुनाथ को अपनें आश्रम में ले आवें; इधर रघुनाथ जानगये कि मतङ्ग के शिष्य मेरे लेने के लिये आरहे हैं; शवरी से कहा कि मैया तू मुझे थोड़ी देर के लिये अवकाश दे कि मैं मतङ्ग के शिष्यों से मिलआऊं, इतना कह वहां से चले मार्ग में मतङ्ग के शिष्य मिले थोड़ी देर वार्ता करने के पश्चात् उनसे यह पूछा कि आप लोगों का आश्रम तो उपद्रव रहित है, राक्षस लोग तो आप लोगों को नहीं सताते, शिष्यों ने उत्तर दिया कि हे प्रभो! आश्रम में तो किसी प्रकार का उपद्रव नहीं है पर एक क्लेश है सो सुनिये।

पंपासर जिसके जल से स्थान का कार्य सरता था एकदम भ्रष्ट होगया है और उसके जल में कीड़े पड़गये हैं इसलिये हम लोगों को जल का बहुत कष्ट है, समय पर स्नान इत्यादि कोई भी कार्य नहीं सरता।

'रघुनाथ ने पूछा कि पंपासर के जलके बिगड़ने का मुख्य कारण क्या है ? और सब तो चुपरहे पर जिसने शबरी को लात मारी थी, बोल उठा, भगवान् ! शबरी जब कन्या थी इस आश्रम में आई थी मेरे गुरु मतङ्ग महाराज ने जब से उसे अपने आश्रम में रखलिया तबही से पंपासर का जल नष्ट होगया रघुनाथ को यह वचन सुनकर मनही मन बहुत शोक हुआ कि यह शिष्य कैसा मूर्ख है जो अपने गुरु को कलङ्क लगाता है रघुनन्दन मर्य्यादा पुरुषोत्तम अवतार हैं इसलिये उनकी बात सुनकर चुपरहे और बोले कि यदि ऐसा है तो तुम यह बताओ कि पंपासर का जल शुद्ध कैसे होगा शिष्य ने कहा, भगवान् ! जिस आपके चरण रज से अहिल्या पापवश शिला होगई थी तरगई उस चरणरेणु को आप जलसे स्पर्श करादें तो यह भी जल शुद्ध होजावे । रघुनाथ ने कहा बहुत अच्छा चलो मैं भी जल में प्रवेश करता हूं, ऐसा कह आपने जल में प्रवेश किया पर कुछ भी न हुआ फिर रघुनाथ ने कहा, भाई ! अब मैं क्या करूं ? यह तो चरणरेणु से भी शुद्ध नहीं होता सो ऐसा जानपड़ता है कि इसका मुख्य कारण अभीतक प्रगट नहीं हुआ कि यह जल क्यों बिगड़गया जबतक ठीक २ मुख्य कारण प्रगट नहो तबतक इसका उद्धार होना कठिन है, रघुनाथ का यह वचन सुन उनमें से एक शिष्य जो गुरुभक्त था बोल उठा, हे प्रभो ! यह मूर्ख शिष्य* व्यर्थ गुरु को कलंक लगाता है यह महामूर्ख विद्याहीन निरक्षर भट्टाचार्य्य है, सच तो यह है कि जिस दिन से इस मूर्ख ने शबरी ऐसी भक्ता को बिना अपराध लात मारी उसी दिन से इस पंपासर

* ऐसे शिष्य कलियुग में बहुत होंगे ।

का जल नष्ट होगया । इस मूर्ख का काम इस आश्रम में केवल पेट भरने का और आश्रम में पंपासर से जल पहुंचाने का है, अब इसको जल बहुत दूर से लाना पड़ता है इसलिये घबड़ाकर गुरु में कलंक लगाता है ।

रघुनाथ ने कहा, अच्छा ! जाओ ! शवरी मैया को लेआओ । सब दौड़गये और शवरी को ले आये, रघुनाथ ने कहा पंपासर से एक कमण्डल जल भरलाओ और शवरी मैया से यों कहा कि मैया ! तू इस जल में अपने चरण का अगूंठा स्पर्श करादे, शवरी ने आज्ञा पाते ही अपने चरण का अगूंठा उस जल में डुबादिया, जैसे उस कमण्डल का जल पंपासर में डालागया पंपासर का जल शुद्ध निर्मल दूध के समान होगया और उसके सर्व विकार जाते रहे ।

प्यारे सभासदो ! इसलीला से रघुनाथ ने मूर्ख शिष्यों को यह निश्चय करादिया कि शवरी निष्कलङ्क है, मतङ्ग ऐसे त्रिकालदर्शी महात्मा को व्यर्थ कलंक लगाया गया है और उसी के साथ २ यह भी दिखलादिया कि मैं अपने भक्तों को अपने से भी अधिक प्रतिष्ठा देता हूं । देखो कि मेरे चरणों के लगने से तो जल शुद्ध नहीं हुआ पर शवरी के चरण लगने ही से शुद्ध होगया, सच है, गोस्वामी तुलसीदास का वचन है ।

(राम से अधिक रामकर दासा)

फिर किसी महात्मा का वचन है ।

स्वामी से सेवक बड़ो , जो निज धर्म प्रमाण ।
राम बांधि उतरे जलधि , कूदि गये हनुमान ॥

प्यारे सभासदो ! एवम् प्रकार पंपासर शुद्ध करने के पश्चात् शिष्यों को गुरु भक्ति का उपदेश देके शवरी के आश्रम को लौटगये

और शवरी को नवधा भक्ति उपदेश कर यह प्रतिज्ञा की कि हे मैया ! जब मैं कृष्ण होकर अवतार लूंगा तब मेरी बहन तू सुभद्रा होगी और मेरे साथ २ तेरी प्रतिमा की भी लोग पूजा करेंगे ।

प्यारे सभासदो ! जो शवरी जाति की भीलनी थी जिसका स्पर्श किया हुआ जल कोई ग्रहण नहीं कर सकता था सो ऐसी उच्च पदवी को प्राप्त हुई कि आज जगन्नाथजी में सहस्रों महात्मा जिसकी प्रतिमा को शिर झुका रहे हैं

अब विचारना चाहिये कि शवरी किस धर्म के पालन करने से इस उच्च पदवी को प्राप्त हुई ? तो अवश्य यही कहना पड़ेगा कि

अहिंसा ! अहिंसा !! अहिंसा !!!

अर्थात् उसने जो अपने विवाह सुख को त्यागकर सहस्रों जीवों का प्राण अपने पिता के घर से छुड़वा दिया था और उनकी जान बचाई थी उसी अहिंसा धर्म का यह फल हुआ कि शवरी ऐसी उच्च पदको प्राप्त हुई ।

प्यारे सभासदो ! मै वार २ इस सभा में कहता हूं कि जो प्राणी अहिंसा का पालन करेगा उस पर परमात्मा की कृपा अवश्य होगी और वह शरीर से सदा सुखी रहेगा, क्योंकि हिंसा करने वाले के शरीर में कुछ न कुछ रोग अवश्य बना रहता है ऐसी मनु की सम्मति है ।

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

{ वक्तृता ७ वीं }
{ Lecture 7 th }
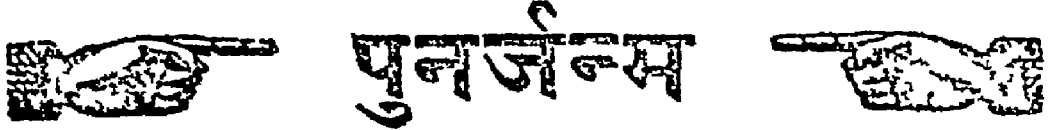
 पुनर्जन्म

METEMPSYCHOSIS
or
TRANSMIGRATIOM
of
SOULS

एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभिज्मन। विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजुर्मर्तेषु वृजिना च पश्यन्।

ऋग्वेद अष्टक ५ अध्याय ५ वर्ग १ मंत्र २

शंकरं शंकराचार्यं व्यासं नारायणात्मकम् ।
सरस्वतीं च ब्रह्माणं प्रणमामि पुनः पुनः ॥
प्रकाशितब्रह्मतत्त्वं प्रकृष्टगुणशालिनम् ।
प्रणवस्योपदेष्टारं प्रणमाम्यऽनिशं गुरुम् ॥
यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलंजगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

आज सनातन धर्म का सूर्य नाना प्रकार की विद्या रूप अपनी सुनहरी किरणों से युक्त सभासदों के अन्तःकरण रूप आकाश में ऐसी शोभा के साथ उदय हो आया है जिसके अद्भुत प्रकाश के सामने अज्ञानता की अन्धकार रात्रि धीरे २ फटती चली जारही है, पाखण्ड का चन्द्रमा विलगही तेजहीन होता चला जारहा है. नाना प्रकार के कुतर्क रूप तारागण जहा के तहां मलीन होरहे हैं, काम क्रोधादि क्रूर जन्तु अहंकारियों के हृदय रूप जङ्गलों में घुसते चले जारहे हैं औ प्रेम रूप मानसरोवर मे ईश्वर के युगल चरणारविन्दानुरागी भक्तों के हृदय रूप कमल विलग ही प्रफुल्लित होरहे हैं, आशा है कि थोड़ी ही देर मे इन प्रफुल्लित कमलों पर हरि नाम रूप भ्रमर किस प्रकार गुंजार करे कि—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

प्यारे सभासदो ! इस पुनर्जन्म (تناسخ) (Transimigration of souls) के विषय इन दिनों भिन्न २ मतावलम्बियों की सम्मति में नाना प्रकार के भेद औ विरोध देखे जाते हैं । सनातन वैदिक धर्म को छोड़ अन्य कोई मतावलम्बी इस पुनर्जन्म को यथार्थ जैसे मानना चाहिये वैसे नहीं मानता इसका कारण यह है कि यह विषय आत्मविद्या علم روحانی

(piritual knowledge) से सम्बन्ध रखता है अर्थात् जबतक किसी मनुष्य को यह बोध न हो कि आत्मा क्या है ? तबतक यह नहीं जानसकता कि शरीर छूटनेके पश्चात् जीवात्मा की क्या दशा होती है. इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं कि वर्त्तमान काल में सर्व देश देशान्तर निवासी एक स्वर से मुक्त कण्ठ होकर कहसकते हैं कि सनातन वैदिक धर्मावलम्बियों ने इस आत्मविद्या में सहस्रों वरु लाखों वर्ष परिश्रम करके जो सामर्थ्य प्राप्त की है वह अन्य मतावलाम्बियों को प्राप्त होना दुस्तर है, क्योंकि इस पृथ्वी मण्डल पर जितने मत मतान्तर इस समय वर्त्तमान हैं, दो हज़ार २००० वर्ष से अधिक की किसी की उत्पत्ति नहीं देखी जाती और हमारे इस सनातनधर्म को १२०५३३००० बारह करोड़ पाच लाख तैंतीस हज़ार वर्ष बीत गये, क्योंकि यह कलि-युग जिसमें हम लोग वर्त्तमान हैं अट्ठाईसवां कलि है, इससे पूर्व २७ सत्ताईस चौकड़ियां * बीत गई हैं, जिनमें एक चौकड़ी के ४३२०००० तैंतालीस लाख बसि हज़ार वर्ष होते हैं. इस प्रमाण से २७ चौकड़ियों के ११६६४०००० (ग्यारह करोड़ छियासठ लाख चालीस हज़ार) औ इस वर्त्तमान अट्ठाईसवीं चौकड़ी के ३८९३००० (अड़तीस लाख तिरानवे हज़ार) सब मिलाकर १२०५३३००० वर्ष हुए ।

प्यारे बुद्धिमानो ! अब थोड़ा विचारिये तो सही कि यदि २००० से १२०५३३००० को भाग देवें तो ६०२६६½ लाभ होगा अर्थात् २००० वर्ष वाले के सन्मुख १२०५३३००० वर्ष वाला ६०२६६½ गुण अधिक होगा, अब आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि जितने धर्म हैं २००० वर्ष से अधिक किसी को नहीं हुआ फिर इसमे किसी प्रकार का सन्देह

---

* चौकड़ी= सत्ययुग १७२८०००। त्रेता १२ ६०००। द्वापर ८६४०००। कलियुग ४३२०००। इन चारों युगों के वर्षों को एकत्र करने से ४३२०००० होते है, इसीको चौकड़ी कहते हैं।

नहीं है कि यह सनातन वैदिक धर्म औरों से ६०२६६½ साठ हज़ार दोसौ साढ़े छियासठ गुणा आयु में अधिक है, अर्थात् जैसे साठ हज़ार वर्ष के मनुष्य के सन्मुख एक वर्ष का बच्चा कुछ तोतलीसी बातें करे ऐसे ही आज सनातन धर्मावलम्बियोंके आत्मज्ञान (Spiritual knowledge) की सामर्थ्य के सन्मुख औरों का आत्मज्ञान मानों तोतली बातें हैं औ यही एक विशेष कारण है कि अन्य मतानुयायी आत्मविद्या में पूर्ण न होने से यह ठीक २ नहीं जान सकते कि शरीर छूटने के पश्चात् जीवात्मा की क्या दशा होती है ।

प्यारे श्रोताओ ! प्रायः बहुतेरे नवीन मत वाले यों कहा करते हैं कि ये सब जीव एक ही बार उत्पन्न हुए हैं, मरजाने के पीछे फिर इनको कोई शरीर नहीं मिलेगा, ये सब के सब मरकर एक स्थान में एकट्ठे पड़े रहेंगे, जैसे किसी पर्वत की एक बड़ी गुफा अथवा गढ़हे में बहुत सी टिड्डिया तल्ले ऊपर पड़ी रहती हैं ऐसे सब के सब तल्ले ऊपर पड़े रहेंगे, जब प्रलय (قیامت) का दिन आवेगा तब भगवान (خدا) एक कुरसी (Chair) पर बैठकर सब के पाप पुण्य का न्याय करेगा, जो स्वर्ग (بہشت) के योग्य होगा उसे स्वर्ग औ जो नरक (دوزخ) के योग्य होगा उसे नरक में भेजेगा, जब तक प्रलय (قیامت) का दिन नहीं आवेगा तब तक स्वर्ग औ नरक (بہشت, دوزخ) दोनों सन्नाटे सुनसान पड़े रहेंगे। क्योंकि जब तक न्याय (انصاف) नहीं होगा तबतक किसी को इन दोनों स्थानों में जाकर निवास करने की आज्ञा नहीं है ।

प्यारे श्रोताओ ! इनके वचनों में एक और भी बड़ी आश्चर्य औ आनन्द देने वाली वार्त्ता यह है कि प्रत्येक मत वाला अपने ही मतावलम्बी का स्वर्ग (بہشت) जाना बतलाता है औ दूसरों को नरकगामी कहता है, अर्थात् मुसलमानो का वचन है कि प्रलय (قیامت) के दिन केवल हजरत मुहम्मद साहब (حضرت محمد صاحب) उम्मति २ (امتی) उच्चारण

करेंगे अर्थात् अपने चेले चाटी को चाहे वे कैसे भी पापी हों स्वर्ग भेजने के लिये भगवान् (خدا) के समीप उनकी प्रशंसा (سفارش) करेंगे, भगवान इनकी प्रशंसा (سفارش) से पापी मुसलमानों को भी स्वर्ग ही भेजेगा औ दूसरे जितने मतवाले हैं उनके पैगम्बर जैसे हज़रत ईसा औ मूसा इत्यादि नफ़सी २ (نفسی نفسی) उच्चारण करेंगे अर्थात् अपनी २ जान-बख़्शी (جان بخشی) विपत्ति से छूटने की प्रार्थना भगवान से करेंगे, चेले चाटी को ऐसी घोर विपत्ति के समय कौन पूछता है । उधर ईसाइयों का वचन यह है कि हमारा प्रभु ईसू हमलोगों के पापके बदले पहले ही शूली चढ़ चुका है, अब हम ईसाइयों को पाप का कोई भय नहीं है, चाहे कैसा भी पापी ईसाई हो वह स्वर्ग ही जावेगा । इसी प्रकार औरों की भी दशा है ।

तात्पर्य यह है कि मुसलमानों के कथनानुसार स्वर्ग में केवल मुसलमान ही मुसलमान भरे रहेंगे और किसी अन्य जाति को नहीं घुसने देवेंगे, जैसे आजकल प्रथम श्रेणी (First Class) की गाड़ी मे जहा केवल अंग्रेज ही अंग्रेज भरे रहते है वे किसी अन्य जाति को नहीं घुसने देते । इसी प्रकार ईसाइयों के वचनानुसार स्वर्ग में केवल ईसाई ही भरे रहेंगे ।

अब बुद्धिमान् प्राणी अपने मनमे विचारें कि ये बातें कैसी भोली भाली हैं, इनको यथार्थ आत्मज्ञान से कुछ भी सम्बन्ध नहीं देख पड़ता, फिर ऐसे विचारवालों के समझ में जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना कैसे समझ में आसकता है ?

सनातन वैदिक धर्म को छोड़ अन्य सब मत वाले ऐसा ही कहते हैं कि ये सब जीव पाहिले एक स्थान में एकत्र रहते हैं, ईश्वर एकही बार उनको इस पांच भौतिक शरीर में उत्पन्न करता है, औ शरीर छूटने के पश्चात् फिर सबों को प्रलय आने तक एकत्र एक ठौर में रख छोड़ेगा ।

यदि ऐसाही है तो इनसे यह पूछना चाहिये कि तुम ईश्वर को जगत्पिता मानते हो वा नहीं ! इनको अवश्य कहना पड़ेगा कि मानते हैं, फिर पूछना चाहिये कि हमलोग जितने हैं सबों को उसका पुत्र मानते हो वा नहीं ! वे अवश्य उत्तर देवेंगे कि हां । हम सब उसके पुत्र हैं, क्योंकि वह सम्पूर्ण विश्व का एक ही जनक अर्थात् उत्पन्न करने वाला और पालने वाला है । फिर इनसे यह पूछना चाहिये कि तुम ईश्वर को समदर्शी अर्थात् सब छोटे बड़ों पर एक समान दृष्टि रखने वाला औ पक्षपात रहित जानते हो वा नहीं ! ये अवश्य कहेंगे कि हां वह परमात्मा समदर्शी न्यायकारी औ पक्षपात रहित है ।

अब इन भिन्न २ मतावलम्बियों से यों प्रश्न करना चाहिये कि जब तुम ईश्वर को जगत्पिता, सम दर्शी, न्यायकारी, और पक्षपात रहित मानते हो और उसी के साथ २ यह भी कहते हो कि हम सबों को पहले ही पहल इस शरीर में डाला है, इससे पहले न हमारा कोई शरीर था न आगे कोई शरीर मिलेगा तो क्या कारण है कि उस समदर्शी ने अपने एक पुत्र को अत्यन्त सुन्दर बलिष्ठ औ ऐसा धनवान उत्पन्न किया जो आज विना किसी परिश्रम औ उद्यम के फूलों की शय्या पर सुख चैन से लोट मारता हुआ दूध, मलाई, मेवा, मिठाई चाभता हुआ, घोड़े, हाथी, रथ इत्यादि पर सवार आगे पीछे सैकड़ों नौकर, चाकर, सवार पैदल से सेवा लेता हुआ, एक अंगुली के फिराने में हजारों मनुष्यों को दायें, बायें, करता हुआ, आनन्दसागर में मग्न समय बितारहा है ! इधर दूसरे पुत्र को गर्भ ही से कुरूप, दोनों आखों का अन्धा, निर्बल औ ऐसा दरिद्र बनाया कि दिन भर हाथ में छड़ी लिये द्वार २ छटांक अन्न के लिये चिल्लाता, रोता, कराहता, व्याकुल, नाना प्रकार के रोगों से दुखी, मैले, कुचैले, फटे चिथड़ों को अङ्ग पर डाले एक पांव से लंगड़ाता हुआ, जिसके दायें बायें एक चिल्लू पानी भी देनेवाला कोई नहीं बड़ी कठिनतासे विपत्ति के अथाह औ अपार

समुद्र में गोते खाता हुआ दिन काट रहा है ! अब परमात्म—देव को तुम पक्षपात रहित बताते हो तो यह पक्षपात क्यों ! क्या एक ने उस परमेश्वर को कुछ उत्कोच (رشوت) Bribe दिया था औ दूसरे ने नहीं? क्या वह ईश्वर उत्कोच लेकर कचहरी के अहलकारों के ऐसा पक्षपात करने वाला है ! क्या ईश्वर को तुम एक दम ऐसा अन्यायी औ पक्षपाती बनाना चाहते हो ?

यदि तुम यह कहो कि वह पक्षपाती औ अन्यायी तो नहीं है पर यह उसकी इच्छा है जिसे जैसा चाहे बनावे तो मानों और भी अधिक अन्धेर हुआ, क्योंकिं बिना किसी अपराध के एक जीव को अंधा औ रोगी बना कर द्वार २ छटांक अन्न के लिये फिराना और घोर दुःख में डाल देना दयावान का तो काम कभी नहीं होसकता यह तो महा कठोर चाण्डाल का काम है। तुम उस परमात्म—देव को दयासागर औ कृपालु कहकर पुकारते हो फिर क्या दया औ कृपा वाले की कभी भी ऐसी इच्छा हो सकती है कि बिना अपराध किसी प्राणी को दु.ख में डाल देवे! यह तो महा अज्ञान, निर्बुद्धि, कठोर बालकों का काम है कि एक छोटीसी चिड़िया पकड़ पृथ्वी पर देमारी वह मारे दुख के फरफराने पर मारने, औ चीखने लगी औ आप ताली बजा हंसने औ कूदने लगे यदि तुम्हारा ईश्वर बिना अपराध ऐसी ही इच्छा रखता है औ जीवों को दुख देकर प्रसन्न हुआ करता है तो वह महा कठोर हृदय, निर्बुद्धि, औ अज्ञानी बालक के समान है उसे तुम दयामय औ न्यायकारी मत कहो। यदि तुम उसे न्यायकारी कहते हो तो अवश्य तुम को यही कहना पड़ेगा कि वह अपनी इच्छा से किसी को बिना अपराध दुख नहीं देता यह जीव पूर्वजन्म में जैसा कर्म करता है तदनुसार अगले ज.म में दुख सुख पाता है, परमात्म—देव का कुछ भी दोष नहीं है, वह न्यायकारी है, न्याय से विरुद्ध एक तृण से भी काम नहीं लेता, फिर यह सिद्धान्त बचन है कि इस जीव के पूर्व में अनेक जन्म होचुके हैं

अर्थात् लाखों करोड़ों शरीर मिल चुके हैं औ आगे फिर मिलेंगे ।

यदि शंका हो कि पहले पहल जब इस जीव ने शरीर पाया था तब इसके कर्म कहा थे' औ इसने कब कर्म किया था जिस के बदले दुख वा सुख पाया ? तौ उत्तर इसका यह है कि यह जीव अनादि है, (Having no beginning) (جسکا اول نہیں ہے) अर्थात् ऐसा नहीं है कि किसी दिन इसने पहले पहल शरीर पाया । जब आप इसका एक शरीर निरूपण करेंगे तब यही कहना पड़ेगा कि इससे पहले भी इसके अनेक शरीर होचुके है, पूछिये क्यों ? तो यही कहना होगा कि ब्रह्म के अनादि होने के कारण यह जीव भी अनादि है । यदि यह शंका हो कि ब्रह्म के अनादि होने से जीव को अनादि क्यों कहते हो ? तो उत्तर यह है कि जो वस्तु जिसमें रहती है अर्थात् जिस वस्तु का जैसा आधार होता है तैसाही वह आधेय भी अवश्य होगा, अथवा यों कहलीजिये कि जो शक्ति विशेष किसी पदार्थ में होती है वह शक्तिमान के साथ २ रहती हैं जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति है तो जहां २ अग्नि होगा तहां २ दाहिका शक्ति अवश्य होगी, ऐसा कदापि नहीं होसकता कि अग्नि सामने देख पड़े औ उसमें दाहिका (जलादेने वाली शक्ति) न हो, जहां सूर्य हो तहां तेज न हो, जल हो तहां रस न हो, दूध हो उसमें घृत न हो, तिल हो उसमें तेल न हो, अर्थात् जब से अग्नि तब से दाहिका, जब से सूर्य तब से तेज, जब से जल तब से रस, जब से दूध तब से घृत, जब से तिल तब से तेल अवश्य ही कहना पड़ेगा, इसी प्रकार जब से पुरुष तब से प्रकृति, जब से सृष्टिकर्त्ता तब से सृष्टि, अर्थात् बिना प्रकृति पुरुष अथवा बिना सृष्टि सृष्टिकर्त्ता की स्थिति किसी काल में हो नहीं सकती । यह एक अत्यन्त साधारण वार्त्ता है औ सब छोटे बड़े जानते हैं औ समझते हैं कि किसी मनुष्य को राजा की उपाधि देकर कोई नहीं पुकार सकता यदि उसके पास राज्य न हो । ऐसे ही जब तक कोई कर्म न करे तब तक किसी को कर्त्ता नहीं कह सकते । जब राज्य होगा तब ही राजा कहा जावेगा,

जैसे राजा की शक्ति, विभूति, ऐश्वर्य, महत्त्व, औ प्रभाव राज्य है, ऐसे उस परमात्म-देव की शक्ति, विभूति, ऐश्वर्य, महत्त्व, औ प्रभाव यह सृष्टि है। जैसे सागर में तरङ्ग औ बुद्बुद (---) सदा से हैं, अर्थात् जब से सागर है तब ही से बार २ उसमें तरंग औ बुद्बुद उत्पन्न होते हैं औ क्षणमात्र स्थिर रह कर फिर उसमें लय होजाते हैं, इसी प्रकार उस परमात्मदेव से सृष्टि बार २ उत्पन्न हो कुछ काल स्थिर रह फिर उसी में लय होजाती है ॥

प्रमाण ब्रह्मसूत्र— **जन्माद्यस्य यत इति ॥**

अर्थात् जन्मादि है इस के जिससे। तात्पर्य यह है कि इस संसार के जन्म, स्थिति, औ नाश जिससे होते रहते हैं वही ब्रह्म है, औ यह सूत्र श्रुति के अनुसार ही है। तैत्तिरीयोपनिषद् अध्याय ३ श्रुति २५ में कहा है कि—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति ।

अर्थात् जिससे ये सब भूत उत्पन्न होते हैं औ जिसमें ये सब उत्पन्न हुए पाले जाते हैं फिर जिसमें ये सब लय होते हुए प्रवेश कर जाते हैं, उसी को जानने की अभिलाषा कर। वही ब्रह्म है।

अब बुद्धिमान् विचार करलेवें कि जैसे जल में बुद्बुद औ तरंगों का लय होना उसी दिन से है जब से जल है, इसी प्रकार ब्रह्म से सृष्टि का उत्पन्न औ लय होना तब ही से है जब से ब्रह्म है, औ ब्रह्म अनादि है, इसलिये यह जगत् भी चेतनकृत रचनासूचक नियम, अनेक बुद्धिमत्ता, औ रचना की कलाओं समेत अनादि है, यह अटल सिद्धान्त है।

अब हमारे अन्य मतावलम्बियों से पूछना चाहिये कि तुम ब्रह्म (اللہ) (God) को किस दिन से औ कब से मानते हौ? हज़ार वर्ष पहले से अथवा लाख वर्ष पहले से वा करोड़ दो करोड़ वर्ष पहले से ? यदि वे बुद्धि से काम लेवेंगे तो उनको झक मार कर यही कहना पड़ेगा कि उस ब्रह्मके होने का कोई नियत समय कहा नहीं जासकता, बरु यही कहना उचित है कि वह सदा से है और सदा रहेगा अर्थात् उसका कहीं आदि (ابتدا) (Beginning) नहीं है, फिर यह एक अत्यन्त साधारण वार्त्ता है कि जब वह ब्रह्म अनादि है तब सृष्टि भी अनादि हुई, जब सृष्टि अनादि हुई तो इसकी सारी बातें अनादि हुई, इसलिये इस सृष्टि में जितने शरीरधारी है सब अनादि हुए, तथा उनके कर्म भी अनादि हुए, फिर आपका यह कहना कि पहले पहल इसके कर्म कहां थे अर्थात् नहीं थे, यह नहीं बनता, क्योंकि अनादि होने के कारण जब किसी सृष्टि अथवा किसी जीव के शरीर वा कर्म के विषय आप पूछेंगे तो यही उत्तर देना पड़ेगा कि ये सब अनादि हैं । हां इतना वो अवश्य कहना होगा कि ये सब रूप करके अनादि नहीं हैं प्रवाह करके अनादि हैं । अर्थात् आप यह नहीं कहसकते कि आज जिस रूप में आप हैं अथवा इस समय जो नाम औ जाति आप के हैं वही पहले भी थे, जैसे आज आप एक मनुष्य के रूप में जातिके ब्राह्मण हैं औ आप का नाम शिवशंकर चौबे है तो पहले जन्म में अथवा सृष्टि में आप ऐसे ही थे, नहीं ! आप पहले थे तो सही पर संभव है कि एक पक्षी की योनि में वृक्षों की डालियों पर जहां तहा उड़ते फिरते थे, अथवा आप यह नहीं कहसकते कि कलकत्ता, कराची, मुम्बई, लन्दन इत्यादि नगर जैसे आज समुद्र के किनारे बसे हैं तैसे पहले भी थे, अथवा एशिया, यूरोप, ऐफ्रिका औ अमेरिका जैसे जिस २ स्थान में आज हैं वैसे ही पूर्व सृष्टि में भी थे, नहीं। इतना तो अवश्य कहा जासकता है कि मट्टी औ जल का तत्त्व जो पहले था वही अब भी है परन्तु पूर्व सृष्टि में कहां कौन देश था ? कहां कौन समुद्र था ? कहा कौन पर्वत था ?

कहां किस प्रकार के लोग थे! कहां कौन जाति थी? कैसे उन के रूप थे? नहीं कहा जासकता। इसमें तो तनक भी सन्देह नहीं कि थे सब। एक छोटी चींटी जिसे आज आप अपने घरकी दीवाल पर चलते देखते हैं वह भी पूर्व सृष्टि में थी, क्या थी! यह कौन जाने! संभव है कि यह चींटी फ्रांस में राज करती थी अथवा ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के समीप उनका पुत्र होकर शोभायमान होरही थी, तथा आज जहां समुद्र है पूर्व में वहा पर पर्वत हो, जहां पर्वत है वहां समुद्र हो, जहां बड़े २ नगर हैं वहां सघन वन हो, जहां वन है वहां कोई प्रसिद्ध राजधानी हो।

तात्पर्य यह है कि जैसे वृक्ष के वीज में संपूर्ण वृक्ष के संस्कार सिमट कर एक सूक्ष्म रूप में एकत्र होजाते हैं औ फिर उस वीज को पृथ्वी में डालने से सम्पूर्ण वृक्ष अंकुर, डाल, पत्ते, मंजर, फल को लिये पूर्ण रूप से उत्पन्न होजाता है, इसीप्रकार यह संपूर्ण सृष्टि अपने भिन्न २ संस्कारों को लिये सूक्ष्म रूप से हिरण्यगर्भ रूप परमात्म-देव के परम ऐश्वर्य में लय होजाती है, फिर दूसरे कल्प में उसी हिरण्यगर्भ से संपूर्ण सृष्टि चेतनकृत रचनासूचक नियमों को लिये उत्पन्न होजाती है पर इतनी वात तो अवश्य विचारने की है कि पूर्व वृक्ष का जो रूप था ठीक २ वैसा ही उस दूसरे वृक्ष का नहीं होता जो उसी के वीज से फिर उत्पन्न हुआ है, तात्पर्य यह है कि डाल, पत्ते, मंजर, इत्यादि तो वैसे ही होंगे जैसे पूर्व वृक्ष में थे पर आप यह नहीं कह सकते कि जैसे पूर्व वृक्ष में चार डाल उत्तर की और पांच डाल दक्षिण की ओर निकल कर फैली थीं ऐसे ही इस दूसरे वृक्ष में भी होंगी।

अब आप भली भांति समझगये होंगे कि यह सृष्टि वार २ अनादि काल से उत्पन्न औ लय होती आती है, इसी कारण जीव अनादि औ उसके कर्म अनादि हैं, फिर प्रत्येक प्राणी अपने २ कर्मानुसार दुख सुख पाता आता है अर्थात् अनादि काल से दुख सुख भोगता आता है, औ अनन्त काल तक भोगता रहेगा।

प्रिय सभासदो ! बहुतेरे मनुष्य जो दर्शनज्ञ (Philosopher) औ विज्ञानविद् (Scientific) नहीं हैं अत्यन्त साधारण बुद्धि के हैं औ गूढ़ आशयों के अनुभव करने की सामर्थ्य नहीं रखते, वे हठ वश जीव और उनके कर्मों को अनादि नहीं मानेंगे, वे तो पुनः पुनः यही कहेंगे कि कभी तो यह जीव पहले पहल हुआ होगा औ इसने भले बुरे कर्मों को किया होगा, तो थोड़ी देर के लिये इनकी बातों को भी मानलीजिये ऐसा मानलेने से भी मेरे पुनर्जन्म (Transmigration of Souls) के सिद्धान्त में किसी प्रकार की हानि नहीं होती, मैं भी इनही के कथनानुसार यों मान लेता हूं कि परमात्म-देव ने इन सबों को कभी पहले पहल उत्पन्न करके भले बुरे कर्मों के करने की सामर्थ्य दे २ समझा दिया कि "तुम सब संसार में जाओ ! भले कर्मों को करते जाना औ बुरे से बचते जाना, तुम सब जीवों में कर्म करने की शक्ति मैंने देदी है, तुम सब चेतन हो अर्थात् भले बुरे का भेद जानकर दोनों के करने की सामर्थ्य रखते हो, इससे तुम जगत में जाओ, इच्छानुसार भले कर्मों को करते हुए स्वर्ग का सुख भोगते रहो, यदि भले को त्याग बुरे कर्मों को करोगे तो नरक के अग्नि में जलना पड़ेगा, अर्थात् भला करने से सुख औ बुरा करने से दुख पाओगे, दोनों के करने में तुम समर्थ हो क्योंकि चेतन हो जड़ नहीं हो" ।

एवम् प्रकार परमात्म-देव की आज्ञा पाकर सब के सब संसार में आये औ इच्छानुसार कर्मों में लग गये । ये सब के सब कर्म करने में स्वतन्त्र थे, पहले पहल तो सब के सब एक समान थे, पर ऐसे करते कराते इन के अनेक जन्म जन्म बीतगये तब एकाएकी चूकने लगे, ऐसे चूकते २ इन में बहुतेरे पापात्मा बनगये, दुख पाने लगे, जैसे घोड़दौड़ के खेल में अंग्रेजों के घोड़े । चले सब के सब एकही ठौर से, दौड़ने में भी सब प्रबल, सवार भी सबके सब चतुर, पर दौड़ते २ कोई चूक कर मुंह के बल गिरपड़ा औ किसी ने नियत चिन्ह तक दौड़ते हुए सबों से

आगे आ जय प्राप्त की। इसीप्रकार प्रत्यक्ष देखने में आता है कि ये सबके सब कर्मानुसार दुख सुख पाते चले आरहे हैं, ये कब से आरहे हैं? इसका कुछ लेखा जोखा नहीं, किन्तु इतना तो अवश्य समझ में आता ही है कि दुख सुख इनके कर्मों ही के फल हैं। यदि इनको करने की शक्ति परमात्मा ने नही दी होती तो स्वर्ग (بہشت) औ नरक (دوزخ) क्यों बनाता? जो अन्य मतावलम्बी इन जीवों का एकही बार उत्पन्न होना औ मरजाना मानते है वे भी तो स्वर्ग, नरक, मानते ही हैं औ यही कहते है कि जो जैसा करेगा वैसा फल पावेगा, इनके वचनों ही से सिद्धान्त है कि जीव को करने की सामर्थ्य परमात्मा ने अवश्य दी है, भला हो चाहे बुरा। इसी के साथ २ यह भी सिद्ध होजाता है कि इनका वर्त्तमान शरीर पहले पहल का अर्थात् प्रथम ही बार का नहीं है, क्योंकि प्रथम बार के जन्म में तो सबों को एक समान सुखी अथवा दुखी होना सिद्ध होता है, ऐसा तो होही नहीं सकता कि इनके शरीर प्रथम ही प्रथम हों औ राजा, रंक, दुखी, सुखी का भेद भी लगा हो, कमसे कम एक शरीर तो पूर्व का अवश्य ही मानना ही पड़ेगा औ इसी प्रकार आगे स्वर्ग, नरक, भोगने के लिये भी एक शरीर मानना ही पड़ेगा जिस शरीर को धारण कर ये सबके सब भगवान (خدا) की कुरसी के सन्मुख पाप पुण्य के न्याय के लिये खड़े होंगे अथवा जिस शरीर से ये स्वर्ग में पहुंच कर अप्सरा (حور) इत्यादि के साथ भोग विलास करेंगे अथवा नरक की आग में जलेंगे।

प्यारे श्रोतागण! मुख्य तात्पर्य मेरे कहने का यह है कि इन साधारण बुद्धिवालों के मत से भी जीवों का तीन बार तो शरीर धारण करना सिद्ध होही जाता है, औ इनही टूटी फूटी उपपत्ति औ युक्तियों से भी किसी प्रकार खैंच खांच कर पुनर्जन्म तो सिद्ध होही जाता है, पर इस खैंचातानी से मेरा काम कहां तक चलेगा, मुझे तो पूर्ण प्रमाण औ उपपत्ति देकर नाना प्रकार के तर्क वितर्क औ शंकाओं की निवृत्ति

करते हुए श्रुतियों से पूर्ण सिद्धान्त के साथ पुनर्जन्म सिद्ध करने की चिन्ता लगरही है । इसलिये इन साधारण वार्त्ताओं को त्याग अब चलिये अपने मुख्य सिद्धान्त की ओर चलें ।

लीजिये सब के सब एकाग्रचित्त होजाइये औ एकवार उत्साह भरी ध्वनि से सब मिल बोलिये—हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे ! हरे ! हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! कृष्ण कृष्ण ! हरे हरे ! ॥

प्रिय सभासदो ! इसमें तो तनक भी सन्देह नहीं कि यह स्थूल शरीर नश्वर है किन्तु इसके नाश हुए जीवात्मा का नाश नहीं होता, यह शरीर जन्म लेता है, बालक, युवा, औ वृद्ध होकर मृत्यु के वश होजाता है पर यह जीव अज है अर्थात् यह न नवीन प्रकार से जन्म लेता है, न मरता है, औ ऐसा भी नहीं है कि यह जीव पहले न होकर फिर उत्पन्न हुआ है वरु नित्य है, पुराण अर्थात् सदा से जैसा था वैसा ही है, शाश्वत है, सदा एक रूप अस्ति औ परिणाम से रहित है, इसलिये शस्त्रादिकों से शरीर के नष्ट किये जाने से भी यह नष्ट नहीं होता । इसी तात्पर्य को गीता में श्रीकृष्ण भगवान यों कहते हैं—

प्रमाण—श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक २०

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

इनही श्लोकों को अंग्रेजी में सुनिये—

Never the spirit was born;
The spirit shall cease to be never!
Never was time it was not:
End and Beginning are dreams!

Birthless and deathless and changeless
remaineth the spirit for ever;
Death hath not touched it at all,
dead though the house of it seems

यदि शंका हो कि जैसे घरके जलने से उसमें रहने वाली वस्तु भी जल-जाती हैं ऐसे इस शरीर के जलने, सड़ने, गलने, सूखने इत्यादि विकारों के प्राप्त हुए यह जीव भी जलता, गलता, सड़ता वा सूखता होगा तो ऐसा नहीं होता, इसलिये श्यामसुन्दर फिर कहते हैं कि हे अर्जुन !

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः

भगवद्गीता अ० २ श्लोक २३, २४

अर्थात् इस आत्मा को खड्ग, परशु, कुठार, चक्र, बाण, गदा इत्यादि शस्त्र छेदन नहीं कर सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकता, सागर सरिता, ताल, कूप इत्यादि के जल इसे गला नहीं सकते, वायु इसे शोषण नहीं कर सकता, इसलिये यह आत्मदेव अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है, फिर नित्य अविनाशी है, भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों काल में एक रस है, सर्वगत अर्थात् सब ठौर में व्यापकर रहने वाला है, स्थाणु अर्थात् स्थिर स्वभाव है, रूपान्तर को नहीं प्राप्त होने वाला है, अचल है, औ सनातन अर्थात् अनादि काल से है। श्रुति का भी वचन है कि— " आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः निष्कलं निष्क्रियं शान्तम् इति " अर्थात् आकाश के समान सर्वत्र व्यापक है, नित्य है, महान

वृक्ष के समान अपने रूप के प्रकाश में स्थिर है, एक ही है, निष्कल (अवयवों से रहित) औ निष्क्रिय (क्रिया से रहित) है, शान्त है ।

प्रिय सभासदो ! अब यह वार्त्ता अवश्य विचारने के योग्य है कि जब यह आत्मदेव इस शरीर के साथ २ नष्ट नहीं होता तो क्या होजाता है ? कैसे रहता है ? किस दशा में रहता है ? क्योंकि शरीर के साथ २ तो इसे हंसते खेलते, उछलते, कूदते, देखते है, पर शरीर के नष्ट हुए इसका कुछ भी पता नहीं लगता, क्या होगया ? कुछ समझ में नहीं आता, अभी तो सुनते थे कि राज कर रहा था, लाखों पर आज्ञा चला रहा था, युद्ध में कुशल, महा पराक्रमी बनाहुआ विजय का डंका बजारहा था, किसी देवालय में, यज्ञशाला में, अथवा श्री गंगाजीके तट पर बैठा हुआ स्वाहा स्वधा की धूम मचाये हुए था, नाट्यशाला के नेपथ्य में राग तान भरे मधुर स्वरों को उच्चारण करता हुआ सहस्रों को मोहित कररहा था, थोड़ी ही देर में क्या होगया ? सदा के लिये ऐसा सोगया कि जगाये जगता नही, जो नींद लगने के समय दो एक मनुष्य के शब्द को भी सुनने से अप्रसन्न होता था औ कहता था कि अजी क्यों रौला मचाते हो ! जरा सोने भी नहीं देते ! सो आज ऐसा सोगया कि कानों के समीप डंका बजाने से भी नहीं जागता, जो तनक भी किसी दुखिया को रोते कराहते सुनता था झट दौड़ कर उनके दुख निवारण को उद्यत होजाता था, सो आज सैकड़ो के दायें बायें रोने पीटने की कुछ भी परवा न करके चुपचाप चार आदमियों के कन्धों पर शान्ति पूर्वक प्रलय की नींद लेता हुआ चला जारहा है, जो एक छोटीसी चिनगारी शरीर पर पड़ते उफ ! कह उठता था, सो आज मनों अग्नि के बीच भस्म होने को चला जारहा है, यह क्या होगया है ?

प्यारे सभासदो ! हुआ क्या ? कुछ तो नहीं हुआ ! यह शरीर तो पहले भी जड़ था अब भी जड़ पड़ा हुआ है, यह तो न हंसता था

न रोता था जिसके कारण ये सब चेष्टा इसमें होती थीं वह चेतन अविनाशी आत्मदेव अपने स्पन्दत्व * को छोड़ निस्पन्द होगया और पुर्य्येष्टका जो नाना प्रकार के संस्कारों को लिये दुख सुख में फँसी थी अब इस शरीर को छोड़ दूसरे शरीर की ओर चल निकली ॥

वासांसिजीर्णानियथाविहायनवानिगृह्णाति नरोऽपराणि । तथाशरीराणिविहायजीर्णा न्यन्यानिसंयातिनवानिदेही ॥

भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक २२

अर्थात् मनुष्य जैसे पुराना वस्त्र उतार कर नवीन वस्त्र धारण करलेता है ऐसे यह देही " जीव " (पुर्य्येष्टका) पुराना शरीर परित्याग कर नवीन शरीर धारण करलेता है, इसी अर्थ को श्री वेदव्यास भगवान श्रीमद्भागवत में यों कहते हैं

ब्रजंस्तिष्ठन्पदैकेनयथैवैकेनगच्छति

---

* वह चेतन, अनादि, अविनाशी, आत्म-देव जब शरीरान्तर्गत पुर्य्यष्टका के साथ नानाप्रकार की चेष्टा का साक्षी हो खेलने, कूदने, हंसने, बोलने की शक्ति प्रदान करता है मानों स्वयं इन क्रियाओं को करने लगता है तब **स्पन्द** कहलाता है। जब शान्ति होता है तब **निस्पन्द** कहाजाता है। जैसे वायु जब स्पन्द होता है तब प्रचण्ड आंधी चलने लगती है, घनघोर मेघों की गर्जना होने लगती है, विद्युत ठौर २ में कड़कने लगती है। जब वही वायु निस्पन्द होता है तो एक छोटा तृण भी कहीं नहीं डोलता, अज्ञानी मनुष्य समझते हैं कि वायु कहीं चलागया पर ज्ञानी जानते है कि वायु जैसे पहले सब स्थान में था ऐसे अब भी है केवल निस्पन्द होगया है, इसी प्रकार आत्मा को जान लेना ॥

यथातृणजलौकैवंदेहीकर्मगतिंगतः ॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अध्याय १ श्लोक ३८

जैसे मनुष्य चलने के समय एक पांव आगे जमाकर फिर दूसरा पांव उठाता है अथवा जैसे तृणजलौका नाम की कीड़ी पहले एक पांव से अगले तृण को ग्रहण कर कुछ काल स्थिर हो फिर दूसरे पाव को पिछले तृण से उठा अगले पर रखती हुई आगे बढ़ती चली जाती है इसी प्रकार यह देही (जीव) अगले कर्म रूप शरीर को धारण कर पिछले को परित्याग करता चला जाता है, अर्थात् अगले शरीर पर एक पांव रखलेता है तब दूसरे पाव को पिछले शरीर से उठा लेता है. एवम् प्रकार अगले को धारण करता और पिछले को परित्याग करता चला जाता है।

प्यारे श्रोतृगण ! इन वचनों से यही सिद्ध होता है कि यह जीव मृत्यु के समय पिछला शरीर छोड़ अगला धारण करलेता है, पर आज कल के नवीन प्रकाश वाले यों शंका करेंगे कि अगला शरीर जिसे यह जीव धारण करता है, प्राण वियोग के समय कहां रहता है ? क्या इन भिन्न २ शरीरों का किसी स्थान में भंडार (गोदाम) बना हुआ है जिसमें कुत्ते, गदहे, बैल इत्यादि चौरासी लक्ष योनियों के शरीर बने बनाये इकट्ठे किये हुए हैं ? जिसे झट सामने लाधरा औ जीव उसमें घुसगया? यदि यह कहो कि शरीर तो कोई भी सामने नहीं रक्खागया, यह प्राण निकल कर कुत्ती के गर्भ में प्रवेश करगया, तो यह वचन एकदम निरर्थक होगा क्योंकि किसी गर्भ मे केवल प्राण प्रवेश करजाने से बच्चा बन नहीं सकता, जब तक बीज गर्भ मे न डाला जावे। यदि यह कहो कि प्राण निकल कर किसी कुत्ते के बीज में चला गया तो यह भी हो नहीं सकता, बीज में वायु के प्रवेश करने से रोग उत्पन्न होजावेगा, बच्चा नहीं बनेगा। यदि यह कहो कि बीज अन्न (खाने का कोई पदार्थ) से बनता है इसलिये प्राण निकल कर

किसी अन्न मे चला गया, अन्न से बीज औ बीज से गर्भ बनकर कुत्ते का शरीर पावेगा! तब तो यह एक बात ही निराली होगई, वह बात तो न रही कि एक शरीर छोड़ चट दूसरे को धारण करलेता है। प्रथम कहे हुए गीता औ भागवत के प्रमाण "वासांसिजीर्णानि" औ "व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन" तो सिद्ध न हुए। दोनों प्रमाण अशुद्ध होगये।

प्यारे सभासदो! अब मैं इस शंका का समाधान करता हूं सो सुनिये। वेदान्तविद भली भांति जानते हैं कि शरीर के तीन भेद हैं, १ स्थूल २ सूक्ष्म ३ कारण। श्रीमद्भगवद्गीता औ श्रीमद्भागवत के जो दो प्रमाण मैं पहले देचुका हूं इनमें यह कुछ नहीं कहा कि प्राण-वियोग के समय यह जीव किस प्रकार का शरीर धारण करता है, केवल इतना ही कहा कि एक शरीर छोड़ दूसरे को धारण करता है, इससे श्री कृष्णचन्द्र औ श्री व्यासदेव का मुख्य तात्पर्य यह है कि यह जीव मृत्यु के समय स्थूलशरीर (جسم کثیف) (Material body) त्याग कर केवल सूक्ष्मशरीर (جسم لطیف) (Astral body) धारण कर-लेता है, इसी कारण दो प्रकार के वस्त्रों से उपमा दी, यदि दोनों शरीरों से स्थूलही का तात्पर्य होता तो यों कहते कि "जैसे प्राणी एक वस्त्र परित्याग कर दूसरा धारण करलेता है" पर ऐसा न कह कर नये औ पुराने वस्त्र का भेद लगाया, अर्थात् पुराना जो स्थूलशरीर* उसे त्याग नया जो सूक्ष्मशरीर † तिसको धारण करलेता है। फिर श्री

---

* स्थूलशरीर—रोम. चर्म. रुधिर. मांस. अस्थि इत्यादि के मेल से जो बना है। जिसमें आकाश. वायु. अग्नि. जल. पृथ्वी अपना २ काम कररहे हैं जिसको फ़ारसी में جسم کثیف औ अंग्रेज़ी में (Material body) कहते हैं।

† सूक्ष्मशरीर—इसी को लिङ्गशरीर भी कहते हैं, यह पांचों भूत. दशों इन्द्रिय, मन, बुद्धि, वासना इत्यादि की केवल सत्ता मात्र से ही बनता है, इसको फ़ारसी में جسم لطیف औ अंग्रेज़ी में (Astral body) कहते हैं।

व्यासदेव ने भी तृणजलौका नाम के कीट से उपमा देकर यों कहा कि तृणजलौका एक पांव अगले तृण पर रखकर तब दूसरे पाव को पिछले तृण से उठालेती है, यों नहीं कहा कि दोनों पांव एक दम उठा कर उछल कर एक तृण से दूसरे तृण पर चली जाती है । यदि ऐसा कहा होता अर्थात् दोनों पांव का एक ही बार उठालेना कहा होता तब तो यह अवश्य बोध होता कि यह जीव स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीर उसी समय धारण करलेता है, पर व्यासदेव ने तो स्वच्छ कह दिया कि मरण काल के समय केवल एक पांव उठा कर आगे रखता है, विचारशील प्राणी इसी से समझ जावेंगे कि केवल सूक्ष्म शरीर धारण करलेता है, स्थूल शरीर नहीं धारण करता, स्थूल तो कुछ काल बीतने पर धारण करता है।

इस स्थान में केवल दो ही शरीर (स्थूल औ सूक्ष्म) से तात्पर्य सिद्ध होता है । **कारण शरीर** की कोई आवश्यकता नहीं है इसलिये **कारण शरीर** का कुछ वर्णन न किया, अवकाश पाकर जहां इसके वर्णन करने की आवश्यकता देखूंगा पूर्ण रूप से वर्णन कर अपने सभासदों को समझा दूंगा ।।

अब यह पूछना चाहिये कि सूक्ष्मशरीर का क्या स्वरूप है ? औ प्राण वियोग समय यह प्राणी किस प्रकार का सूक्ष्मशरीर धारण करलेता है ? धारण करने के पश्चात् कहां जाता है ? फिर इसकी क्या गति होती है ? स्थूल कब औ कैसे पाता है ?

प्यारे सज्जनो ! शास्त्रवेत्ता सूक्ष्मशरीर को अंगुष्ठ * प्रमाण बतलाते हैं अर्थात् अंगूठे के समान लम्बा चौड़ा बतलाते हैं, पर ऐसा नहीं, यथार्थ में अंगुष्ठप्रमाण का अर्थ कुछ और ही है, अंगूठे के समान कहना योग्य नहीं, क्योंकि चौरासी लक्ष योनियों के स्थूल शरीर मे तो छोटा बड़ा होना संभव है, पर सूक्ष्मशरीर सब जीवों का एक ही प्रमाण से है, चाहे वह एक हस्ती का हो अथवा एक छोटी पिपीलिका का हो ।

*अंगुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष बलायम'— महाभारत

फिर यह बात भी प्रत्यक्ष समझ में आती है कि सूक्ष्म शरीर सदा स्थूल शरीर से छोटा ही होता है, क्योंकि सूक्ष्मशरीर स्थूल के भीतर निवास करता है, यदि सूक्ष्मशरीर स्थूल से थोड़ा भी बड़ा होगा तो स्थूल के भीतर उसका प्रवेश करना संभव नहीं देखपड़ता, इसलिये यह तो कहना ही पड़ेगा कि सूक्ष्म शरीर सदा स्थूल से छोटा होता है। जब ये दोनों बातें प्रत्यक्ष हैं कि सूक्ष्म सदा स्थूल से छोटा ही होता है और सो सूक्ष्म सब जीवों का एकही समान है तो सूक्ष्म का अंगूठे के इतना होना कैसे संभव हो सकता है? क्योंकि इस सृष्टि में मत्कुण (खटमल) मक्षिका (मक्खी) मशक (मच्छर) इत्यादि जीवों का तो स्थूलशरीर भी अंगूठे के इतना नहीं होता तो इनके सूक्ष्मशरीर का अंगूठे के समान होना कब संभव है? इससे प्रत्यक्ष बोध होता है कि **अंगुष्ठप्रमाण** का अर्थ जैसे आज कल के साधारण बुद्धि के पंडित लोग पुराण इत्यादि बांचने के समय अंगूठे के समान कह कर लोगों को समझा देते हैं ऐसा नहीं, वरु इस **अंगुष्ठप्रमाण** शब्द का तात्पर्य्य कुछ और है, बुद्धिमानों के विचारने योग्य है, सो सुनाता हूं सुनिये एकाग्र चित्त होजाइये।

अंगुष्ठप्रमाण अर्थात् अंगुष्ठ है प्रमाण जिसका, तात्पर्य्य यह है कि जिसे बताने के लिये दूसरा कोई प्रमाण न देकर केवल अंगुष्ठ को उठा उसकी ओर देखावें अर्थात् **अंगुल्यानिर्देश** करें, अंगुली देखावें, जैसे— ☞ यह देखिये मैं देखाता हूं ॥

ऐसे देखलाने ही से बोध होता है कि किसी पदार्थ की ओर उसे जनाने के लिये **अंगुल्यानिर्देश** कररहे हैं। यदि यह शंका हो कि शब्द तो अंगुष्ठप्रमाण है अंगुष्ठ* तो अंगूठे को कहते हैं इससे तुमने अंगुली कैसे अर्थ किया? तो उत्तर इसका यों है कि वेद, वेदान्त, श्रुति, स्मृति इत्यादि ग्रन्थों में यह शिष्टाचार चलाआता है कि किसी समूह में उसके

*अंगुष्ठः—अंगौ पाणौ प्राधान्येन तिष्ठतीति अंगुस्था। पाणिनीय ८।३।९७॥

प्रधान का नाम लेने से वह समूह अथवा उस समूह का कोई एक समझा जाता है, लौकिक व्यवहार में भी ऐसा ही शिष्टाचार है जैसे किसी ने कहा " भाई चलो रोटी खाने का समय होगया रोटी खाआवें " यहां खानेवाला केवल रोटी न खाकर दाल, शाक, दूध, दही सब खावेगा पर इन सब पदार्थों मे रोटी की प्रधानता है इसलिये केवल रोटी कहने से अन्य भोजन के पदार्थ भी समझे जाते हैं । इसी प्रकार अंगुष्ठ के प्रधान होने से शेष चारों अंगुलियों का भी बोध होता है, पर किसी पदार्थ के बताने में विशेष तर्जनी ही से बताने की रीति चली आती है इसलिये यहा अंगुल्यानिर्देश से तर्जनी से काम लेना समझा जाता है जैसा मैं पहले देखलाचुका हूं ॥

अब यह भी विचारने की बात है कि यह अंगुल्यानिर्देश सर्व प्रकार के पदार्थों की ओर कियाजाता है, स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, छोटा हो अथवा बड़ा, समीप हो अथवा दूर, अर्थात् अत्यन्त बड़े से बड़े औ अत्यन्त छोटे से छोटे पदार्थ की ओर, समीप हो वा दूर, अंगुल्यानिर्देश करते हैं । जैसे किसी ने पूछा आकाश किधर है? औ झट दूसरे ने आकाश की ओर (चिह्न) यों अंगुली देखा बतादिया, पर इस से यह कोई नहीं कह सकता कि ऊपर की ओर कितनी दूर का बोध हुआ, एक कोस का, अथवा हजार कोस का, क्योंकि आकाश तो मनुष्य के शरीर के समीप से आरम्भ होकर असंख्य कोसों तक फैला हुआ है । अथवा किसी ने आकाश की ओर अंगुली कर यों कहा कि वह भगवान जो चाहता है करता है, पर इससे यह नही कहा जा सकता कि वह भगवान एक अंगुल का है अथवा हजार गज का वरु इस अंगुल्यानिर्देश से दोनों बातें समझी जासकती हैं क्योंकि भगवान " अणोरणीयांसंमहतो महीयान् " कहा जाता हैं अर्थात् अत्यन्त छोटे से छोटे औ बड़े से बड़े पदार्थ में व्याप रहा है ।

प्यारे सभासदो ! इतना कहने से मेरा मुख्य तात्पर्य यह है कि

अंगुष्ठप्रमाण से अथवा अंगुष्ठमात्र से केवल सूक्ष्मशरीर की ओर अंगुल्यानिर्देश करने का तात्पर्य है, अंगूठे के बराबर कहने का तात्पर्य नहीं है, क्योंकि अंगुष्ठ कहने से अंगुली औ अंगुली कहने से अंगुष्ठ समझा जाता है।

अब यह पूछना चाहिये कि यह सूक्ष्म जिसकी ओर अंगुल्यानिर्देश करते हैं कितना छोटा है? उसका कितना प्रमाण है?

उत्तर इसका यह है कि "सूक्ष्म उसे कहते हैं जिसकी स्थिति तो हो पर उसका कुछ प्रमाण न हो, न उसका खण्ड होसके, जैसे रेखागणित ज्यामिति (Geometry) के पढने वाले विद्वान "विन्दु" के विषय जानते हैं औ मुख से उच्चारण किया करते हैं कि "विन्दु वह है जिसका स्थान तो नियत हो पर उसका कुछ प्रमाण न हो औ न खण्ड होसके" संस्कृत मे भी ज्यामिति शास्त्र (Geomotry) वाले ने ऐसाही लिखा है कि:—

१. यः किल पदार्थो विस्तरेण च दैर्घ्येण च स्थौल्येन च युक्तः स स्थूल पदार्थः॥

२. यश्च दैर्घ्येण विस्तरेण स्थौल्येन च रहितः शक्यते च लक्ष्ययितुं सोऽयं विन्दुः॥

इन दोनों सूत्रों के अर्थ ये हैं कि—१. जो पदार्थ (विस्तरेण) चौडाई से (दैर्घ्येण) लम्बाई से (स्थौल्येन) मोटाई से युक्त अर्थात् जिसमें चौड़ाई, लम्बाई, मोटाई पाई जावें वह स्थूलपदार्थ कहा जाता है। २. जो पदार्थ (दैर्घ्येण) लम्बाई से (विस्तरेण) चौड़ाई से (स्थौल्येन) मोटाई से रहित हो अर्थात् जिसमें लम्बाई, चौड़ाई, औ मोटाई नहीं पाईजावें केवल (शक्यते च लक्षयितुं) जिसका लक्ष्य कर सकें वही विन्दु है॥

अब इन सूत्रों से प्रत्यक्ष समझ में आता है कि स्थूल पदार्थ से जो प्रतिकूल हो उसे विन्दु कहते है, और यह भी सभी जानते हैं कि जो

पदार्थ स्थूल से प्रतिकूल होता है उसे सूक्ष्म कहते हैं, इस कारण विन्दु औ सूक्ष्म एक ही तात्पर्य के सूचक हुए।

फ़ारसी औ उर्दू वाले भी लिखते हैं कि—

نقطہ وہ ھے جسکی جگہہ تو مقرر ھو مگر اسکا کچھہ مقدار نہو
اور نہ اسکا ٹکڑا ھو سکی

अंग्रेज़ी वाले विद्वान् यों कहते हैं कि—

A Point is that which has no part and has no magnitude.

अब इसी प्रकार आप यों कह सकते हैं कि

An astral body (सूक्ष्मशरीर) is that which has no part and has no magnitude .

प्रथम कहे हुए ज्यामितिशास्त्र के दोनों सूत्रों से सिद्ध होचुका है कि जिसे विन्दु कहते हैं वही सूक्ष्म है, इसलिये सूक्ष्मशरीर को विन्दु के समान समझना चाहिये ॥

अंगुष्ठप्रमाण, अंगुष्ठमात्र लक्षमात्र औ सूक्ष्म, इनमें कुछ भेद नहीं है जिसे विन्दु कहते है वही अंगुष्ठप्रमाण है औ सूक्ष्म है।

आज कल के हमारे नवीन प्रकाश वाले अंग्रेजी के विद्वान् भी यह गूढ़ रहस्य भली भाति समझ जावेंगे कि अंगुष्ठप्रमाण औ विन्दु समान शब्द हैं क्योंकि अंग्रेजी में इसे Point कहते हैं औ Point संज्ञा (Noune) है इस की क्रिया (verb) Point out है, अर्थात् अंगुली से दिखादेने को Point out कहते है, फिर जो Point out किया जावे वह Point अर्थात् विन्दु है, इससे सिद्ध होता है कि अंगुष्ठप्रमाण " विन्दु" को कहते हैं ॥

प्यारे सभासदो! अब जानना चाहिये कि सूक्ष्मशरीर एक "विन्दु" है। विन्दु अर्थात् सूक्ष्मशरीर इतना छोटा होता है कि जिसका फिर कोई दो खण्ड किया चाहे तो न हो (• • . . . . . .) यह देखिये यहां आठ

विन्दु बनाई गई, एक से दूसरी छोटी होती चली गई पर जिसे आप सब से छोटी देख रहे है वह भी यथार्थ विन्दु नहीं है केवल एक मानी हुई विन्दु है क्योंकि इसके भी सहस्रों टुकडे होसकते है इसलिये यथार्थ विन्दु कितनी छोटी होसकती है कोई विद्वान् लिखकर तो किसी प्रकार भी बता नहीं सकता, यह तो केवल ध्यान मे ही अनुमान करने की वस्तु है । यदि आप एक केश को किसी यन्त्र से संभव हो तो सहस्र खण्डों में चीर डालिये फिर उस सहस्र में से एक का फिर सहस्र भाग कर डालिये तथापि विन्दु उससे भी छोटी ही रहेगी ॥

अब आप समझगये होंगे कि सूक्ष्मशरीर कितना छोटा है. औ अब आप नि:शंक होकर कह सकते है कि चाहे कितने ही छोटे से छोटे स्थूल शरीर वाले खटमल मच्छर इत्यादि क्यों न हों उनका सूक्ष्मशरीर अंगुष्ठप्रमाण अथवा अंगुष्ठमात्र ही होगा ॥

प्यारे सभासदो ! अब " वासांसि जीर्णानि० " औ " व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन० " दोनो प्रमाणों में जो शंका उत्पन्न हुई थी कि मरणकाल में क्या किसी भडार से स्थूल शरीर लाकर मृतक के सन्मुख रखदिया जाता है कि वह झट इसमें से निकल उसमें चला जाता है ? सो निवृत्त होगई और अब यह तात्पर्य निकल आया कि मरणकाल के समय प्राणी स्थूलशरीर को त्याग केवल सूक्ष्मशरीर धारण करलेता है ।

इसी सूक्ष्मशरीर को लिंगशरीर अथवा पुर्य्यष्टका कहते है । तात्पर्य यह है कि इसमें आठ भिन्न शक्तियां एक साथ रहती है ।

भूतेन्द्रियमनोबुद्धि वासनाकर्मवायवः
अविद्याचाष्टकंप्रोक्तं पुर्य्यष्टंकऋषिसत्तमैः

अर्थात् १ भूत. २ इन्द्रिय. ३ मन. ४ बुद्धि. ५ वासना. *

---

* आफलविपाकात् चित्तभूमौ शेरत इत्याशयः वासनाख्याः संस्काराः—अर्थात् नाना प्रकार की वे प्रवृत्तियां जो अनिवार्य हैं औ

६ कर्म. † ७ वायु. ‡ औ ८ अविद्या इन आठों तत्वों का वीज इस पुर्य्यष्टका में निवास करता है। इन आठों में अविद्या ही मुख्य है क्योंकि जबतक अविद्या रहती है तबतक पुर्य्यष्टका अर्थात् सूक्ष्मशरीर वनताही चला जाता है औ जबतक सूक्ष्मशरीर वनता जाता है तब तक यह पंचाग्नि होकर फिर स्थूलशरीर प्राप्त करता ही रहता है अर्थात् जन्म लेकर दुख सुख भोगता ही रहता है। अविद्या के नाश होते ही यह संपूर्ण पुर्यष्टका नाश होजाती है, प्राणी नाना प्रकार के वन्धनों से छूट मुक्त होजाता है।

यह अविद्या ही सर्व उपद्रवों का मूल (Prime Cause) है. यह सदा वन्धन में डालनेवाली है औ अवकाश पाकर बड़े २ वीर पुरुषों को; ज्ञानियों को, धोखे में डाल दुखी वनादेती है, यह अजय है, दुर्निवार्य है, यह सदा सीधी को उलटी वनाती रहती है क्योंकि—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥

पातंजलि अध्याय २ सूत्र ५

इस सूत्र का भाष्य श्रीव्यासदेव यों कहते है कि:—

अनित्येषु घटादिषु नित्यत्वाभिमानो ऽविद्येत्युच्यते। एवं अशुचिषु कायादिषु शुचित्वाभिमानो दुःखेषु च विषयेषु सुखत्वाभिमानो ऽनात्मनि शरीरे आत्मत्वाभिमानः। एतेन अपुण्ये पुण्यभ्रमो ऽनर्थेचार्थभ्रमो व्याख्यातः ॥

अर्थात् घट पट इत्यादि जो अनित्य (नश्वर) पदार्थ हैं उनमें

जो चित्त भूमि में उस समय तक सुप्त पड़ी रहती हैं जबतक उनका फल परिपक्व न होजावे। इसी को वासना नाम का संस्कार कहते हैं ॥

† कर्म— (धर्माधर्मौ) अर्थात् जितने पाप पुण्य इस शरीर से होचुके हैं ॥

‡ वायु— प्राण, अपान, समान, व्यान, औ उदान।

नित्यत्व का अभिमान होना अर्थात् यों समझना कि ये नश्वर नहीं हैं इसी को अविद्या कहते हैं । इसी प्रकार काया यह अपना देह जो सदा अपवित्र है उसे पवित्र समझना, दुःख के पदार्थों को अर्थात् नाना प्रकार के विषयों को सुख समझना, यह देह जो आत्मा नहीं है उसे आत्मा समझना अविद्या है । इसी से अपुण्य (पाप) में पुण्य का औ अनर्थ मे अर्थ का भ्रम होता है ऐसा कहागया है ।

अब यहां एक शंका यह उत्पन्न होती है कि सूक्ष्मशरीर (पुर्य्यष्टका) को तो एक बाल के करोड़वें अंश से भी अधिक छोटा बतलाते हौ औ इसमें रहने वाली वस्तु बहुतसी बतलाते हौ अर्थात् पहले यों कहआये हौ कि " **पांचो भूत, दशों इन्द्रियां, मन, बुद्धि, शुद्ध औ मलीन वासना, पाप पुण्य कर्म, जो अनेक जन्मों में किये गये, प्राण, अपान इत्यादि दशों वायु औ अविद्या, इन सब तत्वों के बीज इसी छोटे सूक्ष्मशरीर में बने रहते हैं** " । यह वार्त्ता कुछ असंभव औ आश्चर्य सी बोध होती है, बुद्धि ऐसी वार्त्ता को स्वीकार नहीं करती ।

प्यारे श्रोतृगण ! यही तो उस जगदीश की अद्भुत लीला है, यही तो उसकी असीम महिमा है, कि एक २ रचना में बड़े २, बुद्धिमानो की बुद्धि थकथका कर लौट आती है । शेष, महेश, गणेश शारदा जिसकी लीला के वर्णन करने में मूक होरहे हैं । यदि झट बुद्धि उसकी रचना की थाह पाजावे तो वह अलख अगोचर क्यों कहलावे, वह तो एक कच्चे सूत में सुमेरु पर्वत को बांध कर लटका सकता है, एक सूई के छिद्र होकर सत्तर हजार ऊंटो की पंक्ति निकाल लेजासकता है, वह सर्वशक्तिमान जो चाहे करसकता है । फिर यह आश्चर्य क्यों है कि सूक्ष्मशरीर में उसने इतने तत्वों का बीज एकसंग रखदिया । यदि आप यों न मानिये तो वह देखिये आपके सन्मुख जो वह अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष देखपड़ता है उसकी बड़ी २ स्थूल डाल औ उसकी लाखों पत्तिया सब एक अत्यन्त छोटेसे बीज में संस्कार रूप से पड़ी

रहती है, यदि न हों तो ये उत्पन्न कहा से हों, इसी प्रकार वट बीज के न्याय से आप अनुभव करसकते हैं कि भूत, इन्द्रिय, मन इत्यादि सूक्ष्मशरीर मे निवास करते हैं।

अब प्रश्न यह है कि देह त्याग के समय जीव किस प्रकार का सूक्ष्मशरीर धारण करता है ? उसमें किस योनि का आवरण पड़ता है जिसके अनुसार वह फिर दूसरा स्थूलशरीर पाता है ?

उत्तर यह है कि चैतन्योन्मुखत्व में जिस प्रकार की वृत्ति का दृढ़त्व होता है तदाकार सूक्ष्म पर आवरण पड़ता है, अर्थात् चैतन्य जो जीवात्मा इसके सामने जिस प्रकार की वृत्ति दृढ़ होजाती है औ जिस रूप में स्थिर होजाती है उसी प्रकार का सूक्ष्मशरीर धारण करलेता है।

सुनिये मैं यहा आपको कई प्रकार का दृष्टान्त देकर देखलाता हूं, देखिये जैसे आलोकलेखकयंत्र (Camera obscura) अर्थात् तसवीर खींचने वाले यंत्र के काच (Lens) में उस पदार्थ की मूर्त्ति ठीक २ पूर्ण प्रकार खिच जाती है जो उस काच के आगे कुछ देर तक स्थिरता के साथ ठहर जावे। आप लोगों ने तो देखाही होगा कि जो वस्तु उस काच के सामने डोलती रहती है उसकी मूर्त्ति उसमें नहीं खिचती। इसी प्रकार इस जीवात्मा को फोटोग्राफ का काच समझिये, इसकी आयु भर मे सहस्रों लाखों प्रकार की वृत्तियां सामने आती हैं किन्तु धीरे २ सब मिटती चलीजाती है, इनमें जो वृत्ति आयु भर में स्थिरता पकड़ जावेगी मरणकाल के समय वही वृत्ति सामने मूर्तिमान होजावेगी औ वैसाही सूक्ष्मशरीर बन जावेगा। तात्पर्य यह है कि यह जीव जिस वृत्ति को अपने अन्तःकरण में सदा स्थिर रक्खेगा उसी प्रकार का सूक्ष्मशरीर अन्तकाल में बनेगा। फिर देखिये भृङ्गी * जो एक पतंगी होती है वह झीगुर नाम की एक दूसरी पतंगी को पकड़

---

* इसको दखोरी, लखेरी, कुम्हाइन, भौरी, काचपोका इत्यादि नामों से भिन्न २ देश में पुकारते है॥

लेजाती है औ अपने बनाये हुये मट्टी के बिल में रखछोड़ती है, प्रति-दिन उस झींगुर के शरीर पर बैठ भृङ्ग २ शब्द करती रहती है और अपने पैरों से उसके देह को कुरेदती रहती है, यहा तक कि उसके अंग के अवयवों को तोड़ २ कर अलग २ करदेती है। उसके पैरो औ परों को उसके शरीर से जब बिलग करदेती है, केवल उसकी लोथ मात्र रहजाती है, तब उस लोथ के दायें बायें भी उसी प्रकार कुरेद २ कर झझर अर्थात् जालीलेट के वस्त्र समान बनादेती है। जब से यह झींगुर उस भृङ्गी के बिल में आता है तब से मारे भय के दिन रात उस भृङ्गी के स्वरूप की ओर देखता रहता है। देखते २ अपने देह के भीतर ही भीतर भृङ्गी बनजाता है, दो तीन मास के पश्चात् उसकी लोथ टूट जाती है औ वह भृङ्गी बन कर बाहर निकल आता है। इससे प्रत्यक्ष यह वार्त्ता सिद्ध होजाती है कि यह जीव जिस प्रकार का स्वरूप अपने अन्त.करण में दिन रात स्थिर रखता है कुछ दिनों के पश्चात् तदाकार बनजाता है। इसे कीटभृंगीन्याय कहते है।

श्री श्यामसुन्दर कृष्णचन्द्र भी अर्जुन प्रति इसी बात को यों दृढ़ करते हैं कि हे अर्जुन !

यंयंवापिस्मरन्भावं त्यजत्यन्तेकलेवरम् ।
तंतमेवैतिकौन्तेय सदातद्भावभावितः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता अ० ८ श्लो० ६

अर्थात् मरणकाल के समय यह प्राणी जिस २ प्रिय अथवा अप्रिय पदार्थ रूप भाव को स्मरण करता हुआ अपना पूर्व शरीर त्याग करता है सो तिसी २ भाव के अनुसार ही अगला शरीर पाता है। यहां यह शंका होती है कि जीवित रहते जिसने उत्तम कर्म किया और उसकी वृत्तियां उत्तम संकल्प मे लगी रहीं पर मरणकाल के समय किसी संयोग से भ्रष्ट संकल्प होकर अत्यन्त मलिन स्वरूप उदय होआया, तो क्या वह प्राणी अधम शरीर को पावेगा? यदि ऐसा है तो उसके कर्मों के फल

क्या होजावेंगे ? फिर तो भले बुरे कर्मों के करने की श्रद्धा किसी भी प्राणी को न होगी ? इसी शंका के निवारणार्थ श्यामसुन्दर श्लोक में कहते हैं कि "**सदातद्भावभावितः**" । अर्थात् जीवन पर्यन्त प्राणी सदा सर्वकाल विषे जिस भाव का स्मरण करता रहता है तिस भावनाजन्य संस्कार को तद्भाव कहते हैं, तिसको जो संपादन करे उस पुरुष को **तद्भावभावित** कहते है, अर्थात् जीवित काल पर्यन्त जिस प्रकार के ध्यान जन्य संस्कार से वह युक्त हुआ है तिसी संस्कार के वल से मरण काल मे उसी भाव का स्मरण अवश्य होगा, अन्य किसी भाव का स्मरण नही होगा । कारण इसका यह है कि मरण काल इस प्राणी के लिये अन्यन्त भयानक, कठोर औ दुखदाई काल है । छोटे, वड़े, वाल, वृद्ध सवों का स्वभाव है कि भयानक औ दुखदाई काल में जव अत्यन्त क्लेश होता है तो उसी पदार्थ का स्मरण करने लगते है जिस में उनका भावनाजन्य संस्कार दृढ़ रहता है औ जिसका सव से अधिक अभ्यास रहता है । इसी कारण आनन्द कन्द श्री कृष्णचन्द्र ने भी **सदा तद्भावभावित** कहा ।

इसी वार्त्ता को श्री व्यासदेव श्रीमद्भागवत में कहते हैं कि—

स्वप्नेयथापश्यतिदेहमीदृशंमनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः ।
दृष्टश्रुताभ्यांमनसाऽनुचिन्तयन्प्रपद्यतेतत्किमपिह्यपस्मृतिः ॥
यतोयतोधावतिदैवचोदितंमनोविकारात्मकमापपंचसु ।
गुणेषुमायारचितेषुदेह्यसौप्रपद्यमानःसहतेनजायते ॥

जैसे किसी प्रकार के मनोरथ में लगा हुआ चित्त वाला पुरुष नाना प्रकार के वस्तुओं को देखता हुआ औ सुनता हुआ फिर उसी देखे सुने पदार्थों को मन में चिन्ता करता हुआ सोजाता है औ स्वप्न में उसी चिन्ता किये हुए स्वरूप के अनुसार देह को प्राप्त होजाता है अर्थात् अपने संकल्प के अनुसार देह पाता है, और स्वप्न में जो देह पाता है वैसा ही अपने को समझने लगजाता है, जाग्रित वाले देह को

एक दम भूल जाता है, इसी प्रकार यह प्राणी मरने के पश्चात् सदा तद्भावभावित होकर अर्थात् किसी प्रकार के संकल्प में आयुष्पर्यन्त फंसा रहकर तदनुसार ही अगले शरीर को पाता है औ पिछले को भूल जाता है। इसी कारण श्री व्यासदेव फिर कहते हैं कि यतो यतो० अर्थात् यह विकारात्मक मन नाना प्रकार के सङ्कल्प विकल्पों से विकार को प्राप्त हुआ, माया रचित अर्थात् प्रकृति के परिणाम रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गन्ध पांचो विषयों में फंसा हुआ, जिन २ विषयों की ओर दैवचोदित होकर अर्थात् कर्मों से प्रेरित होकर दौड़ता है, उसी प्रकार का अपना शरीर मानलेता है औ तदनुसार ही जन्म पाता है।

प्यारे सभासदो! इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि प्राण वियोग समय प्राणी के सूक्ष्मशरीर पर उसी प्रकार का आवरण पड़ता है जिस रूप में आयुष्पर्यन्त सङ्कल्प की दृढ़ता रहती है, फिर तदनुसार ही स्वर्ग नरक इत्यादि को भोगता हुआ पंचाग्नि द्वारा संसार में जन्म ले स्थूल-शरीर पाता है। अर्थात् इसका पुनर्जन्म होता है॥

प्यारे सभासदो! पापात्मा और पुण्यात्मा जितने प्राणी पुनर्जन्म पाने वाले हैं सब पंचाग्नि मार्ग होकर संसार में जन्म पाते हैं। सो पंचाग्नि मार्ग क्या है? मैं विस्तार पूर्वक वर्णन कर आपको सुनाऊंगा पर इससे प्रथम मैं आपको यह सुनादूं कि संसार में कितने प्रकार के मनुष्य हैं? इन में किनका पुनर्जन्म होता है औ किन २ प्राणियों का नहीं होता।

१. कर्म्मी। २. उपासक। ३. ज्ञानी। ४. योगी। ५. प्रेमी। ६. सकाम तपस्वी। ७. पापात्मा। ८. अधिक पुण्य औ स्वल्प पाप करने वाला। ९. अधिक पाप औ स्वल्प पुण्य करने वाला। १०. सामान्य पुरुष। ११. पागल अथवा उन्मादग्रस्त। १२. छोटे बालक॥

इतने प्रकार के मनुष्य हैं, इनमें उपासक, ज्ञानी, योगी, औ प्रेमी

तो मुक्त होजाते हैं, शेष जितने हैं सब पंचाग्नि होकर पुनर्जन्म पाते हैं।

अब मैं इन सबों की गति अर्थात् शरीर छोड़ने के पश्चात् का वृत्तान्त विलग २ कह सुनाता हूं।

१. कर्मी पुरुष—(इष्ट, पूर्त्त, दत्त इन तीनों प्रकार के कर्मों का करनेवाला) अर्थात् इष्ट कहिये अग्निहोत्र इत्यादि कर्म । पूर्त्त कहिये धर्मशाला, गोशाला, पाठशाला, बाग, बगीचे, कूप, तालाब इत्यादि का बनाना । दत्त कहिये सुपात्रों, दरिद्रों, दुखियों औ रोगियों के प्रति, अन्न, वस्त्र, द्रव्य, गो, महिषि, औषधि इत्यादि का दान करना ।

इन कर्मों के करने वाले पुरुष पितृयान मार्ग होकर स्वर्ग इत्यादि लोकों के अपूर्व सुख भोग शुभ कर्मों के क्षय होने पर फिर लौट कर पंचाग्नि द्वारा संसार में आ जन्म पाते हैं।

प्रमाण—श्रुति—३, ४, ५ से संक्षिप्त कर सुनाता हूं।

अथ य इमेग्राम इष्टापूर्त्तेदत्तमित्युपासते तें धूमम-भिसम्भवन्ति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपरपक्षमपरपक्षा-द्यान् षड्दक्षिणैतिमासांं स्तान्मासेभ्यः पितृ-लोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसम् तस्मि-न्यावत्सम्पातमुषित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्त्तन्त इति

छान्दोग्योपनिषद् उत्तरार्द्ध पंचम प्रपा०

प्यारे सभासदो ! इस श्रुति का मुख्य तात्पर्य तो मैं पहले ही आप को सुना चुका हूं पर अब कुछ विशेष रूप से स्पष्ट कर वर्णन करता हूं। अथ य इमे ग्राम० जो प्राणी ग्राम में, अर्थात् अपने घरमें बालबच्चों के साथ रह कर गृहस्थाश्रम का धर्म सन्ध्या, हवन, तर्पण, बलिविश्वदेव, अतिथिसत्कार के साथ इष्ट, पूर्त्त, दत्त इत्यादि नाना प्रकार के कर्मों को, जिनका वर्णन मै पहले करचुका हूं, पूर्ण रीति से प्रतिपाल करते हैं, वे

शरीर छूटने के पश्चात् धूममभिसम्भवन्ति धूम के अभिमानी देव को प्राप्त होते हैं अर्थात् यह आकाश जो वाष्प से भरे रहने के कारण धुमैला देखपड़ता है इस धुमैले मार्ग होकर ऐसी शीघ्र गति से ऊपर की ओर चढ़ते हैं जैसे कभी २ अन्धकारमय रात्रि में तारे टूटकर झट एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते देख पड़ते हैं, मुख्य तात्पर्य यह है कि शरीर छूटने के साथ इन कर्मी पुरुषों का जीव उल्काधर्मक (Meteorous) बन कर इस धुमैले मार्ग होकर ऊर्द्ध गति को प्राप्त होता है, इस विषय को अन्तरिक्षविद्या (Meteorology) के जानने वाले भली भांति समझेंगे।

प्यारे सभासदो! एवम् प्रकार धूम होनेके पश्चात् रात्रि के अभिमानी देव को प्राप्त होते हैं, अर्थात् घोर अन्धकार में ऊपर की ओर चढ़ने की शक्ति बढ़ती जाती है, यह बात प्रसिद्ध है कि, गंभीर अँधियाली में अकेला आकाश की ओर चढ़ने वाले को अत्यन्त भय होता है, पर ये प्राणी अपने शुभ कर्मों के बल से चाहे कैसा भी गम्भीर अन्धकार क्यों न हो निर्भय ऊपर चढ़ते चले जाते है, पश्चात् कृष्णपक्ष के अभिमानी देव को प्राप्त होते हैं, अर्थात् पक्षमात्र पन्द्रह दिन तक बरांबर लगातार पहले कथन कीहुई शीघ्रगामिनी गति से अन्धकार में ऊपर चढ़ते जाते है, फिर छः महीने दक्षिणायन को अर्थात् अन्धकार के केन्द्र की ओर बढ़ते चले जाते हैं, यों बढ़तें २ पितृलोक को पहुंच जाते हैं, तहां पितरों के सत्संग से इनको और भी आगे आकाश की ओर बढ़ने की शक्ति होजाती है, ऐसे बढ़ते २ "चन्द्रमसम्" परम मनोहर शीतल शान्तिमय सुख को प्राप्त होते हैं, अर्थात् स्वर्ग में नाना प्रकार के भोगों * को भोगने लगते हैं, फिर अपने शुभ कर्मों के क्षय होने पर संसार में लौट कर जन्म पाते है।

---

* किस पुण्य के करने वाले किस प्रकार का भोग वा सुख भोगते हैं मनु अध्याय १२ में वर्णन है देखलेना।

इनमें निष्काम कर्म करने वाले नहीं हैं क्योंकि इनको तो कर्मों का बन्धन ही नहीं होता इसलिये मुक्त होजाते हैं।

२. उपासक— (किसी देव देवी की उपासना करने वाले) शरीर छूटने के पश्चात् अपने इष्टदेव का स्वरूप प्राप्त कर उसी इष्टदेव के लोक में पहुंच उसी देव के समीप उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं अथवा उसी के स्वरूप में लय होजाते हैं।

प्रमाण गीता— "यंयंवापिस्मरन्भावं०" (देखो पृष्ठ ६६)

३. ज्ञानीपुरुष—जो जीवन्मुक्त है, जिनके मनके सङ्कल्पों की निवृत्ति होगई है, जिनका प्रपंच उपशम होगया है, जिनकी वृत्ति ब्रह्म-स्वरूप में अहर्निश अखण्ड प्रवाह कररही है, जिनकी अविद्या नाश होजाने से पुर्यष्टका टूटजाती है, ऐसे पुरुष शुद्ध चैतन्य निर्मलात्मा हो शरीर छोड़ते ही शुक्लगति को प्राप्त करते हैं, अर्थात् देवयान मार्ग होकर ब्रह्म में लय होजाते हैं।

ऐसे प्राणी फिर लौट कर संसार बन्धन में नहीं आते, अर्थात् इनका पुनर्जन्म (تناسخ) (Transmigration) नहीं होता।

प्रमाण श्रुति—

तद्यइत्थंविदुःयचेमेऽरण्ये श्रद्धातपइत्युपासते तेऽर्चिंषमभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरन्हआपूर्य्यमाणपक्षमापूर्य्यमाणपक्षाद्यान् षडुदङ्ङेतिमासाᳬस्तान् १ मासेभ्यः सम्वत्सरᳬ सम्वत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसंचन्द्रमसोविद्युतं तत्पुरुषो मानव स एनां ब्रह्मगमयत्येष देवयानःपन्था इति ॥ २ ॥

छान्दोग्योपनिषद् पंचम प्र० दशम खण्ड श्रुति १, २.

प्रिय सभासदो! यद्यपि व्याख्यान विस्तार होता जाता है तथापि आप घबरावें नहीं, इन गूढ विषयो के जानने के लिये मनुष्यों को गीता,

उपनिषद् इत्यादि अनेक ग्रंथों के साङ्गोपाङ्ग अवलोकन औ विचारने के लिये बरसों का समय चाहिये, पर वर्त्तमान काल में तो मै देखता हूं कि घड़ी दो घड़ी भी मिलना कठिन है, इस नई हवा के समय तो नाना प्रकार के नाटक, क़िस्से, कहानी औ समाचारपत्रों ही से छुट्टी नहीं मिलती । यदि यह कहाजावे कि व्याख्यानों में जाकर सुन लेवेंगे तो आजकल व्याख्यानों की यह दुर्दशा होरही है कि व्याख्यानों में हँसी, ठठ्ठे, गप्प, मसखरी, खण्डन, मण्डन, गाली गलोज, लच्छे के लच्छे चलरहे हैं, व्याख्यानदाता जो कहीं देखने में सुघड़ हुए तो आखों में सुरमा, दांतों में मिस्सी लगाये, इधर उधर अंङ्गों को चमकाते एक-आध खेमटा अथवा ठुमरी के तान लगाते चले जारहे हैं । श्रोताओं का चित्त आनन्द में मग्न होरहा है, भला ऐसे तूफ़ान में तृण के समान बेचारी ग़रीब श्रुतियों को कौन सुने औ कौन पूछे ? फिर उनके गूढ़ रहस्यों को कौन समझे औ समझावे ? अब मैं आप को इस श्रुति का अर्थ सुनाता हूं सुनिये—

तद्य इत्थं विदुः—जो प्राणी इस पंचाग्निविद्या को, जिसे आगे वर्णन करूंगा, जानते हैं अर्थात् जो यह निश्चय रखते हैं कि शरीर छूटनें के पश्चात् हम आकाश औ पर्जन्य इत्यादि होकर कर्मों के वश फिरते २ फिर जन्म पावेंगे, वे प्राणी इस दुःख से बचने के लिये बनों में जाकर श्रद्धातप की उपासना करते है, अर्थात् अहर्निश ब्रह्मरूप मे मग्न हो अपनी वृत्ति को ब्रह्माकार बना लेते हैं, वे शरीर छूटने के पश्चात् "अर्च्चिषमभिसम्भवन्ति" अर्च्चिष अर्थात् अग्नि के अभिमानी देव को प्राप्त हो अर्थात् अग्नि के समान प्रकाशित होकर (अहः) दिवस के अभिमानी देव को प्राप्त होते हैं, अर्थात् दिवस के समान सर्वत्र जिनके ज्ञानचक्षु की फैलाव होजाती है औ सर्वत्र सूर्य की किरणों के समान अपने को फैला हुआ देखते है, पश्चात् शुक्लपक्ष के अभिमानी देव को प्राप्त होकर अर्थात् जैसे शुक्लपक्ष में चांदनी की शोभा

परम शान्ति की उत्पन्न करने वाली है ऐसे परम सुहावन मनोहर शान्ति तत्त्व को प्राप्त होकर छः महीने उत्तरायण को प्राप्त होते हैं, अर्थात् छः महीने तक लगातार उत्तर की ओर अर्थात् परम प्रकाश के केन्द्र की ओर ऊर्द्धगति से प्राप्त होते हैं, तात्पर्य यह है कि छः महीने तक बराबर ज्योति में ऊपर की ओर चढ़ते चलेजाते है, जहां उत्तरायण के अभिमानी देव इनकी रक्षा करते हैं, फिर इन महीनों से सम्वत्सर के अभिमानी देव को प्राप्त होते हैं, अर्थात् सालभर ऊपर की ओर बढ़ते ही चलेजाते हैं, जाते २ तहां से सूर्य के अभिमानी देव को प्राप्त होते हैं अर्थात् जिस तेजपुंज से द्वादश आदित्य अर्थात् बारहों सूर्य्य तपते हैं तिस परम तेज को प्राप्त होते है, तहां से (चन्द्रमसम्) चन्द्रमा के अभिमानी देव को प्राप्त होते है, अर्थात् जिस परम मनोहर शीतल शान्ति तत्त्व से चन्द्रमा की सोलहो कला प्रकाशित होती हैं तिस अपूर्व सुख के भोग को प्राप्त होते हैं, फिर तहा से विद्युत (बिजली) के अभिमानी देव को प्राप्त होते हैं अर्थात् तहां से ऊपर की ओर चढ़ने में इनकी गति ऐसी शीघ्रता को प्राप्त होनी है जैसी बिजली की, मानों एक पल में सहस्रों योजन ऊपर की ओर चढ़जाते है, ऐसे चढ़ते २ जब असंख्य योजन ऊर्द्ध को जाते है तब अमानव पुरुष इनको अपने साथ ले ब्रह्म लोक को पहुंचा देता है, जहां ये ब्रह्म रूप होजाते है, और जहां से ये फिर लौट कर संसार बन्धन में नहीं आते " यत्रगत्वाननिवर्तन्तेतद्धामपरमंमम " इसी को देवयानमार्ग कहते है ।

हमारे सभासदों को स्मरण रहे कि ब्रह्मविद इस मार्ग के जानने वाले होते हैं, इनका पुनर्जन्म नहीं होता । निर्बीज (असम्प्रज्ञात) समाधि वाले योगी औ निष्काम तपस्वियों की भी यही गति है ॥

४. योगी—यम, नियम, आसन, प्राणायाम इत्यादि अष्टांगयोग का अनुष्ठान करनेवाले समाधिस्थ हो परब्रह्म मे लय होजाते हैं । इनमें

भी जिनका योग सिद्ध नहीं होता वे स्वर्ग इत्यादि के सुख को भोग फिर किसी पवित्र धनवान कुल में अथवा किसी योगी के वंश में जन्म लेते हैं अर्थात् इनका पुनर्जन्म होता है । (देखो श्रीमद्भगवद्गीता अ० ६ श्लोक ४१, ४२.) ॥

५. प्रेमी (عاشق زار)—जिन्होंने अपना सर्वस्व श्यामसुन्दर के प्रेम में अर्पण करदिया है, जो स्वर्गसुख तथा ब्रह्मानन्द का भी तिरस्कार कर आठों याम मनमोहन प्यारे के लाड़ प्यार में बिताते हैं । इनका तो पूछनाही क्या है ? ये तो निर्भय औ स्वतन्त्र हैं, जब जी चाहे त्रिय लोक में जा बैठें, इन्द्रादि देव भी जिनको देख आसन छोड़ अलग हट-जाते हैं, ब्रह्मा भी जिनको मस्तक झुकाने को तयार रहते हैं, इनकी गति अलौकिक है, इनमें औ श्यामसुन्दर में किसी प्रकार का अन्तर रहता ही नहीं ॥

सोइ जाने जेहि देहु जनाई
जानत तुमहिं तुमहिं होजाई

من تو شدم تو من شدی من تن شدم تو جاں شدی
تا کس نگوید بعد ازیں من دیگرم تو دیگری

मन तू शुदम तू मन शुदी मन तन शुदम तू जां शुदी
ता कस न गोयद बाद अज़ीं मन दीगरम तू दीगरी

प्यारे सभासदो ! इन प्रेमियों का पूर्ण वृत्तान्त भक्ति के व्याख्यान में देखलेना, इनका पुनर्जन्म नहीं होता ।

६. सकाम तपस्वी—नाना प्रकार के तप कर अपनी कामनानु-सार भिन्न २ लोकों में जाकर जन्म लेते हैं, इनका पुनर्जन्म अर्थात् आवा-गमन (चकरपेंच) नहीं छूटता ।

७. पापात्मा—जो प्राणी हिंसा, व्याभिचार, अनाचार, छल, कपट, परनिन्दा, चोरी इत्यादि नाना प्रकार के पापकर्मों में अहर्निश रत रहते हैं वे शरीर छूटने के समय यमदण्ड से पीड़ित किये जाते हैं,

यमदूत आकर उनको बांध यमराज के पास लेजा उनकी आज्ञा से नियत काल पर्यन्त रौरव, कुम्भी, असीपत्र, इत्यादि भिन्न २ नरकों में डाल देता है, इनका स्थूलशरीर तो संसार में नष्ट होजाता है पर नरक के दुःख भोगने के लिये यमराज पाच भूतों की मात्राओं से एक दूसरा शरीर रचदेते हैं जिसे यातनाशरीर कहते है, यह यातनाशरीर चौरासी लक्ष योनियों के स्थूलशरीर से भिन्न है, विचित्र है, न इसे स्थूल कहसकते है न सूक्ष्म, बरु दोनों से विलक्षण है, इसी शरीर में पापियों के सूक्ष्मशरीर बद्ध होकर यमदूतों * द्वारा नरक के दुख भोगने को आकाश की ओर प्रेरित किये जाते हैं ।

प्रमाण—

पञ्चभ्यएवमात्राभ्यः प्रेत्यदुष्कृतिनांनृणाम् ।
शरीरंयातनार्थीयमन्यदुत्पद्यतेध्रुवम् ॥
तेनानुभूयतायामीः शरीरेणेहयातनाः ।
तास्वेवभूतमात्रासुप्रलीयन्तेविभागशः ॥

मनु० अ० १२ श्लोक १६, १७. ।

प्यारे सभासदो ! इन श्लोकों का वही तात्पर्य है जो मैं पहले सुना चुका हूं अर्थात् पंचभूतों की मात्राओं से बनाहुआ यातनाशरीर पापियों के दुख भोगने के निमित्त रचाजाता है, इसी शरीर से यमराज के दियेहुये दण्डों को भोग कर फिर उनही भूतो की मात्राओं में पापात्मा लय होजाते हैं ।

पश्चात् यही मात्रा श्रद्धा बनकर पंचाग्नि द्वारा इन पापियों को फिर संसार में लौटा शूकर, कूकर, कागला, गीध चांडाल इत्यादि

---

* यदि हमारे नवीन प्रकाशवाले बुद्धिमान यमदूत और यमराज के मानने में हिचकें तो वे केवल इतना ही मानलेवें कि ये दोनों परमात्मा की विचित्र शक्तियां हैं जो इनको एवम्प्रकार दण्ड देती हैं ।

अधम योनियों में डाल देती है।

८. अधिक पुण्य औ स्वल्प पाप करने वाला प्राणी—

यद्याचरतिधर्मंसप्रायशोऽधर्ममल्पशः

तैरेवचावृतोभूतैः स्वर्गेसुखमुपाश्नुते॥

मनु० अ० १२ श्लोक २०

जो प्राणी अपने जीवन पर्यन्त अधिक पुण्य करता है औ कभी २ किसी कुसंगति में पड़ अथवा देखादेखी धोखे से कुछ थोड़ासा पाप कर बैठता है तो वह भी शरीर छूटने के पश्चात् उनही पंचभूतों की मात्राओं से बने भोगशरीर को पाकर स्वर्ग में नाना प्रकार के भोगों को भोगता है। पश्चात् कर्मी पुरुषों के समान अपने पुण्यों के समाप्त होजाने पर पंचाग्नि द्वारा इस संसार में लौटकर उत्तम योनियों को प्राप्त होता है।

९—अधिक पाप औ स्वल्प पुण्य करने वाला प्राणी—

यदितुप्रायशोऽधर्मंसेवतेधर्ममऽल्पशः।

तैर्भूतैःसपरित्यक्तोयामीःप्राप्नोतियातनाः॥म० १२.२१.

जो प्राणी मनुष्य शरीर में अधिक पाप करता है और कभी २ किसी भले पुरुष के साथ कहने सुनने से नाम मात्र कुछ पुण्य कर बैठता है तो वह भी शरीर छूटने के पश्चात् पापात्माओं के समान यातनाशरीर को पाकर नरकों में जा (यामीः) यमराज की दीहुई पीड़ाओं को भोगता है। पश्चात् कर्मों के समाप्त हुए पंचाग्नि द्वारा इस संसार में लौटकर अधम योनियों को प्राप्त होता है।

यदि शंका हो कि इन लोगों के जो स्वल्प पुण्य औ पाप हुए वह क्या होगये? क्योंकि उनके भी तो कुछ फल होहींगे, तो उत्तर यह है कि इन स्वल्प कर्मों के फल भी स्वल्प होकर यहां ही इसी शरीर में भोग जाते हैं, पाप के बदले कभी शरीर में कोई रोग होगया, अथवा किसी प्रकार कोई चोट लगगई, जैसा प्रायः देखा जाता है कि किसी ने किसी भले पुरुष की निन्दा करदी अथवा कुछ दुर्वचन कहदिया वो

थोड़ी देर के पश्चात् बोलते २ उसी के दांतों से उसकी जिव्हा कट-गई । इसी प्रकार पुण्य के बदले कुछ थोड़ासा सुख इसी शरीर में मिल गया । जैसे बुधना क़साई (बूचड) ने एक दिन एक भूखे को कुछ अन्न भोजन करा दिया उसी के तीसरे चौथे दिन उसकी मौसी लावारिस मरगई उसके घरसे उसे ६४ ≡) की एक गठरी मिलगई जिसके मिलने से वह अत्यन्त आनन्द हुआ ।

प्यारे सभासदो ! जिन प्राणियों के एक ही शरीर में पुण्य भी बहुत हैं औ पाप भी बहुत हैं वे विलग २ भोग शरीर पाकर पुण्यों के भोगने के पश्चात् फिर यातनाशरीर में यमराज से दिये हुए दुखों को भोग इस संसार में लौट मध्यम योनियों में जन्म पाते हैं ।

१०. **सामान्यपुरुष**— जिनों ने गृहस्थाश्रम के साधारण कर्मों को औ निरर्थक कार्यों को कर अपना जीवन व्यतीत किया । पाप पुण्य की ओर नहीं गये, अर्थात् न तो कोई विशेष पाप ही किया न विशेष पुण्य ही का साधन किया ।

प्यारे सज्जनो ! साधारण औ निरर्थक कर्मों से मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि रोटी मिलगई खाली, निद्रा लगी सोलिया, बाजारों में सैर करने चलेगये, थोड़ी देर इधर उधर बुलबुल लड़ाया, मेंढ़े लड़ाये नाट्यशाला (Theatre) में जा नाच देखा, चलते फिरते सड़क की दांई ओर से एक कंकड़ी उठा बांई ओर डालदी, जब रात्रि हुई घर जा सोरहे । दूसरे दिन घोड़ों की हाट देखने गये, जी में संकल्प उठा द्रव्य होता तो घोड़े खरीदते, पर क्या करें ? हाथ में द्रव्य नहीं, महिनों घोड़े चढ़ने की इच्छा मन में बनी रही । यहां तक कि रात्रि को स्वप्न मे घोड़े दौड़ाने लगे । इसी प्रकार इनके मन में बारम्बार अनेक प्रकार की कामना उठती रहीं, कई तो क्षण मात्र उठकर विनशगईं, कितनी महीनों तक बनीरहीं, बहुतेरी बरसों बनी रहीं, फिर विनश गईं, पर इनमें कोई एक इनकी आयु भर बनी रही जिसमें इनका दृढ़ संकल्प बना

रहा औ इसी दृढ़ता के कारण शरीर छूटने के समय इनका सूक्ष्मशरीर तदाकार बनकर पंचाग्नि मार्ग की ओर चलचला, किसी नियत समय तक अन्तरिक्ष इत्यादि पंचाग्नि के मार्ग मे भ्रमकर फिर संसार में आ माता के गर्भ से स्थूलशरीर पाया।

प्यारे सभासदो! इन पुरुषो को सीधे पंचाग्नि होकर जन्म लेना पड़ता है इनको स्वर्ग नरक तो होताही नही, कुछ थोड़ा बहुत साधारण कर्मों में जो पाप पुण्य का लेशमात्र होजाता है, उसके बदले इनको इसी पंचाग्नि मार्ग के समाप्त करते २ इनके सूक्ष्मशरीर मे स्वप्नवत् दुःख सुख का भोग भी होजाता है। अधिकाश अपने संचितकर्मों की प्रेरणा से फिर बार २ जन्म लेते रहते हैं।

११. पागल
१२. छोटे बच्चे } अपने २ संचितकर्मों की प्रेरणा से फिर माता के गर्भ मे आते है।

प्रिय श्रोतृगण! आप सर्व प्रकार के जीवों की गति सुनचुके अब मैं आपको पंचाग्नि का विषय सुनाता हूं जिस पचाग्नि होकर यह प्राणी बार२ माताके गर्भ में प्रवेशकर जन्म लेता रहता है। सो पंचाग्नि एक विशेष विद्या है, अत्यन्त गूढ है, जो विद्वान् इस पचाग्निविद्या को अध्ययन करचुका है उसी के समझ में पुनर्जन्म दृढ होता है, अन्य प्राणियोंको समझना दुस्तर है।

पंचाग्निविद्या। का वर्णन॥

प्यारे सज्जनो! यह विद्या महाराज जैवलि ने गौतम को उपदेश की है, सो मै ठीक २ सुनाता हू। सुनिये!

छान्दोग्योपनिषद् उत्तरार्द्ध पंचम प्रपाठक में इस विषय का वर्णन यों किया है कि, गौतम का पुत्र श्वेतकेतु जब अपने आचार्य से औ पिता से विद्याध्ययन कर विद्वान् होचुका, तब उसे अहंकार उत्पन्न होआया, अपनी विद्या के अहंकार में देश देशान्तर फिरता हुआ जहा तहा

शास्त्रार्थ कर पण्डितों को परास्त करता हुआ पांचाल देश के नरेश महाराज जैवलि की राजसभा में अहंकार से मत्त एक वारगी आन-पहुंचा । राजा जैवलि ने उन से पूछा कि हे कुमार! आप को आप के पिता ने विद्या पढ़ाई है ? उसने उत्तर दिया कि हां सब विद्या पढ़ाई है । इसके उत्तर देतेही राजा समझ गया कि इसे अपनी विद्या का अहंकार है, इतना जान जैवलि ने पंचाग्निविद्या के विषय अनेक प्रश्न पूछे पर वह एक का भी उत्तर न देसका ।

फिर तो श्वेतकेतु अत्यन्त लज्जित हो अपने पिता के पास लौट कर बोला कि तुमने मुझे सब विद्या तो पढ़ाई नहीं फिर मुझको क्यों ऐसा कह दिया कि तुझे सब विद्या पढ़ादी है । मुझसे राजा जैवलि ने पंचाग्नि विद्या के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किये, मैं एक का भी उत्तर न देकर मध्य सभा में लज्जित हुआ । पिता गौतम ने उत्तर दिया

ॐ सहोवाच यथा मा त्वंतदैतानवदोयथाहमेषांनैकञ्चन वेद यद्यहमिमानवेदिष्यं कथंतेनावक्ष्यमिति ॥

छान्दाग्योपनिषद् उत्तरार्द्ध पंचम प्रपाठक श्रुति ५.

अर्थात् हे बेटा श्वेतकेतु! जैसे तू इन प्रश्नों का उत्तर नहीं जानता ऐसे मुझको भी जान, मैं भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं जानता, यदि मैं जानता होता तो तुझे क्यों नहीं बताता ?

प्यारे श्रोतागण ! एवम् प्रकार अपने पुत्र से कह गौतम ने पांचाल देश की यात्रा की और कुछ काल बीते राजा जैवलि की सभा में पहुंच राजा से अपना तात्पर्य कह सुनाया, राजा अपने मनमें विचारने लगा कि आज तक यह विद्या ब्राह्मणों में नहीं गई, सो आज यह ब्राह्मण मुझसे मांगने आया है, क्या करूं? यदि न दूं तो न्याय से दोष होता है, क्योंकि यह ब्राह्मण कोई साधारण ब्राह्मण नहीं है, तपस्वी है, ब्रह्मचर्यादि गुणों से सम्पन्न है, श्रेष्ठ है, अधिकारी है, इसे अवश्य यह विद्या देनी चाहिये, ऐसा मनमें विचार क्या बोला सो सुनिये ।

स ह कृच्छ्रीबभूव तꣳहचिरंवसेत्याज्ञापयाञ्चकार तꣳहोवाच यथा मात्वं गौतमाऽवदोयथयेत्रप्राक्त्वत्तः पुराविद्याब्राह्मणान्नगच्छति तस्मादुसर्वेषुलोकेषुक्षत्र-स्यैवप्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच ॥

छान्दोग्योपनिषद् उत्तरार्द्ध पंचम प्रपाठ श्रुति ७.

अर्थात् राजा जैवलि ने कुछ क्लेशित हो गौतम को एक वर्ष पर्यन्त अपनी राजधानी में निवास करने की आज्ञा दी, और कहा कि हे गौतम ! तुमने मुझसे विद्या कहने को कहा, सो तुम निश्चय कर जानो कि तुम से पहले यह विद्या ब्राह्मणों में नहीं गई क्षत्रियों ही में रही, इसी कारण सब लोकों में क्षत्रियों ही का प्रशासन रहा है, अब मैं यह विद्या तुमको कहूंगा, अब से यह विद्या ब्राह्मणों में जावेगी । चित्त दे सुनो मैं सुनाता हूं ।

ओ३म् असौ वावलोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयोधूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः । १ । तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धांजुह्वति तस्या आहुतेः सोमोराजा सम्भवति । २ ।

छान्दोग्योपनिषद् पंचम प्रपाठक चतुर्थ खण्ड श्रुति १. २.

ओ३म् पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेवस-मिदभ्रंधूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादुन्यो वि-स्फुलिङ्गाः । १ । तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सो-मꣳराजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षꣳ सम्भवति ।२।

छान्दोग्योपनिषद् पंचम प्रपाठक पंचम खण्ड श्रुति १. २.

ॐ पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः सम्वत्सर एव समिदाकाशोधूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा आवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्याहुतेरन्नꣳ सम्भवति ।२।

छान्दोग्योपनिषद् पंचम प्रपाठक षष्ठ खण्ड श्रुति १. २

ॐ पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणोधूमो जिह्वाऽर्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः । १ । तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुतेरेतः सम्भवति । २ ।

छान्दोग्योपनिषद् पंचम प्रपाठक सप्तम खण्ड श्रुति १. २

ॐ योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः । १ । तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवारेतोजुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति । २ ।

छान्दोग्योपनिषद् पंचम प्रपाठक अष्टम खण्ड श्रुति १. २

प्यारे श्रोतृवृन्द ! ये जो मैंने आप को श्रुतियां सुनाईं, ये छान्दोग्योपनिषद् के पाचवें प्रपाटक की है, इनही को पाच खण्डों में वर्णन कर जैवलि ने पंचाग्नि के पांचों कुण्डों का वर्णन किया है।

कुण्ड कहने से ठीक २ अग्निकुण्ड ही नहीं समझना चाहिये, कुण्डों से तो केवल दृष्टान्त दिया है, यथार्थ में इन पांचों कुण्डा स उन पाच मुख्य स्थानो को समझना चाहिये जहां २ यह जीव मरने

के पश्चात् जाकर फिर इस ससार में जन्म पाता है। इसलिये इन पाचों खण्डों में जो दो २ श्रुतिया है वे इनही पाच स्थानों को कुण्ड के स्वरूप में यों वर्णन करती है —

१. प्रथम कुण्ड वा स्थान ···· ···· दिवि, स्वर्ग, वा अन्तरिक्षलोक (आकाश की ओर)
२. द्वितीय कुण्ड „ „ ···· ···· ··· पर्जन्यलोक (मेघमाला)
३. तृतीय कुण्ड „ „ ·· ······ पृथिवीलोक (यह भूखण्डल)
४. चतुर्थ कुण्ड „ „ ··· ·· ·· ······· · ···· पुरुष (नर)
५. पंचम कुण्ड „ „ ·· · · · · ·· स्त्री (नारी)

अर्थात् १. अन्तरिक्षलोक, २ पर्जन्यलोक, ३. पृथ्वीलोक, ४. पुरुष, ५. नारी। इन पाच स्थानों की उपमा जब कुण्डों से दीगई तो इन पाचों के लिये जलती हुई लकडी (इंधन), धूम (धूआ), ज्वाला, अगारा, और चिनगारिया होनी चाहिये, इनमें हवन करने की सामग्री होनी चाहिये, और उन हवन * से कुछ उत्पन्न होना चाहिये। सो पूर्ण प्रकार इन श्रुतियों के अर्थ से स्पष्ट कर सुनाता हू सुनिये—

दिवि, स्वर्ग, वा
प्रथम कुण्ड अन्तरिक्षलोक

राजा जैवलि कहता है कि हे गौतम! इस स्वर्ग वा अन्तरिक्ष लोक (आकाश) का जलता हुआ इंधन यह सूर्य है, सूर्य की किरणें धूम है, चार प्रहर का दिन ज्वाला है, चन्द्रमा अगारा है, और तारागण इसकी चिनगारियां है। १। इस ऐसे कुण्ड मे (देवाः) अन्तर्यामीसत्ता श्रद्धा को अर्थात् मृतक के जीव (सूक्ष्मशरीर) को हवन करदेती है, तात्पर्य यह है कि विधाता जीव को आकाश की ओर

* जैसे साधारण अग्निकुण्ड में हवन डालने से वर्षा होती है अथवा अग्निपुरुष उत्पन्न होते हैं तैसे इन पांचों कुण्डों से भी उत्पत्ति देखावेंगे।

भेजदेता है, इस हवन से सोमराजा तयार होता है, अर्थात् आगे शरीर पाने का वीज (Prime cause) बनजाता है, जो चन्द्रमण्डल में गिरकर कुछ काल स्थिर रहकर पर्जन्य में जाता है ।२।

द्वितीय कुण्ड पर्जन्यलोक ।

राजा जयवलि कहता है कि हे गौतम ! दूसरा कुण्ड यह पर्जन्य-लोक (मेघमाला) है, वायु जिसका इंधन है, बादल धूम है, विजली ज्वाला है, विजली का चमत्कार अंगारा है, उनके जो टूट कर गिरते हैं वे ही चिनगारियां हैं । १ ।

इस ऐसे कुंड में देवाः अन्तर्यामीसत्ता उपर्युक्त प्रथम कुंड से बनेहुए सोमराजा को हवन करदेती है तिससे वर्षा तयार होजाती है।२।

तृतीय कुण्ड पृथ्वीलोक ।

फिर राजा जयवलि कहता है कि हे गौतम ! तीसरा कुंड यही भूमंडल है, जिसका सम्वत्सर (साल) इंधन है, आकाश धूम है, रात्रि ज्वाला है, चारों दिशा (पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) अङ्गारा हैं, चारों आवान्तरदिशा (ईशान, नैऋत इत्यादि कोण) चिनगारियां है । १ । इस ऐसे कुंड में अन्तर्यामी सत्ता द्वितीय कुंड से वनी हुई वर्षा को हवन करदेती है, जिससे अन्न (खाने का पदार्थ) तयार होजाता है ।२।

चतुर्थ कुण्ड पुरुष (नर)

फिर राजा जयवलि कहता है कि हे गौतम ! चौथा कुंड जो पुरुष (नर) * है, तिसका वचन ही ईंधन है, प्राण ही धूम है, जिन्हा ज्वाला है, चक्षु अङ्गारा है, कान चिनगारियां हैं । १ । इस ऐसे कुंड में (देवाः) अन्तर्यामीसत्ता तीसरे कुंड से वने हुए अन्न को हवन करदेती है, अर्थात् मनुष्य, घोड़े, हस्ती, इत्यादि उस अन्न को खाते हैं तिससे रेत अर्थात् वीर्य्य तयार होजाता है ।२।

---

* किसी भी जन्तु का नर हो

पंचम कुण्ड योषा (स्त्री)

राजा कहता है कि हे गौतम ! स्त्री ही पंचम कुंड है, जिसके लिये उपस्थ (लिङ्ग) ही ईंधन है, उपमंत्रण अर्थात् भोग करने के लिये जो परस्पर वार्त्ता करना है सोही धूम है, योनि ज्वाला है, परस्पर भोग के जो आनन्द हैं वे ही चिनगारियां हैं । १ । इस ऐसे कुंड में (देवाः) अन्तर्यामी सत्ता तिस पुरुष से बने हुए वीर्य्य को हवन करती है जिससे गर्भ तयार होजाता है ।२।

मुख्य अभिप्राय इन श्रुतियों का यह है कि शरीर छोड़ने के पश्चात् यह जीव सूर्य से आकर्षित हो आकाश की ओर अन्तरिक्ष में जाता है, तहां से वायु द्वारा मेघमाला में आता है, फिर जल के साथ पृथिवी पर गिर कर अन्नों में प्रवेश करता है, तिस अन्न को मनुष्य घोड़े, पशु, पक्षी इत्यादि खाते है, तद्वा वीर्य में प्रवेश कर स्त्री के गर्भ में पहुंच स्थूल शरीर को पाता है । इसलिये राजा जयवलि कहता है कि हे गौतम !

ओ३म् इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति स उल्वावृतोगर्भो दश वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाऽथ जायते । १ ।

छान्दोग्योपनिषद् पंचम प्रपाठक नवम खंड श्रुति १.

ऐसे करके पांचवीं आहुति में श्रद्धा रूप जल अर्थात् मृतक का सूक्ष्मशरीर माता के गर्भ में प्रवेश कर उल्व * अर्थात् झिल्ली में लपेटा हुआ, दश महीने अथवा जितने दिन जिस गर्भ का प्रमाण है उतने समय तक उस गर्भ में शयन कर स्थूलशरीर लिये हुए अपान वायु की प्रेरणा द्वारा बाहर निकल आता है ।

इसी प्रकार जीव बार २ जन्म लेता है औ मरता है,इसी को

* उल्व—कहते हैं उस झिल्ली को जिससे बच्चा माता के गर्भ में लपेटा हुआ रहता है

पुनर्जन्म (Metempsychosis or Transmigration of souls) कहते है ॥

यहां सभासदो को एक शंका यह उत्पन्न होगी कि तुमने केवल मनुष्य ही की कई प्रकार की गति कही, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्गों के विषय तो कुछ नहीं कहा कि मृत्यु के पश्चात् इनकी क्या गति होती है ?

इस शंका का समाधान यों है कि, गति दो प्रकार की होती है, एक घटीयन्त्रन्याय दूसरी कुलालचक्रन्याय । घटीयन्त्र कहते हैं रहट को जिससे पानी खींचा जाता है, उसमें बहुत से डोल जल भरने के लिये लगे रहते हैं, सब डोल एक माला के समान एक रस्सी में बंधे रहते हैं । वे डोल कूप में नीचे से जल लेकर ऊपर को चढ़ते है, ऊपर आकर जहां उनका सब जल निकलजाता है तहां से नीचे की ओर जाते हैं । इसी प्रकार ये मनुष्य नीचे इस लोक में कर्म्म रूप जल को भर ऊपर को जाते हैं, जब वहां इनके कर्म्म भोग कर छीज जाते हैं तब क्षीणकर्मा होकर फिर नीचे को इस मृत्युलोक में पंचाग्नि द्वारा लौट-आते है, अर्थात् स्वर्ग नरक भोगने के पश्चात् ये अन्तरिक्ष में चन्द्र-लोक होतेहुए पर्जन्य पृथिवी इत्यादि पाचों कुण्डो होकर संसार में आजाते हैं । जो सामान्य कर्म वाले हैं वे तो शीघ्र ही ऊपर जा पंचाग्नि द्वारा नीचे आजाते हैं, पर जो अधिक पुण्य वा पाप वाले है वे भोग-शरीर औ यातनाशरीर* को पाकर प्राण के साथ ऊपर जा शुभाशुभ कर्म्मों को स्वर्ग नरक में भोग पहले कथन कियेहुए मार्ग से नीचे आते है । इसी बीच में इनको वैतरणी इत्यादि का भोग होजाता है ।

नीचे गिरते समय यदि इनके संचितकर्मों की प्रेरणा उत्तम हुई अर्थात् शुभ कर्म उदय होआये तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इत्यादि उत्तम शरीरों को पा योगी, यती, अथवा राजा, महाराजा, होजाते है । यदि नीचे गिरते समय इनके सञ्चितकर्मों की प्रेरणा निकृष्ट हुई अर्थात्

* इन शरीरों का वर्णन पहले होचुका है(देखो पृ० १०८, १०९.)

पाप कर्म उदय होआये तो शूकर, कूकर, चाडाल इत्यादि अधम यो-
नियों में उत्पन्न हो नाना प्रकार के दुख पातेहैं इसमें श्रुति का प्रमाण है
सुनिये ।

तद्य इह रमणीयचरणाऽभ्यासो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्य-योनिं वाऽथ य इह कपूयचरणा ऽभ्यासो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डाल-योनिं वा । छान्दोग्योपनिषद् पंचम प्रपाठक श्रुति ७.

इस श्रुति का अर्थ मै पहले सुनाचुका हूं, स्पष्ठ है, इसी प्रकार यह मनुष्य शरीर वार २ ऊपर जा नीचे गिरता रहता है, इसी को घटीयन्त्र-न्याय अथवा कूपयंत्रघटिकान्याय गति कहते है ।

जो अत्यन्त क्षुद्र कर्म वाले पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग इत्यादि है वे इसी मृत्युलोक में कुलालचक्र के समान दायें, वायें, तिरछे, चारों ओर फिरकर नाना प्रकार की क्षुद्र योनियों में भ्रमते रहते है, अर्थात् मशक, मत्कुण, जूं, पिपीलिका इत्यादि योनियो को पाते रहते है, इनकी ऊर्द्ध-गति नहीं होती, अर्थात् ये ऊपर को नही जाते । पंचाग्नि से इनको कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । ये जब अत्यन्त छोटे २ जन्तु होजाते है तो दिनभर में कई वार जन्म लेते है औ मरते रहते है, अर्थात् यहा ही घूमते रहते है । इसीको कुलालचक्रन्याय गति कहते हैं । इसीको तिर्यक् गति भी कहते है और इन योनियों को तिर्यक् योनि कहते हैं । तिर्यक् कहते है तिरछे वा टेढे को, अर्थात् इनकी गति टेढी है, इसी का-रण मनुष्य को छोड़ अन्य जितने जीव है सबका मस्तक औंधा है । ऊ-पर की ओर नहीं है ।

मुख्य अभिप्राय यह है कि मनुष्यो की घटीयन्त्रन्याय (कूपयंत्रघ-टिकान्याय) गति है और पशु पक्षियो की कुलालचक्रन्याय गति है ।

इनका संचित कर्म इनको प्रेरणा करता रहता है।

समय थोड़ा है इसकारण संक्षिप्त से आप की शंका का समाधान किया, यदि और भी विशेष जानने की इच्छा हो तो छान्दोग्योपनिषद् औ वृहदारण्यकोपनिषद् को पढ़िये ।

अब एक दूसरी शंका यह उत्पन्न होगी कि पहले तुमने यह कहा है कि जिस स्वरूप में वृत्ति की दृढ़ता होती है अर्थात् जिस स्वरूप का संकल्प उठता है तदाकार ही सूक्ष्मशरीर पाकर यहां से ऊपर जा पंचाग्नि द्वारा इस मृत्युलोक में लौटकर स्थूलशरीर पाता है, अब कहते हौ कि कर्मानुसार शरीर पाता है, ऐसे कहने से दो बातें होजाती हैं और सिद्धान्त मे अन्तर पड़ता है सो इन दोनों में यथार्थ क्या है ? निश्चय कर कहो ।

प्यारे सभासदो ! इस शंका का उत्तर तो थोड़ी देर हुई कि मैं अभी देआया हूं औ अभी कहचुका हूं कि आयु भर में मनुष्य जैसा कर्म करेगा तदनुसार ही मरणकाल में सूक्ष्मशरीर पावेगा क्योंकि " सदातद्भावभावितः " अर्थात् जीवित काल पर्यन्त जिस प्रकार का कर्म करता है तदनुसार ही ध्यानजन्य संस्कार मरण काल के समय उसी भाव का स्मरण कराता है औ वैसी ही मरण काल मे संकल्प की दृढ़ता होती है ।। (देखो पृष्ठ ९८—१०१) पर यहां उसीको मैं एक दूसरी रीति से सिद्ध कर आप की शंका निवृत्त करता हूं ।। सो सुनिये ।

संकल्प औ कर्म में किसी प्रकार का भेद नहीं है । जो संकल्प है वही कर्म है और जो कर्म है वही संकल्प है । केवल इतना है कि संकल्प औ कर्म में वीचितरंगन्याय * औ वीजांकुरन्याय † का

* वीचितरङ्गन्यायः—वीचीजनितस्तरंगस्तज्जनितोपितरुंग इति क्रमेण तरङ्गोत्पत्तिः ॥

† वीजाङ्कुरन्यायः —आदौवीजं ततोऽङ्कुरः किमादावङ्कुरस्ततोवीजमित्यनिर्णयेन वीजाङ्कुरप्रवाहोऽनादिः ॥

भेद है । अर्थात् जैसे सागर में प्रथम वीचि (लहर) उत्पन्न होती है फिर उस लहर से तरङ्ग फिर तरङ्ग से तरङ्ग उत्पन्न होती चली जाती हैं और बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज उत्पन्न होता है, इसी प्रकार प्रथम संकल्प उत्पन्न होता है फिर संकल्प से कर्म, पश्चात् कर्म से कर्म उत्पन्न होते चले जाते हैं । किसी प्रकार का कर्म क्यों न हो पहले उस कर्म का संकल्प ही हृदय में उत्पन्न होगा, पश्चात् उसी संकल्पानुसार कर्म करना पड़ेगा फिर एक कर्म दूसरे को उत्पन्न करता चला जावेगा, जैसे किसी व्यक्ति के चित्त में यह संकल्प उठा कि राजा के कोश, अर्थात् खजाने की चोरी करूं, यह संकल्प उठतेही उसने चोरों की संगति आरम्भ करदी, फिर चोरों ने उसे चोरी करने का ढँग सिखाना आरम्भ किया, चोरों की शिक्षानुसार उसने एक फावड़ा (कोदाल) बनवाया और उस कोदाल से दीवालों की मिट्टी काटना सीखा, एक पात्र में दीपक बाल उसे गुप्त रीति से अपने पास रखने का ढग सीखा, देखिये संकल्प उठते ही इतने कर्म सीख कर कुछ दिन बीते कई पुरुषों के घरमें चोरी करते २ राजा के कोश में चोरीकी और कारागार में भेजा गया । काराध्यक्ष ने उससे अरण्ड का तेल तयार कराने के लिये कोल्हू मे बैलों के स्थान पर जोड़ काम लेना आरम्भ करदिया । एवम् प्रकार कुछ काल बैलों के समान आचरण करते २ उसकी प्रकृति बैलों की पड़गई । क्योंकि रात दिन वह अपने मन में यही समझता था कि मै बैलों के समान कार्य कर रहा हूं, फिर तो कीटभृंगन्याय से उसकी पुर्य्यष्टका में बैल का रूप बनगया, मरणकाल के समय बैल का सूक्ष्मशरीर धारण किये हुए पंचाग्नि होता हुआ बैल का शरीर पाया । यह एक कल्पित दृष्टान्त है इसी प्रकार संकल्प औ कर्म का अनुमान करना युक्त है ।

प्यारे सभासदो ! आप प्रत्यक्ष देखरहे हैं कि प्रथम चोरी का संकल्प उस मनुष्य के चित्त में उठा, फिर इस संकल्प ने उससे चोरी का कर्म करवाया, चोरी ने कोल्हू में जुतवाया, कोल्हू ने उसे बैल बना-

दिया । तात्पर्य यह है कि प्रथम संकल्प उदय होता है फिर तदनुसार ही उससे कर्म उदय होने लगते हैं, इसलिये संकल्प पिता है कर्म्म पुत्र है । आप सज्जनो ने प्रायः देवताओं के पूजन में तथा नाना प्रकार के नित्य नैमित्तिक कर्मों में कर्म के आरम्भ से पूर्व संकल्प करते देखा होगा । संध्या, हवन, तर्पण इत्यादि कर्मों में भी प्रथम सङ्कल्प करलिया जाता है । इस से सिद्धान्त होता है कि विना सङ्कल्प कोई कर्म नहीं होता, चाहे वह सङ्कल्प वचन द्वारा प्रगट करदिया जावे चाहे मन ही मन गुप्त रीति से उत्पन्न हो पर है वह सङ्कल्प, इसलिये सङ्कल्प औ कर्म मे कोई भेद नहीं है, श्रुति का भी वचन है कि—

ॐ तस्माद्यत्पुरुषो मनसाधिगच्छति तद्वाचावदति तत्कर्म्मणा करोति ॥

अर्थात् मनुष्य प्रथम जो कुछ मन मे सङ्कल्प करता है तदनुसार ही वचन से बोलता है औ तैसा ही कर्म करता है । इसलिये स्थूलशरीरों की उत्पत्ति सङ्कल्पानुसार कहिये अथवा कर्मानुसार कहिये दोनों समान सिद्धान्त है । इनमें अन्तर कुछ नहीं है ।

अब रहा यह कि यह जीव मरने के पश्चात् कैसे समझ जाता है कि मैं अमुक प्रकारका सूक्ष्मशरीर धारण कियेहुए हूं और मुझको अमुक पुरुष के वीज में प्रवेश कर अमुक गर्भ से अमुक शरीर धारण कर उत्पन्न होना चाहिये । तो जानेरहो कि इस जीव को स्वयं किसी प्रकार की शक्ति नहीं रहती, यह तो सङ्कल्प अथवा कर्मों के वश में पड़ा रहता है, पर वह विधाता जिसे विधि औ ब्रह्मा कहते हैं, जो रचना करनेवाला प्रधान गुण है, जिसे रजोगुण का प्रधान देव कहते हैं, वही देव अन्तर्यामी सत्ता होकर इन जीवों को जहां जिस जल में, जिस अन्न मे, जिस वीज में, और जिस गर्भ में डालदेना उचित समझता है तहां २ डालदेता है । अर्थात् हमारे आपकी यह शक्ति नहीं है कि जिस अन्न को चाहें भोजन करले औ जिसे चाहें त्यागदे । यह तो उसी ब्रह्मा के हाथ

मे है कि जो अन्न मुझे भोजन करना है औ जिन जीवों को मेरे शरीर द्वारा उत्पन्न होना है उतने अन्न के भाग को मेरे समीप ला मुझे भोजन करावे, चाहे वह अन्न मुझसे सैकड़ों अथवा सहस्रों कोस दूर क्यों न हो, विधाता का काम है कि उसे भोजन कराने के निमित्त मुझे वहा लेजावे अथवा उस अन्न को मेरे पास लेआवे, अन्य धर्मावलम्बी भी इन बातों को मुख्य मानते हैं, देखिये मुसलमानों को भी मैने कईवार यह पद पढ़ते सुना है कि—

دوشے مردماں را رساند بزور * یکے آب و دانہ دگر خاک گور *

दोशै मर्दुमा रा रसानद वजोर
यके आव औ दाना दिगर खाके गोर

अर्थात् दो वस्तु मनुष्यों को बलात्कार अपने २ स्थान पर खैंच कर पहुचाती हैं, एक आव औ दाना (अन्न जल) औ दूसरी खाकेगोर (श्मशान की मट्टी) अर्थात् जहा जिन मनुष्यों का अन्नजल है औ जहा जिस मिट्टी में उनकी मिट्टी को मिलना है तहा वे अवश्य जावेंगे, विधाता (ब्रह्मा) वहा उनको अवश्य पहुचावेगा ॥

इसी कारण पंचाग्नि की श्रुतियों में सर्वत्र (देवाः जुह्वति) देव हवन करते हैं ऐसा कहा, अर्थात् मृतक की श्रद्धा जो स्वर्ग, प्रजन्य, पृथ्वी, पुरुष, औ स्त्री इन पाच कुण्डों मे हवन कीजाती है उसे देवता हवन करते हैं, स्वयं इन जीवों का सामर्थ्य नहीं है कि जहा जिस गर्भ में चाहें चले जावें । यदि अपनी इच्छानुसार इनको कुछ शक्ति होती तो सबके सब रानी महारानी के गर्भ में चलेजाते, संसार के सब दरिद्र निःसन्तान होजाते ।

प्रिय सभासदो—बुद्धिमानों को अवश्य विचारना चाहिये कि बार२ माता के गर्भ में आना कैसे दुःख का कारण है देखिये पहले तो पुरुष का बीज औ स्त्री की रज दोनों कैसे अपवित्र पदार्थ है कि शरीर मे जिन के स्पर्श होजाने से सचैल स्नान करना पड़ता है, फिर इन अपवित्र

वस्तुओं में प्रवेश करने के पश्चात् माता का गर्भ कैसा दुस्सह और दुखदाई है, जिसमें एक ओर तो जठराग्नि की ज्वाला तपा रही है औ दूसरी ओर से मल मूत्र का दुर्गन्ध व्याकुल कर रहा है, फिर कैसी अंधेरी कोठरी है जिसमें हाथ पांव बांधाहुआ उलटा लटका रहना पड़ता है, जहां दायें बायें हिलने का ठौर नहीं, ऐसे घोर नरक में रहना पड़ता है, फिर जब अपानवायु की प्रेरणा से यह जीव गर्भ से बाहर निकलने लगता है तब जैसे लोहकार लोहे की यंत्री होकर लोहे के तार को खींचता है ऐसे यह जीव चारों ओर से चपकर खिंचजाता है, उस समय इसे एकबारगी मूर्च्छा आती है, जब मूर्च्छा छूटती है तब उस घोर दुःख का अनुभव कर रोने लगता है। इतने कष्ट से जब बाहर आता है तब अत्यन्त बचपन में अशक्य औ असमर्थ होकर जहां माता लेटादेती है लेटा रहता है, लेटे २ मल मूत्र करदेता है, जो कहीं माता किसी गृहकार्य में छोड़कर चलीगई है तो वे मल मूत्र इसके हाथ में लगकर सर्वत्र शरीर में और मुंह नाक में लगजाते हैं, कैसा घोर नरक है ? किसी अंग में नाक, कान, वा आंख में व्यथा होजाती है तो वह बच्चा बोल तो सकता नहीं केवल चिल्लाता है औ रोता है, माता समीप रही भी तो क्या जाने कि, बच्चा क्यों रोता है ? इसके कहीं व्यथा है अथवा भूख से रोता है, यद्यपि उसे स्तन में लगा दूध पिलाना चाहती है पर वह पीता नहीं, क्लेश के कारण रोताही चलाजाता है, यह कैसा घोर दुःख है ? फिर जब कुछ बड़ा होते २ युवा होता है तो यह अमंगल रूप शरीर जो महा विकारवान है और मांस, मज्जा, अस्थि, श्लेष्म, मूत्र और विष्ठा से पूर्ण है इसमें अहंकार रूप बिलाव म्याऊं २ अर्थात् मैं ही हूं कहकर शब्द करने लगजाता है, फिर यह शरीर रूप नौका भोग रूप रेत में पड़जाती है जहां से इसका पारहोना कठिन है, फिर तृष्णा रूप सापिन इसे बार २ डसती रहती है, जिससे नाना प्रकार के क्लेश पाता रहता है, फिर धीरे २ युवा अवस्था में काम रूप

पिशाच आलगता है, यह अवस्था इस जीव का परम शत्रु है, ऊपर से तो यह अवस्था देखने में सुन्दर है पर भीतर नाना प्रकार के अवगुण रूप घुन इसमें लगे रहते हैं। इस अवस्था में निर्दोष रहना कठिन है। इस अवस्था में जो चलायमान न हो वह पुरुष धन्य है। इस अवस्था में स्त्री रूप नागिन डसकर मारडालती है। जैसे हाथी को लोहे की शृङ्खला में जकड़ कर बांध देते हैं तैसे युवा पुरुष को स्त्री बाध लेती है कहीं जाने नहीं देती, यह स्त्री विष की बल्ली है, जिसमें लिपटी उसको नाश करडालती है।

प्यारे सज्जनो! एवम् प्रकार युवा अवस्था स्त्री पुत्र इत्यादि के वश में पड़कर बीत जाने के पश्चात् वृद्धावस्था आती है। जब यह शरीर जरजरी भूत होजाता है, बुद्धि क्षीण होजाती है, और नाना प्रकार के रोग इस अवस्था में आकर प्राप्त होजाते हैं, सब कुटुम्बी इसको त्याग-देते हैं, एक कोने में पड़ा हांसता, खांसता, लार, औ कफ गिराता रहता है। कोई पूछता नहीं, जिन पुत्र पौत्र के लिये जन्म भर कमाता मरता है वेही अपनी स्त्रियों को लेकर आनन्द करते हैं औ कहते हैं कि यह बूढा शीघ्र मरजावे तो जान का जंजाल मिटे, फिर कुबड़ा होजाता है, शरीर सर्व प्रकार की शक्तियों से हीन होजाता है, पर तृष्णा बढ़जाती है औ क्रोध अधिक होजाता है, बालबच्चों की दृष्टि में ऊंट के समान भासता है। जिन्हों ने बड़े २ संग्राम जीते हैं उनको भी यह जरावस्था जीत लेती है, और चूर्ण कर डालती है, फिर जैसे बिल्ली चूहे को देख दौड़ती है तैसे मृत्यु इसको देख खाने दौड़ती है औ खाजाती है॥

प्रिय श्रोतृवृन्द! एवम् प्रकार बार २ यह जीव इस संसार रूप गड्ढे में आगिरता है। जो बुद्धिमान इस संसार के इतने प्रकार के दुखों को अनुभव करते हैं वे अवश्य विचारेंगे कि किसी प्रकार इस असार संसार से छुटकारा हो औ ऐसा यत्न करें जिससे फिर माता के गर्भ में न आना पड़े। सो वह कौनसा सुलभ यत्न है मैं आपको सुनाता

हूं सुनिये! मैं इसी पुनर्जन्मके व्याख्यान में बार २ युक्तिओं औ प्रमाणों से सिद्ध करआया हूं कि यह मनुष्य जीवन पर्यन्त जिस सङ्कल्प को जिस स्वरूप में दृढ़ रक्खेगा वैसी ही गति अन्तकाल में होगी। इस वार्त्ता को मै थोड़ी देर पहले कीटभृङ्गन्याय से उदाहरण देकर सिद्ध करचुका हूं (देखो पृष्ठ १२१) तो क्या अच्छी बात है कि हमलोग अन्य प्रकार के सङ्कल्पों का परित्याग कर अपना मन आठों याम श्यामसुन्दर के स्वरूप में लगावें। अहर्निश उसी के मनोहर रूप में मग्न रहें, जिससे शरीर छोड़ने के समय हमलोगों को प्रथम सारूप्यमुक्ति की प्राप्ति हो, अर्थात् देह त्यागने के साथ हमलोग प्रथम तो श्यामसुन्दर का रूप बन जावें फिर उस गोलोक निवासी अपने प्रीतम (معشوق) के समीप पहुंच सालोक्य मुक्ति प्राप्त करतेहुए सामीप्यमुक्ति प्राप्त करें अथवा उस के रूप में लय होजावें, अर्थात् सायुज्यमुक्ति प्राप्त करलें॥

यदि कोई नवीन प्रकाश वाले (Enlightened) सूखे हृदय, प्रपंच में रत, रात दिन अमेरिका औ जापान की यात्रा में मग्न, होटलों की ह्विस्की के बोतल के बोतल शून्य करने वाले, अपने मनमाना धर्म को स्वीकार करने वाले, कभी दयानन्दी, कभी ईसाई, कभी बौद्ध, कभी कूडापन्थी, कभी सतनामी, कभी राधास्वामी बनने वाले, अपनी बुद्धि के बल से यों कहमारें कि ब्रह्म तो साकार नहीं वह निराकार है, तो उनको आप लोग यों उत्तर देदेवें कि तुम स्वामी हंसस्वरूप के व्याख्यान जो साकार औ निराकार उपासना के भेद पर औ अवतारों पर है उनको पहले पढ़ो फिर समझोगे कि साकार निराकार में क्या भेद है? गोलोक क्या है? मनमोहन श्यामसुन्दर क्या है?

दूसरी बात यह है कि जब इन नवीन हवावालों पर ईश्वरकी कृपादृष्टि होने से अथवा किसी सच्चे महात्मा के सत्सङ्ग से यह ज्ञात होजावे कि सम्पूर्ण सृष्टि का सार प्रेम है, परमात्मा केवल प्रेम से मिलता है। कर्म, योग, ज्ञान, सब साधनों का फल प्रेम ही है, सो प्रेम बिना प्रेमपात्र

(معشوق) के बिना होता नहीं और प्रेम बिना प्रेमपात्र जगता नहीं, जैसे [illegible] पत्थर में आग है पर बिना टकराये प्रगट होता नहीं, वैसे सब छोटे बड़े, बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुषों में प्रेम रूप अग्नि है पर बिना प्रेमपात्र (معشوق) से टकराये वह प्रेम जगता नहीं इसलिये वह जगत्पति, जो सम्पूर्ण संसार के प्रेमियों (عاشقوں) का एक ही प्रेमपात्र (معشوق) है, हमलोगों के प्रेमके जगाने के लिये हमारा प्रेमपात्र बनकर साकार होकर, हम लोगों के घर आकर, अर्थात् इस मृत्युलोक में आकर हमसे प्रेम लगाकर, चला गया है और गोलोक में विराजमान है। वहां बैठा हुआ हमलोगों की प्रतीक्षा (انتظار) करता है। जैसे आपके प्रकाश अर्थात् ज्योतिस्वरूप का जब साकार हुआ तो सूर्य बनकर आकाश में स्थिर होगया है, इसीप्रकार अपनी छवि (حسن) (Beauty) का साकार स्वरूप मनमोहन श्यामसुन्दर कृष्ण बनकर गोलोक में सुशोभित है। यदि यह भी न मानो तो यों कहलो कि हमलोग उससे प्रेम कर जिस सुन्दर रूप में चाहेंगे प्रगट करलेवेंगे और उसी स्वरूप के साथ नित्य आनन्द करने के लिये हमारा गोलोक भी हमारे लिये जहां चाहेंगे वहां ही बनजावेगा, क्योंकि जिस जगत्कर्ता ने न जाने कितने करोड़ अनगिनत लोक लोकान्तर बनाये हैं जो आकाश में तारागण के रूप में मुझे देखपड़ते हैं वह क्या हम में से एक २ के लिये एक २ लोक विलग २ बनालेने को समर्थ नहीं है? अवश्य समर्थ है! वह चाहे तो एक नहीं करोड़ों लोक अपने प्रेमियों के लिये क्षण मात्र में बनासकता है, फिर जो प्रेमी (عاشق) हैं वे किसी की निरर्थक बात मानते नहीं चाहे कोई लाख बको वे किसी की नहीं सुनते, वे तो आप और अपने प्रीतम को ही जानते हैं।

غالب اب خاموش رہو خاموشی میں ہیں سبھی باتیں

गालिब अब खामोश रहो खामोशी में हैं सभी बातें।

इस विषय का वर्णन पूर्ण प्रकार प्रेमभक्ति के व्याख्यान में करूंगा

तब शंका करनेवालों की सब शंकायें मिटजावेंगी ।

प्यारे सुहृदो ! मै वार २ यही कहूंगा कि अपनी मनोवृत्ति उसी मनमोहन की माधुरी मूर्त्ति में लगाइये कि अन्तकाल मे और किसी वृत्ति में फँसकर फिर संसार में लौटना न पड़े ।

मनोवृत्ति को मनमोहन प्यारे की मूर्त्ति में लगा संसार के आवागमन से छूट उसी प्राणप्रिय के रूप में लय होने के विषय में आपको एक भक्त की मनोहर कथा सुनाता हूं । एकाग्र चित्त हो श्रवण कीजिये औ एकबार सब मिल बोलिये—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

कथा श्री जयदेवजीकी

ओड़िया देश में श्री जगन्नाथजी के प्रान्त में कहीं कुड़विल्व नामका एक ग्राम है, यहां श्रीजयदेव जी प्रसिद्ध हरिभक्त हुए है, यह काव्यकला में बड़े चतुर थे, श्यामसुन्दरकी छवि और शृङ्गार में अहर्निश मग्न रहा करते थे । इसी कारण आपने एक काव्य गीतगोविन्द की रचना की है जिसमें श्यामसुन्दर श्री कृष्णचन्द्र के शृङ्गार और माधुर्य्य को इसप्रकार भरदिया है कि श्यामसुन्दर के चरणों के रसिक और प्रेमी इसके पदों को गानकर परम प्रेम में मग्न होजाते हैं । इस गीतगोविन्द के पदों में ऐसी शोभा भरी हुई है कि जिस ठौर में इसके पद गायेजाते हैं भगवत् वहां आप आनकर श्रवण करते है (गानेवाला प्रेमी होना चाहिये) एक मालिनकी लड़की एक दिन अपने खेत में बैगन तोड़ते समय गीतगोविन्द के पदो को बड़े प्रेम से गारही थी, श्यामसुन्दर उसके पीछे २ डोलरहे थे, जब पुजारियों ने भगवत को शयन से जगाने के लिये मन्दिर खोला तो देखा कि भगवत्मूर्त्ति के शृङ्गार के सब कपड़े फट रहे हैं और उनमें कांटे फसरहे हैं । पुजारियों को भय हुआ कि इस मन्दिर का मालिक राजा द-

र्शन को आवेगा तो थे कपड़े, जो बड़े मूल्य के नाना प्रकार के रत्न जड़े हुए हैं, इसप्रकार फटे देखकर हम लोगों का दण्ड करेगा । ऐसाही हुआ राजा जब दर्शन को आया तो कपड़ों को फटा देख पुजारियों पर क्रोध किया और कहा कि कपड़े फटने का ठीक २ कारण बतलाओ । नहीं तो कल प्रातःकाल तुमलोगों का दण्ड किया जावेगा । पुजारियो ने अर्द्ध-रात्रि पर्यन्त ध्यानावस्थित हो श्यामसुन्दर मे अपने निर्दोष होने औ राजा के कोप से बचने की प्रार्थना की । फिर ऐसा हुआ कि श्यामसुन्दर ने रात्रि को राजा को स्वप्न मे यह उपदेश किया कि पुजारियों का कोई दोष नहीं है । मालिन की लड़की गीतगोविन्द गारहीथी उसके सुनने को मैं उसके पीछे २ बैंगन के खेत मे फिर रहाथा इसकारण ये कपड़े फट-गये हैं । राजा ने शयन से उठतेही अपने राज्य में डौडी पिटवादी कि कोई प्राणी गीतगोविन्द को किसी अपवित्र स्थान में न गानकरे ॥

एक मोगल घोड़े पर सवार गीतगोविन्द गाता जारहा था लौटकर देखा तो श्यामसुन्दर एक दूसरे घोड़े पर सवार पीछे २ चले आरहे है । देखतेही मोगल श्यामसुन्दर की मधुर मूर्ति में ऐसा मग्न हुआ कि उस-की आखे बन्द होगई । मुहूर्त्तमात्र तक ध्यान में मग्न रहा, फिर जब आखें खोली तो कुछ नहीं देखा, श्यामसुन्दर अन्तर्ध्यान होगये, फिर तो वह अत्यन्त व्याकुल हो घर गया और सब छोड़ छाड़ वन मे जा मनमोहन की उसी माधुरी मूर्ति में लय होगया ॥

उसी समय श्री जगन्नाथजी के राजा डालचन्द ने भी जयदेवजी के देखा देखी दूसरा गीतगोविन्द रचा, दोनों गीतगोविन्द जगन्नाथजी के मन्दिर में रखदिये गये और यह प्रतिज्ञा हुई कि जिस गीतगोविन्द को श्री जगन्नाथजी स्वीकार करलें वही उत्तम औ श्रेष्ठ समझाजावेगा, फिर ऐसा हुआ कि जयदेवजी के गीतगोविन्द को श्री जगन्नाथजी ने स्वीकार कर-लिया, ऐसा देख राजाडालचन्द समुद्र में डूबने चला तब श्री जगन्नाथ जी के मन्दिर से आकाशवाणी हुई कि हे राजन् ! तू डूबे मत ! तेरा भी

एक २ पद जयदेवजी के गीतगोविन्द के एक २ सर्ग के साथ लगा रहेगा, पर नाम जयदेव ही का होगा !

उस देश मे एक ब्राह्मण रहता था जिसको सन्तान नहीं होता था, उसने श्री जगन्नाथ जी के सम्मुख जाकर यह प्रतिज्ञा की, कि यदि मुझे सन्तान होगा तो पहला सन्तान श्री जगन्नाथजी को चढ़ाऊंगा। संयोगवशात् उसे कन्या उत्पन्न हुई, जब वह बड़ी हुई तब श्री जगन्नाथजी के मन्दिर में अर्पण करने केलिये लेगया। श्रीजगन्नाथजी ने कहा कि जयदेव मेरा ही शरीर है उसको यह कन्या देदे ! जब वह ब्राह्मण अपनी कन्या जयदेव जी के पास लेगया तो जयदेवजी ने कहा कि (उनको हजार सोहैं मोकों पहाड़ एक) उनको तो हजारो स्त्रिया शोभती है मेरे लिये तो एक ही पर्वत के समान है सो तू अपनी कन्या लेजा ! उनही को दे ! फिर वह ब्राह्मण दो चार वार इहा उहा करने के पश्चात् उस कन्या को जयदेवजी के समीप छोड़कर चलागया और समझा गया कि बेटी तू! इनकी सेवा अपना स्वामी जानकर करते रहना ! कन्या का नाम पद्मावती था, पद्मावती ने स्वामी जानकर जयदेवजी की सेवा बहुत दिनों तक की । पहले तो बहुत दिनों तक घृणा करते रहे, पीछे उसकी सेवा से प्रसन्न हो उसको स्वीकार करलिया, औ एक झोंपड़ी बना ठाकुरजी को पधरा उनकी पूजा करने की आज्ञा देदी, औ आप गीतगोविन्द की रचना मे रहे । गीतगोविन्द के पदों को पद्मावतीजी को गानकरना सिखलादिया । एक वार पदकी रचना करते २ उनके चित्त में यह भाव उदय होआया कि लाडली जी के मान करने पर श्यामसुन्दर उनके मनाने के लिये उनके चरणों को अपने मस्तक पर रखना चाहते हैं, पर इस बात को अनुचित समझ कर हाथ से लेखनी छोड़दी, और किसी दूसरे भाव की चिन्ता करतेहुए स्नान को चलेगये । उनके पीछे श्यामसुन्दर उनका स्वरूप धारण कर आये औ पद्मावतीजी से गीतगोविन्द लेकर उनके मनके पहले भाव की पूर्त्ति करदी । जब जेयदेवजी स्नान से लौटे और पदकी रचना करने के

लिये गीतगोविन्द हाथ मे लिया तो देखा कि जो भाव उनके मन में पहले उठाथा उसकी पूर्ति कीहुई है। पद्मावती से पूछा इसमें किसने लिखा ? पद्मावतीजी ने उत्तर दिया कि स्वामिन्! आपही तो आकर लिखगये है। जयदेवजी समझगये कि यह श्यामसुन्दर की असीम कृपा का फल है और कहा कि हे पद्मावती तू धन्य है! जो तेरे को श्यामसुन्दरका दर्शन हुआ। पद्मावतीजी यह लीला देख परम आनन्द को प्राप्त हुई।

एकवार जयदेवजी तीर्थयात्रा को चले, यद्यपि उनको किसी प्रकार की आवश्यकता नहीं थी तथापि पद्मावतीजी ने एक अशर्फी (मोहर) उनके गाठ में बांधदी जो मार्ग मे किसी समय पर काम आवेगी। अकस्मात् मार्ग में डाकुओं ने जयदेवजी को घेर लिया, जयदेवजी ने अशर्फी और कपडों को उतारकर देदिया, तथापि डाकुओ ने यह विचारा कि यह कोई धूर्त जानपड़ता है, राजा से जाकर सब बातें कहदेगा, और हम लोगों का दण्ड करावेगा। ऐसा विचार उनके हाथ पांव काट उन्हें एक कूप में डाल चलेगये। जयदेवजी कूप में भी श्यामसुन्दर का नाम जपते बैठेरहे। अकस्मात् कोई एक राजा उस वन में शिकार खेलने आया, जैसे कूप के समीप पहुंचा उसके कानों में हरिनाम के मधुर शब्द आये, आगे बढ़कर देखा तो एक कोई मनुष्य बैठा हुआ है, उनको कूप से निकलवाया, उनके स्वरूप को देख औ वचनों को सुन समझगया कि यह महात्मा हैं, अपने को बड़ा भाग्यवान समझ अपनी राजधानी में लेगया और उनकी सेवा करने लगा। जयदेवजी ने राजा को साधुसेवा करने का उपदेश दिया, सर्वत्र देश में राजा की साधुसेवा की चर्चा फैलगई, फिर वे डाकू जिनोंने जयदेवजी की बुरी दशा कीथी स्वच्छ साधु का स्वरूप बना राजा के पास पहुंचे। जयदेवजी ने उनको देखकर राजा से कहा कि ये लोग बड़े महात्मा है, इनकी अच्छी सेवा होनी चाहिये। ऐसी आज्ञा पा राजा उनकी सेवा अच्छी रीति से करने लगा।

जयदेवजी ने यही विचारा कि ये अपने नीच कर्म से नहीं चूके

तो मैं अपने साधुपना से क्यों चूकूं ? पर उन डाकुओं के चित्त में यह शंका वनी रही कि ऐसा न हो कि यह जयदेवजी किसी दिन हमलोगों का दण्ड करावे, इसलिये वे नित्य वहां से जाने की प्रार्थना करते रहे, पर जयदेव जी उनको नही जानेदेते और वड़े आदर के साथ रखते थे, अन्त में जब उनलोगों ने वहुत हठ किया तो राजा से कहकर एक २ हज़ार मुद्रा उनको दिलवाकर वहा से विदा किया, राजा ने उनके पहुंचाने के लिये एक सिपाही साथ करदिया, मार्ग मे सिपाही ने उन साधुओं से पूछा कि स्वामीजी ने आप लोगों का इतना आदर क्यों करवाया? वे कुविचारी वोले कि तुम्हारे स्वामीजी और हमलोग एक राजा के यहां चाकर थे, स्वामीजी ने राज्य में वहुत वड़ा अपराध कियाथा इसलिये राजा ने उनको वन में लेजाकर मारडालने की आज्ञा दीथी पर हमलोगों ने इनको वन में लेजाकर इनका हाथ पांव काट इनकी जान छोड़दी, इसी कारण हमलोगों का इतना आदर कराया है। इस वचन के सुनते ही पृथिवी फटी और चारों पृथिवी के भीतर जाते रहे । यह अद्भुत लीला देखकर सिपाही दौड़ा गया और जयदेवजी से सव वातें कहसुनाई, सुनते ही वहुत पश्चाताप कर हाथ मलने चाहा कि इतने में उनके हाथ पांव निकल आये। ये दोनों आश्चर्य की बातें देख सिपाही ने राजा से जासुनाई, राजा ने जयदेवजी के पास जाकर, इन आश्चर्य वार्ताओं का कारण पूछा, पर स्वामी जी चुप रहे, जब वहुत हठ किया तव सव वातें पूर्ण प्रकार कहसुनाई। तव से राजा को श्री जयदेवजी में वहुत अधिक विश्वास औ प्रेम होगया औ तन मन से जयदेवजी की सेवा करने लगा, एक दिन श्री जयदेवजी ने अपने निवासस्थान जाने की इच्छा की पर राजा ने नहीं जाने दिया, जब वहुत हठ किया तव पद्मावतीजी को राजा ने वुलवा लिया औ अपनी रानी को पद्मावती जी की सेवा करने की आज्ञा दी। एक दिन रानी का भाई मरगया उसके साथ उस की स्त्री "रानी जी की भावज" सती होगई, यह वार्त्ता रानीजी ने

पद्मावतीजी से कही औ अपनी भावज की बड़ी प्रशंसा की । पद्मावतीजी ने कही कि स्वामी के साथ जीते जलना उचित नहीं है, प्रेम की प्रशंसा तो तबही है कि पति की मृत्यु सुनते ही स्त्री अपना भी शरीर छोड़देवे । रानी बोली कि ऐसी पतिव्रता तो आप को छोड़ दूसरी कौन स्त्री होसकती है ? इतना कह पद्मावतीजी की परीक्षा का विचार किया । राजा से यों कहा कि आप जयदेवजी को किसी वाटिका में छिपादेवें औ राजधानी में यों प्रचार करदेवें कि श्री जयदेवजी का शरीर छूटगया । राजा ने बहुत समझाया कि महात्माओं से ऐसी मसखरी नहीं करनी चाहिये, पर रानी के हठ करने से ऐसा ही किया, जब रानी ने यह बात पद्मावतीजी से जाकही, तब पद्मावती जी हसपडीं और बोलीं कि वे तो आनन्द पूर्वक वाटिका में विराज रहे है । रानीजी ने समझा कि दो ही चार दिन की बात है इसलिये यह समझगई हैं, ऐसा विचार एक साल बीतनेदिया, एक साल के पश्चात् फिर ऐसाही किया औ पद्मावतीजी से पूर्ववत सब बातें जासुनाई । पद्मावतीजी ने विचारा कि रानी मेरी परीक्षा करने चाहती है, ऐसा विचार अपना प्राण छोडादिया, यह देखकर राजा रानी दोनों घबराये, राजा के चित्त में बहुत ही चिन्ता व्यापी । उदासीन मुख से श्रीजयदेवजी के समीप जा सब वार्त्ता कहसुनाई, जयदेवजी ने कहा कि चिन्ता मत करो चलो मैं चलता हू । जब श्रीजयदेवजी ने पद्मावतीजी के कान मे बसी बजाकर गीतगोविन्द के पद सुनाये तब वह हरि नाम लेतीहुई उठबैठीं ।

ऐसे कई साल बीतजाने पर श्रीजयदेवजी पद्मावतीजी के साथ अपने निवासस्थान कुडविल्व ग्राम में लौटआये, आप नित्य गगास्नान को जाया करते थे, सो आप की वृद्धता देख श्री गंगाजी को दया आई । इसलिये गङ्गाजी से एक धार फूटकर आप के ग्राम के समीप बहआई, जो आज तक बहरही है जिसे जयदेईगंगा के नाम से प्रसिद्ध करते है । फिर जयदेवजी औ पद्मावतीजी दोनों निरन्तर श्यामसुन्दर के प्रेम में मग्न

उनकी माधुरी शोभा औ शृङ्गार मे चित्त लगाये अन्त में शरीर परित्याग कर श्यामसुन्दर के स्वरूप में तदाकार हो गोलोक को सिधारगये ।

प्यारे श्रोतृगण ! भगवत् में प्रेम होनेके लिये यह शृङ्गाररस उत्तम औ श्रेष्ठ है, इसलिये इसको रसराज कहते है, अतएव मै बार २ अपने श्रोताओ से यही कहूंगा कि यदि शीघ्र अपना उद्धार करना हो तो श्यामसुन्दर की मनोहर छवि औ शृङ्गार मे चित्त लगा निरन्तर उस रूप मे मग्न हो डूबजाइये कि अन्तकाल में तदाकार हो उस मनमोहनी मूर्ति में लय होजाना पड़े । इस घोर कलिकाल में भगवत्प्राप्ति का कोई यत्न इससे बढ़कर उत्तम नही है । इस रसराज शृङ्गाररस और प्रेमका वर्णन भक्ति के व्याख्यान में देखिये । अब आज मै अपना व्याख्यान समाप्त करता हूं और अन्त में एक कवित्त सुनाता हूं जिसे सुन इसके भाव को अपने मनमें लिये घरजाइये, और जीवन पर्यन्त प्रेमरस को छक २ कर पीतेहुये आवागमन से छूट नित्यानन्द मे प्राप्त होजाइये ।

कवित्त ।

माथे पै मुकुट देखि चन्द्रिका चटक देखि छविकी लटक देखि रूपरस पीजिये।
लोचन विशाल देखि गरे गुंजमाल देखि अधर रसाल देखि चित्त चोप कीजिये।
कुण्डल हलन देखि अलके वलन देखि पलके चलन देखि सर्वस दीजिये ।
पीताम्बर छोर देखि मुरलीकी घोर देखि सांवरे की ओर देखि देखिनोई कीजिये।

फिर कल सुनाऊंगा

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

{ वक्तृता ८ वीं }
{ Lecture 8 th }

ब्रह्मविद्या की द्वितीय श्रेणी

 # उपासना

के भेद

निराकार और साकार

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। नमस्ते अस्तु धन्वने बाहुभ्यामुत ते नमः। १। या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताऽभिचाकशीहि। २।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्ववीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

आज सनातनधर्म रूप दूलह उपासना रूपी दुलहन के साथ विवाह करने को चला है, जहा चारो वेद अपने छओं अङ्गोके सहित बाराती बनेहुए यम नियम के दशों अङ्ग अहिसा, सत्य, ब्रह्मचर्य इत्यादि दसों घोड़ों पर सवार बगमेल चले जारहे है, जहा विवेक रूप दुन्दुभि (नक्कारा) विराग रूप ऊंट की पीठ पर भराभर भर रहा है, और जहां मुक्ति औ भक्ति रूपी सहेलिया, दास्य, साख्य, कान्त्य इत्यादि पांचों भावरूप मधुर-रसों से पगेहुये प्रेम रूप पंचामृतमय मिष्टान्न को अपने २ हाथों मे लिये, अर्थ, धर्म, काम, औ मोक्ष रूप चौराहे पर बैठी यों पुकाररही हैं कि हे प्रिय बारातियो ! आओ ! आओ !! और इस अद्भुत मिष्टान्न को रुचि पूर्वक भोजन कर तत्त्वज्ञान के ताम्बूल को चबाते हुये हमारे सभासद रूप चतुर गायकों के सङ्ग मिल इस बारात की शोभा की वृद्धि के लिये मधुर स्वर से हरिनाम रूप गीत यो गान करलो कि—

हरे राम ! हरे राम ! राम राम हरे हरे !
हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! कृष्ण कृष्ण ! हरे हरे !

प्यारे सभासदो ! इनदिनों भारतवर्ष में नाना प्रकारके मतमतान्तरोंके फैलजाने से ईश्वर की उपासना के विषय अनेक प्रकार के विरोध देखे जाते है । कोई कहता है ईश्वर साकार है, कोई कहता है निराकार है, कोई दोनों स्वीकार करता है, और कोई कहता है न साकार है न निराकार है दोनों से विलक्षण है । इसी कारण इन दिनों हमारे भोले भाले भारतनिवासी जिसके हाथ पड़गये उसही के होरहे । वेद शास्त्र रहित होने के कारण स्वयं उनको किसी प्रकार का भी बोध नहीं है । **साकार और निराकार** का भेद समझना साधारण मत मतान्तर वालों का काम नही है, जबतक कर्मकाण्ड से मनुष्यों का अन्तःकरण शुद्ध न होजावे तबतक **उपासना** का भेद समझना कठिन है, क्योंकि ब्रह्मविद्या का प्रथम अङ्ग **कर्म** है और द्वितीय अङ्ग **उपासना** है जिनका वर्णन मै अपने दूसरे व्याख्यान में करचुका हूं (देखो वक्तृता नं० २ पृष्ठ ६६) इनदिनों

जैसे अंग्रेजी विद्या मे विना एन्ट्रेंस पास किये कोई एफ. ए. (F A.) का अधिकारी नहीं होता है, ऐसे ही इस ब्रह्मविद्या के कर्मकाण्ड में उत्तीर्ण (पास) हुए विना कोई भी उपासना का अधिकारी नहीं होसकता तिस कर्मकाण्ड की जैसी दुर्दशा इनदिनों होरही है सवो पर प्रगट है। जो कर्मकाण्ड के एक साधारण अङ्ग शौच को भी प्रतिपाल करना नहीं जानते, जो यहा तक भी नहीं जानते कि मलमूत्र परित्याग के अनन्तर कैसे शुद्ध होना चाहिये वे और क्या जानेगे ? हा ! हजार में किसी एक ने जानाभी तो इससे कुछ धर्मकी वृद्धि नहीं कही जासकती, ऐसी अवनति की अवस्था मे हमलोगो को परस्पर इन विषयों का समझना समझाना अत्यन्त आवश्यकीय है । लीजिये अव मैं उपासना का विषय छेड़ता हूं एकाग्रचित्त होकर श्रवण कीजिये।

पहले मैं आपको उपासना शब्द का अर्थ बताता हूं सुनिये ! उपासना (उप + आस + युच् + टाप्) इस शब्द मे दो टुकड़े हैं— उप और आसना । उप का अर्थ है समीप और आसना का अर्थ है स्थिति । अर्थात् किसी के समीप में किसी व्यक्ति की स्थिति होने को उपासना कहते है । यह तो इस शब्द का वाच्यार्थ है, और * वरिवस्या, शुश्रूषा, परिचर्या इसके पर्य्याय शब्द हैं। इसलिये इष्टदेव के समीप मे स्थित होकर प्रेम और भक्ति पूर्वक उनकी शुश्रूषा औ परिचर्या करने को उपासना कहते है । यही इस शब्द का लक्ष्यार्थ हुआ । और सुनिये—

यद्यपि तस्मिन् नित्यानन्दस्वरूपे भगवति परमेश्वरे एकान्तप्रीतिकरणमेव तदुपासन तथापि सर्वलोकमोहप्रदायिन्या ज्ञानावरणकारिण्यामविद्याया सत्या कुतः सा सर्वसुखप्रदा तापत्रयच्छेत्री परमाप्रीतिरनुभवनीया ? अतस्तस्या आत्मज्ञानविलोपिन्या मलिनसत्त्वगुणाया रजस्तमःप्रधानाया अविद्यायाः प्रणाशनार्थमेवावश्यमुपासनाकरणीयेति सर्वेषामपिशास्त्राणा

---

* वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्य्याप्युपासना (अमरकोश ब्रह्मवर्ग ७ श्लोक ३५)

सारमितिवोध्यम् । परन्तु सवलदुर्ब्बलाधिकारिभेदेन उपासनाया अपि प्रभेद उपदिष्टस्तत्त्वदार्शिभिः।

अर्थात् यद्यपि उस नित्यानन्दस्वरूप भगवत् परमेश्वर में एकान्त प्रीति करने को उपासना कहते है तथापि सम्पूर्ण संसार औ सब लोकों को मोह में डालनेवाली, ज्ञान को आच्छादन करनेवाली अविद्या की प्रबलता के सामने उस त्र्यताप की नाश करनेवाली परम प्रीति का अनुभव होना कठिन है, इसलिये इस आत्मज्ञान को लोप करनेवाली मलिन सत्त्वगुण, रजोगुण, और तमोगुण तीनों गुणों की प्रधानता को लिये हुए अविद्या के नाश करने के निमित्त **उपासना** की अत्यन्त आवश्यकता है। यही सर्व शास्त्रों की मुख्य सम्मति है ऐसा जानना चाहिये, परन्तु सबल औ निर्ब्बल अधिकारियों के भेद से तत्वदर्शियों ने **उपासना** के दो भेद वर्णन किये— " **निराकार और साकार** " जिनका वर्णन आज मै अपने व्याख्यान में पूर्णप्रकार करता हूं, मेरे श्रोतागण एकाग्रचित्त हो श्रवण करे।

प्रिय श्रोतृगण! हमलोग जब किसी विषय मे घुसते हैं तो विचार की सहायता ही लेकर घुसते है, सो विचार यथायोग्य प्रत्येक विद्वानों को परमात्मा ने प्रदान किया है, प्रमाण औ युक्तिओ द्वारा इस विषय का प्रतिपादन करने से जो थोड़े बहुत भी सादर होंगे समझ जावेगे। देखिये जब हमलोग पूर्ण रूप से किसी वस्तु के जानने की अभिलाषा करते है तो प्रथम यह पूछते हैं कि अमुक वस्तु की जाति क्या है? अर्थात् वह कौनसा द्रव्य है, और उसका गुण क्या है? बिना जातित्व (Self)* और गुण (Quality) के किसी एक विशेष वस्तु को समझलेना कठिन है। जैसे चार मनुष्य आप अपने सामने खड़े करलीजिये और उनमें से एक २ के विषय पूछिये कि अमुक प्राणी जातित्व करके कौन है? तो चारों को जातित्व करके मनुष्य कहना पड़ेगा, और गुण करके किसीको

---

* Self—The properties which are peculiar to a class and distinguish it from all others.

पण्डित, किसी को वैद्य, किसी को योद्धा, और किसी को राजा कहना पड़ेगा । ऐसे ही ताला, कुंजी, छुरी, तलवार, बर्छी, भाला, सूई कैंची इत्यादि लोहे की अनेक वस्तुओं को आप अपने सामने रखकर पूछिये कि ये जातित्व करके क्या है ? और गुण करके क्या है ? तो कहना पड़ेगा कि जातित्व करके ये सब वस्तु लोहा हैं और गुण करके ताला, कुंजी, छुरी, तलवार इत्यादि कहीजाती हैं । इसीप्रकार टोपी, चपकन, कुर्ता, चादर, कोट, पैटलून इत्यादि को अपने सामने रखकर पूछिये कि ये क्या है ? तो कहना पडेगा कि जातित्व करके सूत हैं, और गुण करके टोपी, चपकन इत्यादि कहीजाती हैं । तात्पर्य कहने का यह है कि जब किसी विशेष वस्तु को जानना होता है तो उसे उसकी जाति और उसके गुण से ही जानते हैं ।

अब हमलोगों को इस स्थान में यह निश्चय करना है कि वह ब्रह्म जाति करके क्या है ? अर्थात् कौनसा द्रव्य है ? और गुण करके क्या है ? तो यों उत्तर देना पडेगा कि उस ब्रह्म की जातित्व का कुछ भी पता नहीं है, सुनिये श्रुति का वचन है (**न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेवतद्विदितादथोऽविदितादधि इतिशुश्रुम पूर्वेषां येनस्तद्व्याचचक्षिरे ।** अर्थात् यदि कहो कि वह ब्रह्म कोई ऐसा द्रव्य है जो साकार है तो श्रुति कहती है कि (न तत्र चक्षुर्गच्छति) वहा नेत्र नहीं जाता, अर्थात् उसे आख नहीं देख सकती इसलिये वह साकार नहीं है, क्योंकि जितनी वस्तु साकार होंगी उनमें दृष्टि अवश्य जावेगी, जैसे जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, गृह, स्तम्भ, वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य, पुस्तक, टेब्ल कुर्सी इत्यादि । देखिये ये सब साकार हैं क्योंकि ये आखो से देखीजाती है, परन्तु वह ब्रह्म आखों से देखा नही जाता इसलिये वह साकार नहीं है । यदि ऐसा हुआ तो निराकारवालों का

पत्त सिद्ध हुआ और यह कहना पड़ा कि वह **निराकार** है, पर ऐसा भी नहीं, क्योंकि निराकार उस वस्तु को कहते है जिसे आख तो अवश्य न देखसके पर **मन** और **वाणी** वहां तक पहुंच जावे, अर्थात् मन तो जिसको पूर्ण प्रकार अनुभव करले और बाणी सोलह आना तो नहीं पर एकआध पाई कुछ भी उसके विषय कहसके जैसे, मन, बुद्धि, काम, क्रोध मोह, लोभ, अहङ्कार, हर्ष, शोक, मान, अपमान, निन्दा, स्तुति, क्षुधा, पिपासा, इत्यादि । ये सब निराकार है ! अब यदि इनके विषय बिलग २ पूछा जावे कि मन क्या है ? साकार वा निराकार ? तो अवश्य कहना पड़ेगा कि **निराकार**, क्योंकि न इसका कोई रंग है, न रूप है, न नीला है, न पीला है, न काला है, न हरा है, न लाल है, न गुलाबी है, न अब्बासी है, न त्रिकोण है, न चौकोण है, न पंचकोण है, न षट्कौण है, न लम्बा है, न चौड़ा है, न गोल है, अर्थात् इसका कोई आकार नहीं है, न यह आंखो से देखाजाता है, इसलिये यह निराकार है, इसी प्रकार बुद्धि, काम, क्रोध, हर्ष, शोक इत्यादि को जानना । अब भली भाति विचार देखिये कि यद्यपि ये आख से देखे नहीं जाते तथापि मन तो इनको सोलह आना अनुभव करही लेता है, अर्थात् मन पूर्णप्रकार से समझजाता है कि यही काम है, यही हर्ष है, यही शोक है, यही मोह है, यही मान है, यही अपमान है, और बाणी भी इनके विषय यद्यपि पूर्णप्रकार से नही तथापि कुछ थोड़ा बहुत कह सकती है, जैसे किसी ने पूछा कि हर्ष किसे कहते है ? कहकर समझाओ । तो उत्तर देना पड़ा कि पूर्णप्रकार तो मनही अनुभव करता है पर लो बाणी से भी सुनलो कि जिस समय मन प्रफुल्लित देखपड़े, शरीर फुरतीला होजावे, हंसी, ठट्ठे, (क़हकहे) मचने लगे, तो जानना कि यही हर्ष है । इसी-प्रकार शोक उसे कहते है जिस समय मुख मलीन देखपड़े, शरीर मे आलस्य व्यापजावे, किसी की बात अच्छी न लगे, नाच रंग तमाशे सब खट्टे पड़जावे । बस बाणी तो इतना ही कह सकती है पर मन तो सो-

लहआना इन्हें अनुभव करही लेता है । अब आप पूर्ण रीति से समझ-गये होंगे कि निराकार उसे कहते है जो आंख से तो नहीं देखाजावे पर मन निस्सन्देह अनुभव करले और वाणी भी जिसके विषय कुछ कहसके इसलिये हम ब्रह्म को जातित्व करके निराकार भी नहीं कहसकते क्योंकि श्रुति का वचन है (नवाग्गच्छति न मनः) न वहां वाणी जाती है, न मन जाता है, अर्थात् न मन उसे अनुभव कर सकता है, न वाणी उसके विषय कुछ कहसकती है, यदि शका हो कि ब्रह्म न निराकार है, न साकार है तो फिर क्या है ? तो श्रुति कहती है (न विद्मः) हम नही जाननी कि वह क्या है ? यदि यह कहाजावे कि तुम श्रुति होकर स्वयं नहीं जानती तो अपने शिष्यों को कैसे जनाओगी ? तो श्रुति उत्तर देती है कि [न विजानीमो यथैतत्अनुशिष्यात्] हम नहीं जना सकती शिष्यों को ठीक २ जैसा वह है । यदि फिर यह प्रश्न कियाजावे कि जब तुम स्वयं नहीं जानती और न जना सकती हो तो यह कह सकती हो कि आजतक उस ब्रह्म की जातित्व को किसी ने जाना वा नही । तब श्रुति उत्तर देती है कि (अन्यदेव तद्विदितात्) अर्थात् जितनी वस्तु आज तक बुद्धिमानों ने जानी है उनसे वह न्यारा रहा, नहीं जाना गया । तात्पर्य यह है कि सब विदित वस्तुओं से वह अलग रहा । यदि यह कहो कि वह विदित नहीं हुआ अविदित ही है, अर्थात् अबतक नहीं जानागया तो वह है ही नहीं, इसीकारण वह किसी विद्वान् से नहीं जानागया है न जाना जायगा । तबतो नास्तिकों का पक्ष सिद्ध हो-जावेगा कि ईश्वर हैही नहीं, इसलिये श्रुति कहती है कि ऐसा मत कहो वरः यो कहो कि (अविदितादधि) अर्थात् अविदित से भी बहुत ऊपर है । तात्पर्य यह है कि यदि उसके जानने की कोई चेष्टा करे तो करोड़ों वर्ष परिश्रम करने के पश्चात् भी उसे यही कहना पड़ेगा कि वह जाना नहीं जासकता । है तो कुछ अवश्य, पर मन, बुद्धि द्वारा जानना असंभव है क्योंकि वह मन, बुद्धि, वाणी से परे है । (इति शुश्रुम पूर्वेषा

येनस्तद्व्याचचक्षिरे) जिन लोगों ने उसके जानने का परिश्रम किया है उन लोगों से ऐसा ही सुनाजाता है। यदि कोई उसे विदित करनेको जावे तो जाते २ उसी ओर चलाजावेगा फिर लौटकर कुछ कहने को समर्थ न होगा। इसी तात्पर्य को किसी भाषा वाले ने कहा है कि (गई॰ पूतली लवण की थाह सिंधुकी लैन। चलत २ जलमय भई लौट कहे को बैन॥) इसी अभिप्राय को मुसलमानों के एक महात्मा हजरत शेख़सादी साहब यो फरमाते है कि—

दरीं वृत्त किश्ती फ़रोशुद हजार دریں ورطہ کشتی فروشد ھزار
कि पैदा नशुद तख़्तये वर किनार। کہ پیدا نشد تختہ بر کنار

अर्थात् इस भंवर में सहस्रों नौका डूबगई पर उनमें से एक तख़्ते अर्थात् पटरे का भी पता किनारे पर न लगा कि कहां गया। इसबात को फिर दूसरे फारसीके विद्वान् ने कहा है कि آنرا کہ خبر شد خبرش باز نہ آمد (आंरा कि ख़बर शुद ख़बरश बाज़ न आमद) अर्थात् जिसको ख़बर हुई उसकी ख़बर फिर लौटकर नही आई कि वह कहां गया? तात्पर्य कहनेका यह है कि जो पुरुष उसकी जातित्वको हेरने गया फिर लौटकर नही आया जो किसीको बतासके। इसलिये यह वचन सर्व सम्मति है कि उस ब्रह्म की जातित्व मन, बुद्धि और इन्द्रियों से परे है। न किसी से जानीगई है, न जानीजावेगी क्योंकि उसने अपनी जातित्व को आजतक कहीं प्रगट किया ही नही। अब हमारे सभासदों में बहुतेरे यों व्याकुल होरहे होंगे कि जब वह मन, बुद्धि, और इन्द्रियों से परे है और किसी प्रकार जाना ही नही जाता तो हमारे किस कामका है? क्योंकि हमारे पास तो जो कुछ किसी वस्तु के जानने की पूंजी है, वे यही चौदह शक्तियां है, अर्थात् पांच कर्मेन्द्रिय (Organs of action), पाच ज्ञानेन्द्रिय (Organs of perception) और चार अन्तःकरण (Internal Organs) जिनके द्वारा हम किसी वस्तु के समझने को समर्थ होते है, अथवा हानि लाभ उठाते है! फिर जैसे १४ पैसे की पूंजी वाले को लाख रुपये की वस्तु

की इच्छा करनी व्यर्थ है ऐसेही हमको भी इन्द्रियों से परे अलख अगोचर अप्रमेय ब्रह्म की इच्छा करनी व्यर्थ है। हमारे सभासदों में बहुतेरे तो यों झुंझलाते होंगे कि इस सभा मे बुलाकर मेरे अमूल्य समय की व्यर्थ हानि करदी गई क्योंकि जब वह ब्रह्म हमारे काम का ही नहीं तब हम व्याख्यान सुनने से क्या लाभ उठावेंगे? प्यारे सभासदो! आप घबरावें नहीं, व्याकुल न हो। जब उस परब्रह्म जगदीश्वर दयासागर ने यह देखा कि इन जीवों के लिये मेरी जातित्व का जानना अत्यन्त ही कठिन है और असम्भव है, पर इनको संसृत बन्धनों से छोडाकर अपनी ओर लाना भी अवश्य चाहिये जिससे इनके क्लेश दूर हों और सुख के भागी हों, तब कृपाकर अपनी जातित्व को गुप्त रखतेहुए भी अपने गुण अर्थात् ऐश्वर्य को प्रगट करदिया, जिसकी उपासना करतेहुए जीव निस्सन्देह उसकी ओर चलाजावे। वह गुण, विभूति, शक्ति, ऐश्वर्य ताकत, (طاقت) पावर (Power) दो प्रकार के है, एक साकार दूसरा निराकार। ये साकार और निराकार उसके गुणों के भेद हैं, जातित्व के नहीं। यद्यपि गुण जाति में ही होता है जाति से न्यारा नहीं होता तथापि उस महावस्तु में अद्भुत और आश्चर्यजनक बात तो यही है कि जातित्व के गुप्त रहते भी उसके गुण प्रगट होरहे है। अब मैं प्रथम आपको यह दिखलाता हूं कि उसकी साकारविभूति क्या है? और निराकारविभूति क्या है? एकाग्रचित्त हो श्रवण कीजिये! माण्डूक्योपनिषद् का वचन है कि (सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्माब्रह्म) अर्थात् जो कुछ देखते हो सब ब्रह्म है और यह आत्मा भी ब्रह्म है। यही आत्मा उस ब्रह्म की निराकारविभूति है इसी के द्वारा परमात्मा तक पहुंचने का यत्न करना निराकारउपासना कहीजाती है। केवल आंखों को मींचकर चुपचाप कोने में बैठजाना निराकारउपासना नहीं है, जैसा कि आजकल नवीन मतमतान्तर वाले करते है, और कहते हैं कि हम निराकार उपासना वाले हैं, साकार उपासना मिथ्या है। यदि इनसे

पूछाजावे कि तुम आंख मींच कर क्या ध्यान करते हो तो उत्तर देते हैं कि हमलोग उसके गुणों का ध्यान करते हैं कि, वह न्यायकारी है, सर्व-शक्तिमान है इत्यादि २ । हंसी आती है इनकी बात पर कि ये स्मरण करने को ध्यान करना बताते हैं ।

प्यारे श्रोताओ ! आंख मींचकर परमात्मा के निराकार गुणों का स्मरण हो सकता है ध्यान कदापि नहीं होसकता । ध्यान तो योगियों का काम है, क्योंकि ध्यान अष्टाङ्गयोग का सातवां अङ्ग है, इससे पहले योग के ६ अङ्गो को जानकर अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा को विधिपूर्वक साधन करने के पश्चात् आंख मींच कर ध्यान किया जाता है । ध्यान ऐसा सुलभ नहीं है कि जो चाहे सो ही करलेवे । इसलिये इनका आंख मींचलेना ध्यान नही है केवल स्मरण मात्र है, सो स्मरण आख खोलकर भी होसकता है । अतएव आत्मा की उपासना द्वारा परमात्मा तक पहुंचने का नाम निराकारउपासना है । सो यह आत्मा अधः, ऊर्ध, वाम, दक्षिण इत्यादि दशों दिशाओ में व्याप रहा है इसकी उपासना करनेवाले सर्वत्र आत्मा ही आत्मा देखते है, क्योंकि जहां देखिये तहा सर्वत्र आत्मा परिपूर्ण है । भगवान् शङ्कराचार्य कहते है कि—

किंकरोमि क्वगच्छामि किंगृह्णामि त्यजामिकिम् ।
आत्मनापूर्य्यतेसर्व्वं महाकल्पाम्बुना यथा ॥

अर्थात् किम् क्या करूं ? कहां जाऊं ? क्या ग्रहण करूं ? क्या छोड़ूं ? सर्वत्र तो आत्मा ही आत्मा परिपूर्ण है । जैसे महाप्रलय में सर्वत्र जल ही जल देखपड़ता है, ऐसेही ज्ञानियों की दृष्टि में सर्वत्र आत्मा ही आत्मा देखपड़ता है । असंख्य योजन ऊपर, असंख्य योजन नीचे, असंख्य योजन दायें, असंख्य योजन बायें और इससे भी अधिक जहां तक बुद्धि जासके तहां तक सर्वत्र आत्मा ही आत्मा परिपूर्ण है । आत्मा से भिन्न एक तिल रखने का भी ठौर नही है— श्रुति (ब्रह्मैवेदम-

मृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्द्ध्वं अमृत ब्रह्मैवेदं विश्वमिद वरिष्ठम्) यह अमृतब्रह्म है सो आगे है, पीछे है, दाहिने है, औ बायें है, नीचे औ ऊपर है, यह श्रेष्ठ ब्रह्म ही सम्पूर्ण जगत् में फैला हुआ है । प्रथम श्रुति कहचुकी है कि (अयमात्माब्रह्म) यह आत्मा ब्रह्म है, इसलिये यह आत्मा भी आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, दायें, बायें सर्वत्र फैला हुआ है । इसी को मुसलमान यों कहते है ।

اندرون و برون و از پس و پیش
در چپ و راست و زیر و بالائی

अन्दरूनो बरून ओ अज पसोपेश । दर चपोरास्त ओ जेर ओ बालाई ।

जिसका अर्थ यह है कि भीतर, बाहर, आगे, पीछे, दायें, बायें, ऊपर, नीचे तूही है । जैसे समुद्र में लोटा, घडा, ग्लास, काचकी नली इत्यादि डालकर देखिये तो घडे के भीतर घड़े के आकार का पानी और उसके बाहर भी पानी, ग्लास के भीतर ग्लास के आकार का पानी और उसके बाहर भी पानी, नली के भीतर नली के आकार का पानी और उसके बाहर भी पानी, इसी प्रकार आत्मा के सागर में चौरासी लक्ष योनियों के शरीर डूबे हुए है, इसी कारण निगमागम ने आत्मा को शरीर के भीतर, बाहर, दायें, बायें सर्वत्र फैला हुआ बतलाया है, जिसके विषय मे मैं अभी आप को श्रुति का प्रमाण देचुका हूं, यदि किसी विद्वान् को यह शङ्का हो कि तुमने पहले आत्मा को सर्वत्र व्यापक कहा पर इन उदाहरणों से आत्मा की सर्वत्र व्यापकता सिद्ध नहीं होती क्योंकि घट के भीतर और बाहर जल है परन्तु जितने स्थान में घड़ेकी मिट्टी एक छिलटे के समान बनी हुई है उतने स्थान में तो जल नहीं है, तो उत्तर यह है कि जल की व्यापकता और आत्मा की व्यापकता में इतना ही तो भेद है कि जल घट के भीतर और बाहर तो है पर उसके आकार में जहां मृत्तिका है तहा नहीं है, परन्तु आत्मा तो उस घट के भीतर बाहर व्यापता हुआ उसके आकार में जहा मृत्तिका है तहा भी है । यदि किसीको यह शङ्का हो कि आत्मा को हम अपने शरीर के

भीतर तो मानते हैं क्योंकि हंसना, बोलना, खाना, पीना इत्यादि सब चेष्टायें इसीके द्वारा होरही हैं, पर इसके बाहर नहीं मानते, क्योंकि बाहर इसकी कोई चेष्टा नहीं देखी जाती न बोध होती है, जैसे देवदत्त और यज्ञदत्त दो पुरुषों को एक हाथ के अन्तर में खड़ा कर दीजिये तो देवदत्त और यज्ञदत्त के शरीर के भीतर तो आत्मा की चेष्टा बोध होती है, पर उनके मध्य में जहां एक हाथ का अन्तर है तहा तो आत्माकी किसी प्रकार की चेष्टा का अनुभव ही नहीं होता, इसलिये उस मध्यस्थान मे आत्मा कैसे मानते हो ? तो लीजिये मैं प्रथम आपको श्रुति का प्रमाण देकर बतलाता हूं कि इन दोनों पुरुषों के मध्य जो शून्यस्थान है तहां भी आत्माही आत्मा है । श्रुति–

अग्निर्यथैको भुवनंप्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपोबभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो वहिश्च । जैसे आग इस संसार की भिन्न २ वस्तुओं में प्रवेश कर रूप २ के प्रति तदाकार रूप होरही है, अर्थात् त्रिकोण काष्ट में त्रिकोण, गोल काष्ट में गोलाकार, चौकोण काष्ट मे चौकोण बनजाती है, इसी प्रकार यह आत्मा भी चौरासी लक्ष योनियों में तदाकार हो भासता है, और उनके बाहरवाले भाग में भी है, इसी श्रुति से स्पष्ट होता है कि आग दो लकड़ियों के भीतर बाहर व्यापती हुई उनके बीच में नहीं व्यापती है, पर आत्मा तो सब शरीरों में व्यापता हुआ बाहरवाले स्थान में भी व्यापरहा है, इसलिये श्रुति ने कही है कि (वहिश्च) बाहर भी है ।

प्यारे सभासदो ! इस अग्नि वाले उदाहरण से आप के चित्त में इसबात का निश्चय होगया होगा कि आत्मा शरीर के भीतर व्यापकर रोम चर्म इत्यादि सप्त धातुओं में व्यापता हुआ बाहर भी व्यापक है, पर इतना भेद तो अवश्य है कि भीतर वाले भाग मे व्यापकर नाना-

प्रकार की चेष्टा कर रहा है, पर वाहरवाले भाग में आत्मा का किसी प्रकार का कार्य देखा नहीं जाता तो इसका कारण यह है कि, जिस स्थान में चेष्टा होरही है, और नानाप्रकार के कार्य देखे जाते हैं, तहा आत्मा स्पन्द है अर्थात् फुररहा है और वाहरवाले भाग में निस्पन्द है। जैसे वायु जब स्पन्द होता है तब मेघ, विजली वादल, अन्धड़, भक्कर, तूफ़ान वनकर प्रगट होता है, और जब निस्पन्द होजाता है तब ऐसा शान्त होजाता है कि एक तृण को भी नहीं डोला सकता पर उस समय अज्ञानी कहते हैं कि वायु नहीं है, जो बुद्धिमान है वे तो जानते ही हैं कि हवा इस समय भी है, पर निस्पन्द होने के कारण बोध नहीं होती, पखा हिलाने से जानपड़ती है।

प्यारे सभासदो! जैसे पंखे के योग से निस्पन्द वायु स्पन्द को प्राप्त होता है, ऐसे ही पंचभूत के सहारे आत्मा भी निस्पन्द से स्पन्द होजाता है, सो मैं आप को प्रत्यक्ष देखाता हूं। देखिये! यह लडका जिसका मुण्डन हुआ है आप के सामने वैठा है, इसके सिर के चारोंओर कुछ नहीं देखपडता, पर आत्मा इसके चारो ओर अवश्य व्यापक है और निस्पन्द रूप में है। यदि हम उसे स्पन्द कर दिखलाया चाहें तो यह काम करें कि इसके वालों को कुछ काल तक वढने दें, और उन्हें कंघी से कभी स्वच्छ न करने दें, तो उसमें मिट्टी, धूल, पसीने इत्यादि के योग से अर्थात् पचभूत के पखे के लगने से आप देखेंगे कि सैकड़ों वरु सहस्रों जूओं के वीच में आत्माराम सुशोभित होरहे हैं। अब बुद्धिमान विचारलेवें कि इस मूंडेहुए सिर के चारों ओर यदि आत्मा पहले ही से व्यापता नहीं था तो इन जीवों में उसका स्फुरण कैसे हुआ? इसलिये जहा देखिये तहा सर्वत्र आत्मा ही आत्मा फुररहा है। इतना तो अवश्य है कि पंचभूतों के योग से जहा स्पन्दत्व को प्राप्त होता है उस दशा का नाम जीवात्मा है, इसलिये आत्मसत्ता ही सर्वत्र कार्य कररही है। कटैली डालियो से कोमल और भिन्न २ रंगों के पुष्पों का निकलना

आत्मसत्ता ही का काम है, जलमें शीत प्रेमियों में प्रीति, अग्नि में दाह, वायु में प्रवाह, बादल में धड़क, बिजली में कड़क, हीरे में झलक, सोने में दमक, सब आत्मा ही की सत्ता है । इसी आत्मा ही की सत्ता है । इस आत्मा की व्यापकता को वृहदारण्यक की श्रुतियां उत्तम रीति से प्रतिपादन करती हैं सो देखलेना । जिस पुरुष ने आत्मा की उपासना की और जिसको आत्मा का ज्ञान हुआ उसे संसार भावना नहीं होती, उसको ब्रह्म ही ब्रह्म भासना है । इस आत्मा की उपासना करनेवाला जो पुरुष है वही ज्ञानवान है, वह जहा देखता है आत्मास्वरूप ही देखता है, और सर्वत्र आत्मा को ही अद्वैत ज्यों का त्यों स्थित जानता है, स्थावर जङ्गम सब में आत्मा ही आत्मा देखता है, इस आत्मोपासक को संसार का अत्यन्त अभाव होकर सर्व पदार्थ में आत्मा ही आत्मा भासता है, इस आत्मा के उपासक का प्रपंच निवृत्त होजाता है, उसके सब दुख नाश होजाते हैं, वह सच्चिदानन्द परमपद को प्राप्त होजाता है, आत्मा के उपासकों की दृष्टि में कीट से ब्रह्मा पर्यन्त आत्मसत्ता ही परिपूर्ण देखपडता है। करोड़ों योजन ऊपर नीचे दौड़जाने से भी आत्मा की समाप्ति नहीं होती, यदि कोई मनुष्य चाहे कि मैं अपनी छाया की समाप्ति करू तो चाहे वह कितना ही दौडे पर छाया कभी समाप्त नहीं होगी । इसी प्रकार आत्मा की समाप्ति नहीं होसकती, जहां देखो तहा आत्मा ही आत्मा है, सत्स्वरूप आत्मा का अभाव कभी नहीं होता, आरम्भ म भी आत्मा है और परिणाम में भी आत्मा ही है, आत्मोपासक आत्मा की उपासना करते २ सर्व कर्मों के बन्धनों से छूटजाता हैं, कर्म उसे बाधा नहीं करते, मृत्यु उसके सामने नहीं जाती, वृहदारण्यक उपनिषद् में श्रुति का वचन है कि —**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्वो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः इति ॥**

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि अरे मैत्रेयी ! केवल आत्मा ही देखने योग्य

रहते है वेही महापुरुष है उन्हीं को स्थितप्रज्ञ कहते है ।

सुनिये मै आपको इसी तात्पर्य को भलीभांति समझाने केलिये श्रीकृष्णभगवान् के पद सुनाता हूं— श्री भगवानुवाच ।

प्रजहातियदाकामान्सर्वान्पार्थमनोगतान्
आत्मन्येवात्मनातुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषुविगतस्पृहः
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥
विहायकामान्यः सर्वान्पुमांश्चरतिनिःस्पृहः
निर्ममोनिरहंकारः सशान्तिमधिगच्छति ॥

श्रीमद्भगवद्गीता अ० २ श्लोक ५५, ५६, ७१.

यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्चमानवः
आत्मन्येवचसंतुष्टस्तस्यकार्यंनविद्यते ॥

भगवद्गीता अ० ३ श्लोक १७.

हे अर्जुन ! जब समाधिस्थ पुरुष अपने मनके सर्व कामनाओं को परित्याग करदेता है और अपने आत्मा करके आत्मा ही में संतुष्ट रहता है अर्थात् आत्मानन्द लाभ करता है तबही उस पुरुष को विद्वान लोग स्थितप्रज्ञ कहते है (श्लोक ५५)

आध्यात्मिक, १ आधिभौतिक, २ और आधिदैविक३ इन तीनों प्रकार के दुख प्राप्त होने के समय जो उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और

---

१. आध्यात्मिक—शोक, मोह, अथवा ज्वर, शूल इत्यादि करके जो दुख उसे आध्यात्मिक कहते हैं ॥

२. आधिभौतिक—व्याघ्र सर्पादि करके जो दुख उसे आधिभौतिक कहते हैं ॥

३. आधिदैविक—अति वायु. वृष्टि, और अग्नि करके जो दुख हो उसे आधिदैविक कहते हैं ॥

वैषयिक[४], आभिमानिक[५], मानोरथिक[६], आभ्यासिक[७] इन चार प्रकारके सुखोंके प्राप्तहुए जो हर्षित औ प्रफुल्लित नहीं होता, और जो राग, भय, औ क्रोधसे रहित हो सर्वदा आत्माहीमें सतुष्ट रहता है, अर्थात् उक्त सर्वप्रकारके दुःख सुखको आत्माही आत्मा अवलोकन करता है, उसी मननशील पुरुषको स्थितप्रज्ञ कहते हैं । श्लो० ५६.

हे अर्जुन ! जो प्राणी सर्वप्रकारके कामनाओंको परित्याग कर निस्पृह हो जहां चाहे विचरता है और सदा सर्वकाल में अर्थात् दुःख सुख दोनोंमे ममतासे रहित और निरहङ्कार होरहता है, वही स्थितप्रज्ञ है और वही शान्तिको प्राप्त होता है, क्योंकि सबको सर्वत्र आत्माही आत्मा जानता है ॥ श्लो० ७१

फिर श्रीकृष्णभगवान कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो प्राणी दिनरात आत्माहीमें प्रीति करनेवाला है, सदा आत्माहीमें तृप्त रहता है और आत्माहीमें संतुष्ट रहता है उसे फिर दूसरे प्रकारके पूजन पाठ अथवा अन्य साधन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है अ० ३ श्लो० १७.

इसी आत्माकी उपासनाको निराकार उपासना कहते हैं । किन्तु सर्वसाधारण इस उपासनाके अधिकारी नहीं होसकते, इसके अधिकारी वेही है जो ब्रह्मविद्याकी पाठशालाकी उच्चश्रेणी के विद्यार्थी होचुके हैं, अर्थात् जिन्हों ने अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य इत्यादि औरभी विविध प्रकारके श्रौतस्मार्त कर्मोको पूर्णरूपसे प्रतिपाल करतेहुए स्मार्तमतके अनुसार पंचदेवोंकी साकारउपासना करतेहुए सम, स-

४. विषयों से जो सुख उसे वैषयिक कहते हैं ॥

५. राजा वा पण्डित इत्यादिकों को अभिमान करके जो सुख उसे आभिमानिक कहते है ॥

६. प्रिय वस्तुओंके ध्यान से जो सुख उसे मानोरथिक कहते हैं।

७. सूर्यभगवान्के नमस्कारादि करनेसे जो सुख उसे आभ्यासिक कहते है ॥

न्तोष, सत्सङ्ग, विचार, साधनचतुष्टयको पूर्ण करतेहुए, सम्पूर्ण जगत को स्वप्नके सदृश जान, पत.ालोक से ब्रह्मलोक तकके विषयका परित्याग किया है, जिनकी दृष्टिमें हानि, लाभ, सुख, दुख, मान, अपमान सम होरहे है, वेही इस आत्माकी उपासना के अधिकारी हैं, नकि आज कल के स्कूल के छोटे २ बच्चे जिनको धर्म कर्मका सार तनक भी ज्ञात नही है। हंसी आती है इनके छोटे २ कोमल मुंहकी ओर देखकर जब वे यों बोलते है कि हम लोग Science और Philosophy पढ़ेहुए हैं इसलिये साकार को नहीं मानते, निराकार को मानते हैं। मेरे प्यारे स्कूलके बच्चो! आपलोग अपने २ मास्टरों से जिन्होंने आपको साइन्स Science और फिलासोफी Philosophy पढ़ाई है जाकर पूछियेगा तो वे अवश्य यही कहेंगे कि विना साकार के निराकार का बोध होही नहीं सकता। देखिये यह जो आप अपने हाथमें एक बहुत बड़ी अंग्रेजी पुस्तक लिये इस सभामें उपस्थित है, इसमें आदि से अन्त तक साकार ही साकार भराहुआ है, क्योंकि सम्पूर्ण पुस्तक A. B C. D इत्यादि साकार अक्षरों से भरी पड़ी है, भला आप यह तो बताइये कि ये अक्षर यथार्थ में साकार हैं वा निराकार? आपको अवश्य कहना पड़ेगा कि ये अक्षर यथार्थ निराकार है, क्योंकि अ, ब, स, ड, ये केवल ध्वनि हैं जो कानोंसे सुनी जाती हैं, इनका कोई स्वरूप नहीं है, तथापि बुद्धिमानोंने सर्वप्रकारकी विद्या संसारमें फैलानेके लिये इन अक्षरों के कल्पित आकार बनारखे हैं। यदि ये कल्पित आकार न बनायेजाते तो कोई भी विद्या संसारमें फैल न सकती फिर सबकेसब मूर्ख रहजाते इसलिये इन साकार अक्षरोंसे बहुत बड़ा उपकार होरहा है, और उन बुद्धिमानोंको सहस्रों धन्यवाद हैं जिन्होंने साकार अक्षर प्रत्येक भाषामें संसारके उपकारार्थ रचदिये।

प्यारे सभासदो! इसीप्रकार जब उस बुद्धिमान जगत्कर्त्ताने देखा कि विना साकारके ब्रह्मविद्याके विद्यार्थियोंका उपकार नहीं होगा तब उस-

ने अपनी जातित्व को गुप्त रखते हुए अपनी साकार विभूतिओं द्वारा अपनी उपासना दृढ़ करवानेके तात्पर्यसे साकारकी रचना आरम्भ करदी, क्योंकि उस सर्वज्ञने यह भलीभांति जानली कि निराकार उपासना द्वारा मेरेतक पहुचना सबोंका काम नहीं है, कई सहस्र पुरुषोंमें कोई एक महात्मा निराकार उपासना द्वारा मुझतक पहुंच सकेगा। इसी तात्पर्यको श्यामसुन्दरने अर्जुन प्रति दृढ़ करदिया है और कहा है कि हे अर्जुन !

मनुष्याणांसहस्रेषुकश्चिद्यततिसिद्धये ।
यततामपिसिद्धानांकश्चिन्मांवेत्तितत्त्वतः ॥

भगवद्गीता अ० ७ श्लो० ३

अर्थ यह है कि पहले तो सहस्रों मनुष्यों में कोई एक मोक्षकी सिद्धिके निमित्त यत्न करता है अर्थात् यतधर्मका साधन करताहुआ अपनी इन्द्रियोंको वशीभूत करता है, फिर ऐसे २ सहस्रों यत्न करनेवालोंमें अर्थात् यतियोंमें कोई मुझको तत्त्वतः जानता है कि, मै क्या हूं ? इसवचन से वही बात सिद्ध होती है जैसा कि मैं पहले कहआया हूं कि, ब्रह्मविद्या के स्कूलमें उच्चसे उच्च श्रेणी (M. A. Class) के विद्यार्थी इस निराकार उपासना के अधिकारी है, जिनको सबल अधिकारी कहते हैं पर ये भी प्रथम साकारउपासना करके निराकार तक पहुंचे हैं। इसी कारण निर्बल अधिकारियों पर दया करके वह महाप्रभु अपनी साकार-विभूतिको अङ्गीकार कर विराड्रूप हो प्रगट होगया। अब वह विराट्-पुरुष कैसे उत्पन्न हुआ सो मैं आप को वेद का प्रमाण देकर सुनाता हूं। ऋग्वेद पुरुषसूक्तका वचन है कि—

"ॐ तस्माद्विराडजायत" अर्थात्

तस्मादादिपुरुषाद्विराड्ब्रह्मांडदेहोऽजायतोत्पन्नः ।

अभिप्राय यह है कि उस परब्रह्म आदिपुरुषसे यह विराट् अर्थात् ब्रह्माण्डरूप एक शरीर उत्पन्न हुआ। विराट् (विविधानि राजन्ते व-

स्तून्यत्रेति विराट्) अर्थात् विविधप्रकार की वस्तु जड़ चेतन जिसमें सुशोभित हों उसे कहिये विराट् । मुख्य तात्पर्य मेरे कहनेका यह है कि ब्रह्मलोक से लेकर पाताल पर्यन्त जो यह ब्रह्माण्ड देखपड़ता है यही उस परब्रह्मका साकारस्वरूप है । इसीको विराट् अथवा वैश्वानर कहते है । प्यारे सज्जनो ! इसी उपासनाको साकारउपासना कहते है, और यही विराट् उसकी प्रथम साकार प्रतिमा है, जिसके विषय वेद कहता है

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सभूमिं सर्वतस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ।

अर्थात् सहस्रों हैं शिर जिसके, सहस्रो है जिसकी आखें, और सहस्रो है पांव जिसके, जो पृथिवी को चारोंओर से घेरकर दश अंगुल पर स्थित है । सहस्र शब्द से यहा अनन्त कहनेका तात्पर्य है, इस मंत्र से ऐसा कोई न समझे कि हजार शिर, हजार आख, और हजार पांव की कोई मूर्त्ति बनकर खड़ी होगई; मुख्य तात्पर्य यह है कि उस विराड्रूप साकार ब्रह्म के अनन्त शिर है, अनन्त आंख है, और अनन्त पैर हैं, अर्थात् कीट से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त जितने प्रकारके मस्तक है सब उसीके मस्तक हैं, जितने नेत्र है सब उसीके नेत्र हैं. मानों वह परब्रह्म अपनी अनेक विभूतियोंको लियेहुये स्वयं वर्त्तमान होरहा है ।

और सुनिये—

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकाँ अकल्पयन् ॥

पुरुषसूक्त मंत्र १३, १४.

अर्थात् उस परमपुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्र से

सूर्य उत्पन्न हुआ, मुख से इन्द्र औ अग्नि उत्पन्न हुए, प्राणसे वायु उत्पन्न हुआ। नाभि से अन्तरिक्षलोक और शिरसे स्वर्गलोक उत्पन्न हुए, चरणोंमे भूमि और कानसे दशों दिशा उत्पन्न हुई। इसप्रकार उसके अन्य भिन्न २ अङ्गोंसे अन्यान्य लोकलोकान्तर उत्पन्न होगये। मुख्य अभिप्राय इन मंत्रोंका यह है कि उस विराड्रूप साकार ब्रह्मका मन चन्द्रमा है, सूर्य नेत्र है, मुख इन्द्र और अग्नि है, प्राण वायु है, नाभि यह अन्तरिक्षलोक है, शिर यह स्वर्गलोक है, चरण यही भूमि है, और दशोदिशा कान है। ऐसे औरभी अनेक लोक लोकान्तरोंको उसका ही अङ्ग जानना।

प्यारे श्रोतृवृन्द! इन वेद के मंत्रों में, मन, नेत्र, मुख, प्राण, नाभि, शिर, चरण, श्रोत्र इत्यादि के देखने से निस्सन्देह यह सिद्ध होता है कि वह ब्रह्म साकार भी है और उसी साकार ब्रह्मको विराट् भी कहते है। तात्पर्य कहनेका यह है कि जोलोग परमात्माकी निराकार विभूति आत्मा की उपासना के अधिकारी नहीं है उनको परमात्मा की साकारविभूति इसी विराट् की उपासना करतेहुए उसतक पहुंचना होगा पर इस विराड्रूप साकार उपासनाका भी अधिकार उनही पुरुषोंको है जिन्होंने कुछ वेदवेदान्तका अभ्यास किया है, उनका यथार्थ तत्व जाना है, और विद्वान हैं। देखो गोस्वामी तुलसीदासजी भी अपने रामायण में कहते है— चौपाई ॥ जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥ विदुषन प्रभु विराट् मय दीसा। वहुकर पग अरु लोचन शीसा जनकपुरमें जब श्रीदशरथनन्दन रघुनन्दन गये हैं तब जैसी जैसी जिसकी भावना रही तैसी २ भावना के अनुसार प्रभुकी मूर्त्ति दिखलाई पड़ी विद्वानोंने प्रभुको विराड्रूप देखा अर्थात् (सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्) हजारों शिर, हजारों नेत्र, और हजारो पांव वाला देखा॥

प्यारे सभासदो! जो लोग पूर्ण विद्वान् है, पर अपने गृहस्थाश्रममें वालबच्चोंके साथ रहतेहुए अपने आश्रमके धर्मका साधन करते है

वे इसी विराट्की उपासनामें अहर्निश किसप्रकार मग्न रहते है वह भी आपको सुनाता हूं सुनिये ! दो एक उदाहरणों से आपको विराट्की उपासनाकी रीति बताता हूं । देखिये जिस समय आकाशमें घनघोर घटा घेरआती है, बिजली चमकने लगती है, बगलोकी पंक्तियोंकी शोभा, मयूरोंकी गुंजार, चित्र विचित्र इन्द्रधनुषकी मण्डलाकार मूर्त्तिकी मनोहरताई जब आकाश में छाजाती है, तब उस समय विद्वान् खड़े २ इस लीला को देख २ बार २ उस परब्रह्मको मस्तक झुकाते है, और कहते है कि हे जगत्कर्त्ता ! तेरी इस अद्भुत रचनाको कोटान्कोटि धन्यवाद है। ये रचना क्या कुछ तुझसे विलग है ? नहीं ! नहीं !! मेघमाला और विद्युत इत्यादि तो स्वयं तूही है । इसीप्रकार जब कभी प्रातःकाल घरसे निकलते ऊषा (Dawn) की ओर दृष्टि पड़ती है तो एक ओर ऊषाका उदय होना जिसके पीछे सूर्यकी अरुणाईका निकलना, शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु का चलना, बेली, चमेली, मोगरा औ मदनबान इत्यादिका वाटिकाओंमें खिलना, उनपर नाना प्रकारके पक्षियोंका चहचहे मारना इत्यादि २ शोभाको देख विद्वान् उस परब्रह्म जगदीश्वरको मस्तक झुकाते हैं, और मनहीमन कहते हैं कि हे प्रभो ! धन्य तेरी रचना ! जिससे परमानन्दका प्रादुर्भाव हृदयमें होताही जाता है ।

प्यारे सभासदो ! इसीप्रकार विराट्की उत्तम रचनाओंको देख उस परमात्माको स्मरणकरना प्रथम और उत्तम प्रकार की साकार उपासना कहीजाती है । श्रीकृष्णभगवान् कहते है कि—**योमां पश्यति सर्वत्र सर्वंच मयि पश्यति ।**

प्यारे सभासदो ! जब उस परमात्माने यह देखा कि विराट्की उपासना अर्थात् इसप्रकारकी साकार उपासनाके अधिकारी भी वेही हैं जो पूर्ण विद्वान हैं, जिनको शास्त्रोंका बोध है, पर जो प्राणी साधारण बुद्धिके हैं वे मेरी इस विराट्मूर्त्तिकी भी उपासना नहीं करसकते तब द्वितीय श्रेणीकी साकारउपासनाकी आज्ञा दी और वेदोंके द्वारा विराट्

के अवयवोंकी अर्थात् भिन्न २ अङ्गोंकी उपासना करनेकी आज्ञा दी। जैसे मनुष्यके सम्पूर्ण शरीरका एक मुख्य और उत्तम अङ्ग नेत्र है, ऐसे उस सम्पूर्ण विराट्का उत्तम अङ्ग नेत्र सूर्य है, इसलिये वेद द्वारा इस उत्तम ज्योति सूर्यकी उपासनाकी आज्ञा दी। इसलिये सन्ध्योपासनमें वार २ सूर्य की स्तुति, उपस्थान, अर्घ्य इत्यादिका विधि भिन्न मंत्रों से विदित है ॥

ॐ सूर्य्यश्च मामन्युश्च ०

ॐ उद्वयं तमसस्परिस्वः ०

ॐ उदुत्यं जातवेदसम् ०

ॐ चित्रं देवानाम् ० इत्यादि २। यही उपासना द्वितीय श्रेणीकी साकारउपासना है। यदि किसीको यह शंका हो कि एक अवयवकी उपासना से सम्पूर्ण अवयवीकी उपासना कैसे होसकती है? अर्थात् किसी पुरुषके एक अंगके ग्रहण करनेसे सम्पूर्णका ग्रहण कैसे होसकता है? तो यह शंका उचित नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि एक अवयव अथवा किसी अङ्गके ग्रहण करनेसे सम्पूर्ण का फल प्राप्तहोता है। जैसे कोई कवि किसी पुरुषके सम्पूर्ण अङ्गकी छविका वर्णन न करके केवल उसके नेत्रोंकी छविका वर्णन करे तो वह नेत्रवाला प्रसन्न होकर अवश्य उसको यथाशक्ति पुरस्कार (इनाम) देवेगा। इसीप्रकार सूर्य उस विराट्पुरुषका नेत्र है, इस सूर्यकी उपासना करनेसे वह पुरुष प्रसन्न होकर अवश्य अपने चरणारविंदोंकी प्रीति रूपी पुरस्कार उपासकोंको प्रदान करेगा। यदि कोई यहशंका करे कि सूर्य जड़ है, जड़की उपासनासे क्या लाभ? तो मैं उनसे यह कहता हूं कि जिस पुरुषके नेत्रकी छवि वर्णन कीगई है वह नेत्रभी जड़ है, पर उस नेत्रकी स्तुति करनेसे स्वयं नेत्र तो कुछ नहीं करसकता पर नेत्रवाला उसे अवश्य पारितोषिक देवेगा। इसीप्रकार सूर्यकी उपासना करनेसे यदि सूर्य कुछ न भी करसके तथापि वह जगदीश्वर जिसका यह सूर्य नेत्र है अवश्य फल देवेहीगा इसीप्रकार और भी भिन्न २ अवयवोंकी उपासना करनेसे अवयववालेकी

ही प्रसन्नता होती है, इसीकारण उस परब्रह्म जगदीश्वर के भिन्न २ अ॰वयवों की अर्थात् उसके नेत्र सूर्यकी, उसके प्राण वायुकी, उसके मुख अग्नि की, उसके मन चन्द्रमा की उपासनासे उसीकी प्रसन्नता होती है (सर्वदेवनमस्कारः केशवंप्रतिगच्छति) और यही एक मुख्य कारण है कि सनातनधर्मवाले (एक छोटी दूर्वासे लेकर बड़े २ पर्वत औ समुद्रों तक नमस्कार करते हैं) इस विराट्मे कोई ऐसी वस्तु नही है जिसको सनातनधर्मावलम्बी मस्तक न झुकाते हों । देखिये वेदने सवमें बूह्मसत्ता को व्यापक जानकर नमस्कार किया है । शु॰ यजुर्वेद अध्याय १६ को देखिये—

नमो दुन्दुभ्यायचाहनन्यायच॰ मंत्र ३५

नमः पथ्यायच नीप्याय च
सरस्याय च नादेयाय च } मंत्र ३७

नमः कूप्यायचावट्यायच नमो वीध्रायचातप्यायच नमो मेघ्यायच विद्युत्यायच नमो वर्ष्यायचावर्ष्याँयच ॥ मंत्र ३८. अर्थात् दुन्दुभि (नगाडा) में, उसके (आहनन) दण्डमें, पथमें, वृक्षोंमें, सरोवरोंमें, नदियोंमें, कूपके जलमें, (अवट) गर्तोंके जलमें, (वीध्र) निर्म्मल आकाशमें, आतप (धूप) मे, मेघके जलमें, विद्युतमें, वर्षाके जलमें, (अवर्ष्याय) नही वर्षेहुए जल अर्थात् सागरोंके जलमें व्यापक बूह्मसत्ताको (नमः) नमस्कार होवे । अब आप रुद्राध्यायके इन तीन मंत्रोंमें देखरहे है कि वेदने सब वस्तुओंको नमस्कार किया है, यह क्या है ? विराट्के अङ्गोंको मस्तक झुकना है, और सर्वत्र बूह्मसत्ताको व्यापक समझ उसकी उपासना करनी है । अन्य मतावलम्बी सनातनधर्मीके इस आचरणको मूर्खता समझते है, पर उनको यह निश्चय कर जानना चाहिये कि यह सनातनधर्मियोंकी मूर्खता नहीं है, वरु सनातनधर्मियों का यह आचरण इसबातको सिद्ध करता है कि पृथिवीम-

एटलमें यदि कोई पूर्ण और उत्तमधर्म है तो यह सनातनधर्मही है । एक तो सनातनधर्मवाले विराड्का ही अङ्ग समझकर इनकी पूजा करते हैं और दूसरे एक २ धाम पत्तीमें उसब्रह्मसत्ताको व्यापक जानते हैं। हमारी श्रुतियों द्वारा ये बातें उपदेश कीहुई हैं कि, इस विराट्की एक २ छोटी वस्तुमें भी उस ब्रह्मसत्ताको व्यापक जानो ! जैसा कि उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतुको उपदेश किया है । जिससमय श्वेतकेतुने अपने पिता उद्दालक से जाकर यह प्रश्न किया है कि हे पितः ! यह महासूक्ष्म ब्रह्मसत्ता इन स्थूलपदार्थोंमें किसप्रकार व्यापक है सो मुझे बताओ ! तब उद्दालकने कहा कि हे बेटा ! उस महासूक्ष्म ब्रह्मसत्ताकी व्यापकता मैं तुझे सुनाऊं अथवा प्रत्यक्ष देखाऊं तब श्वेतकेतुने कहा यदि आप प्रत्यक्ष देखावें तो इससे उत्तम और क्या है ? तब पिताने कहा कि—

ॐ न्यग्रोधफलमत्र आहरेतीदं भगव इति भिन्धीति भिन्नं भगव इति किमत्रपश्यसीत्याख्य इवेमाधाना भगव इति आसामंगैकांभिन्धीति भिन्नाभगव इति किमत्रपश्यसीति किञ्चन न भगव इति । छा० उत्तरार्द्ध० प्रपा० ६ खण्ड १२ श्रुति १

हे बेटा ! एक न्यग्रोध (वड) का फल लेआ ! इसप्रकार जब पिताने कहा, तब पुत्रने फल लाकर कहा कि हे भगवन् ! फल लेआया, पिताने कहा कि इसफलको तोड़ ! तब उसने तोड़कर कहा कि, हे भगवन् ! तोड़दिया । तब पिताने कहा इसमें क्या देखता है ? पुत्रने उत्तर दिया, इसमें छोटे २ बीजोंको देखता हूं । पिताने कहा इनमेंसे एक बीजको तोड़ ! तब पुत्रने तोड़कर कहा हे भगवन् ! तोडदिया । पिताने कहा इस में क्या देखता है ? पुत्रने कहा मैं कुछभी नहीं देखता । तब पिताने कहा

तꣳ होवाच यंवै सौम्येतमणिमानं ननिभालयस एतस्य वै सौम्येषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोध ति-

-छति॥ छा० उत्तरार्द्ध प्रपा० ६ खण्ड १२ श्रुति २

अर्थात् हे बेटा तू इस टूटेहुए बीजमें इसवृक्षके कारणभूत महासूक्ष्मसत्ताको क्या नहीं देखता ? सो महासूक्ष्मसत्ता इसीमें है जिससे यह सम्पूर्ण वृक्ष उत्पन्न होकर खड़ा है। पुत्रने कहा हे पितः! मैं तो कुछभी नहीं देखता, पिताने कहा बेटा! जो कोई विद्यमान वस्तु नेत्रसे उपलभ्यमान न होवे उसे प्रकारान्तरसे उपलभ्य करते हैं। यदि तुझको इस बीजके भीतर ब्रह्मसत्ता नेत्रद्वारा उपलभ्यमान नहीं होता तो ले मैं तुझे प्रकारान्तरसे देखाता हूं।

ॐ लवणमेतदुदकेऽवधायाथा मा प्रातरुपसीदथा इति स ह तथा चकार तꣳ होवाच तद्दोषालवण उदकेअवधाअङ्गतदाहरेति तद्भावमवमृश्य न विवेद यथा विलीनमेवाङ्ग। छां० प्रपा० ६ खण्ड १३ श्रुति १

अर्थात् ले! इस नमककी डलीको घड़ेमे छोड़दे और रातभर इस की रक्षा करके प्रातःकाल मेरे पास लेआ। देख! इसडलीको कोई न लेजावे! श्वेतकेतुने पिताकी आज्ञानुसारही किया, प्रातःकाल उसघड़े को लेआया, पिताने कहा इसमेंसे उस लवणकी डलीको निकालकर मुझे दे। उसने उसमें हाथ डालकर सर्वत्र देखा पर वह डली हाथ न आई, पिताने कहा तू नहीं जानता इसमें वह लवणकी डली लय होगई है, नेत्रसे वह डली देखी नहीं जाती, पर देख मै तुझे प्राकारान्तरसे देखलाता हूं—

ॐ अस्यान्तादाचमेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचमेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचमेति कथमिति लवणमित्यभिप्राशेनदथ मोपसीदथा इति तद्धतथाचकार तच्छश्वत्सम्वर्त्तते। तꣳहोवाच

वावकिल सत्सौम्य न निभालयसेऽत्रैवकिलेति ॥

छां० उ० प्रपा० ६, खण्ड १३, श्रुति २

अर्थात् इस जलके ऊपरसे थोड़ासा जल लेकर आचमन कर फिर कह क्या है ? उसने आचमन कर कहा लवण है, फिर पिताने कहा इसके मध्यसे आचमनकर कह क्या है ? पुत्रने आचमनकर कहा लवण है। फिर पिताने कहा इसके नीचेसे आचमनकर कह इसमें क्या है ? उसने आचमनकर कहा लवण है। तब पिताने कहा अब तू जलको चाख मेरे पास आ! उसने पिताके सामने जाकर कहा कि, हे पितः! यह लवण इस जलमें वर्त्तमान होरहा है। पिताने कहा हे बेटा! जैसे यह लवण इस जलमें वर्त्तमान होरहा है पर इन आखोंसे देखा नहीं जाता, जिह्वाद्वारा जाना जाता है, इसीप्रकार वह महासूक्ष्म ब्रह्मसत्ता इस छोटे बीजमें वर्त्तमान है पर इन आखोंसे देखी नहींजाती, ज्ञानके चक्षुसे देखीजाती है। इसी अत्यन्त सूक्ष्मसत्ताके बलसे यह बहुत बड़ा बड़का बृक्ष खड़ा है ॥

प्यारे सभासदो! इसीप्रकार इस विराड्की छोटी २ वस्तुओंमें भी वह ब्रह्मसत्ता सूक्ष्मरूपसे व्यापरही है, जिसे हम सनातनधर्मावलम्बी बारम्बार नमस्कार करते हैं। अब कहिये क्या यह हमारी मूर्खता है वा सिद्धान्त है ? यही हमारी साकारउपासना है, क्योंकि "सर्वं खल्विदं ब्रह्म०"। "सदिदं सर्वं०"। "चिदिदं सर्वं०"। "पुरुष एवेदꣳ सर्वम्०"। "ब्रह्मैवेदꣳ सर्वम्०"। इत्यादि २ हमारे धर्मका सिद्धान्त है। अन्य धर्मावलम्बियोंको स्मरण रहे कि परमात्माकी साकार-विभूति अर्थात् इस विराट्को पूर्ण एकस्वरूप करके अथवा उसके भिन्न २ अङ्गोंको बिलग २ उपासना करके परमात्मा तक पहुंचनेको **साकारउपासना** कहते हैं! इनमें केवल इतना अन्तर है कि, सम्पूर्ण विराट्को एकमूर्त्ति करके उपासना करना प्रथम श्रेणीकी **साकारउपासना** है, और इसके भिन्न २ अङ्गोंकी उपासना द्वितीय श्रेणीकी **साकारउपासना** कहीजाती है। कोई बुद्धिमान चाहे इस साकारउपासनाकी कितनीभी श्रेणियां बनाले

पर हैं वे सब साकारउपासना । इतने कहनेपरभी यदि किसी विद्वानको यह शंका हो कि सम्पूर्ण विराट् अर्थात् वैश्वानरकी उपासना तो हमलोग मानते है, क्योंकि वेदोंमें औ उपनिषदोंमें यह उपासना देखीजाती है पर इनके भिन्न अङ्गोंकी अर्थात् सूर्य, वायु, अग्नि इत्यादिकी उपासना नही मानते, तो देखिये मै श्रुतिके प्रमाण देकर विराट्के अवयवोकी उपासना सिद्ध करदेता हूं। सुनिये—छान्दोग्योपनिषद् उ० प्र० ५ में पूर्णप्रकार इन उपासनाओंका वर्णन कियागया है और देखलायागया है कि पूर्वके विद्वानों और महर्षियोंने भी विराट्के अङ्गोंकी उपासनाकी है । महाश्रोत्रिय उपमन्युके पुत्र प्राचीनशाल, पुलुषके पुत्र सत्ययज्ञ, भाल्लवीके पुत्र इन्द्रद्युमन, शर्कराक्ष्यके पुत्र जन, अश्वतराश्वके पुत्र बुडिल । ये पांचों विराट् के भिन्न २ अङ्गोंकी उपासना करनेवाले थे । एकसमय अकस्मात् ये पांचों श्रीगङ्गाजीके तटपर स्नानके निमित्त एकत्र होगये और स्नानोत्तर अपनी २ उपासनामें लगगये । पूजन ध्यान इत्यादि समाप्त करनेके पश्चात् विराट्की उपासनाके विषय अपने २ ग्रन्थका पाठ करने लगगये, पर इन पांचोंके पाठमें भिन्नता होनेके कारण एकने दूसरेसे उनकी उपासना पूछी तो प्राचीनशाल ने कहा कि मैं द्युलोककी उपासना करता हूं । सत्ययज्ञने कहा मै आदित्य (सूर्यदेव) की उपासना करता हूं । इन्द्रद्युम्नने कहा मै वायुकी उपासना करता हूं । जनने कहा मै आकाश अर्थात् अन्तरिक्षलोककी उपासना करता हूं । बुडिलने कहा मैं जलकी उपासना करता हूं । परस्पर इतनी बातें करके सबके सब विचारने लगे कि इन-पांचो प्रकारके उपास्योंमें मुख्य औ श्रेष्ठ कौन है? जिसको ब्रह्म वा आत्मा कहते हैं । पाचोंने अपनी उपासनाको श्रेष्ठ कहकर अपने २ उपास्यको ब्रह्म औ आत्मा कहने लगे पर किसीको किसीके कहनेसे कुछभी सन्तोष नही हुआ । तब पांचोंने विचारा कि इससमय ब्रह्मविद्या मे निपुण उद्दालक नामके एक महात्मा हैं उनके पास चलकर यहविद्या पूछनी चाहिये, वह न्यायकरके जो मुख्य होगा वर्णन करेंगे । ऐसा विचार पाचों उद्दा-

लकके पास पहुंचे । उनको आते देख उद्दालकने यो विचारा कि—

स ह सम्पादयाञ्चकार प्रष्टयन्तिमामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिवप्रतिपत्स्येहन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति । ३ । तान्होवाचाश्वपतिर्वैभगवन्तोऽयंकैकेयः सम्प्रतीममात्मानंवैश्वानरमध्येति तꣳहन्ताभ्यागच्छामेति तꣳहाभ्याजग्मुः ।

(छा० उत्तरार्द्ध मपा० ५ वैश्वानरविद्या श्रुति ३. ४.)

अर्थात् उद्दालकने विचारा कि ये पांचों महाशाला महाश्रोत्रिया मेरे पास आकर वैश्वानरविद्या पूछेंगे सो मै जानता नहीं इसलिये इनको किसी दूसरेके पास भेजना चाहिये और इनके साथ आपभी चलना । ऐसा विचारकर उनके आनेपर उनका सत्कारादि करनेके पश्चात् उनके आनेका कारण पूछा । उन्होंने कहसुनाया । तव उद्दालकने कहा कि हे महाभागो ! केकय देशके केकय राजाका पुत्र अश्वपति इस वैश्वानर विद्याको पूर्णप्रकार जानता है, आपलोग उसके पास चलिये मैं भी चलता हूं । ऐसा विचार सबके सब महाराज अश्वपतिके पास चले और वहा पहुंचकर राजासे इस वैश्वानरविद्याको पूछा तव राजाने कहा कि—

ॐ तान् होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्तास्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे तान् हानुपनीयेवैतदुवाच । (श्रुति ७.)

अर्थात् राजाने कहा कि इसप्रश्नका उत्तर मै आपको कल प्रातःकाल दूंगा । ऐसी आज्ञा पाकर दूसरेदिन हाथोंमे सामिधा* लियेहुए पाचो श्रोत्रिय राजाके समीप पहुंचे, तव राजाने उनको विना शिष्य कियेही पांचो

---

* हमारे सनातनधर्ममें यह शिष्टाचार चलाआता है कि जव शिष्य गुरुके समीप जाता है तो हाथमें समिधा लेकर जाता है ॥

से विलग २ कर उनकी २ उपासना पूछी, तव उन्होंने अपनी २ उपासना सूर्य, वायु इत्यादिकी जिसप्रकार मैं पहले कहआया हूं वर्णनकी । प्रमाण श्रुति-(छां० उत्तर प्रपाठ० ५ खण्ड २, ३, ४, ५, ६)

ॐ औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्स इति दिवमेव भगवोराजन्निति ॥

ॐ अथहोवाच सत्ययज्ञंपौलुषिं प्राचीनयोग्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवोराजन्निति ॥

ॐ अथहोवाचेन्द्रद्युम्नंभालवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इति वायुमेव भगवोराजान्निति ॥

ॐ अथहोवाच जनꣳ शार्कराक्ष्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्याकाशमेव भगवोराजान्निति ॥

ॐ अथहो वाच बुडिलमाश्वतराश्विं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यपएव भगवोराजन्निति ॥

अर्थात् राजाने पहले पूछा हे उपमन्युके पुत्र प्राचीनशाल ! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो ? प्राचीनशालने उत्तरदिया, हे पूजाकरनेके योग्य राजन् ! मै दिवलोककी उपासना करता हूं । फिर राजाने दूसरेसे पूछा कि, हे पुलुषिके पुत्र सत्ययज्ञ ! तुमतो कहो किसआत्माकी उपासना करते हो ? उन्होने उत्तर दिया कि, हे पूज्य राजन् ! मै आदित्य (सूर्य) की पूजा करता हूं। फिर राजाने तीसरे भालवीके पुत्र चन्द्रद्युम्नसे पूछा कि हे वैयाघ्रपद्य तुम किस आत्माकी उपासना करते हो ? तब उन्होंने उत्तर दिया कि, हे पूजनीय राजन् ! मै वायुकी उपासना करता हूं । तब राजाने चौथे शर्कराक्षके पुत्र जनसे पूछा कि, तुम किस आत्माकी उपासना करते हो ? उन्होंने उत्तर दिया कि, हे भगवन् ! मै आकाशकी उपासना करता हूं। फिर

राजाने पाचवे अश्वतराश्वके पुत्र लुडिलसे पूछा कि, हे वैयाघ्रपद्य ! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो? उन्होने उत्तर दिया कि, हे भगवन् ! मैं जलकी उपासना करता हूं । एवंप्रकार इनपाचोंसे पूछनेके पश्चात् राजाने विचारा कि यह जो छठवा पुरुष उद्दालक है, जो इन पाचोको साथ लाया है, इससे भी पूछना चाहिये देखोतो सही यह क्या वतलता है? तव ऐसा विचार राजाने छठवे उद्दालकसे भी वैसाही पूछा तव उन्होने कहा कि, हे भगवन्! मैं पृथिवीको पूजता हूं । ऐसे सबोकी वात सुनकर राजाने कहा कि, आप लोग विराट् पुरुषके इन भिन्न २ अवयवोकी उपासना करते हैं इसलिये आपलोगोके कुलमे पुत्र, पौत्र, अन्न, वस्त्र, अश्व, हस्ति, रथ, तुष्टि, पुष्टि औरभी नानाप्रकारके सुख आपलोगोंको प्राप्त है । फिर राजाने अपने मन मे विचारा कि, ये सव उत्तमकुलमें उत्पन्न महाश्रोत्रिय है, अव बहुतदिनो से उपासना करते२ परिपक्व होगये अव इनको सम्पूर्ण विराड् अर्थात् वैश्वानर का उपदेश करना चाहिये, जिसके ये सव अवयव है । ऐसा विचार राजा वोला कि, हे प्राचीनशाल ! तुम जिस दिवलोककी उपासना करते हो वह उस परमपुरुष विराड्का मस्तक है "शीर्ष्णोद्यौः समवर्त्तत" और यह आदित्य उस महाविराड्का नेत्र है " चक्षोः सूर्योऽजायत ', और यह वायु उसमहापुरुष वैश्वानरका प्राण है " प्राणाद्वायुरजायत" यह आकाश अर्थात् अन्तरिक्षलोक उसकी नाभि है " नाभ्याआसीद-न्तरिक्षं " जल उसके मुख या शरीरका पसीना है । पृथिवी चरण है " पृथिव्येवपादौ " अब आपलोग बहुतदिनों तक इन अवयवोंकी उपासना करते २ इनके अवयवी की उपासनाके अधिकारी होगये हैं, सो अव मैं आपको उस अवयवीका अर्थात् सम्पूर्ण विराड्का उपदेश करता हूं (राजाने किसप्रकार उपदेश किया सो छांदोग्योपनिषद् पंचम प्रपाठक वैश्वानरविद्यामें देखलेना)

यदि मेरे श्रोताओंको भी इस विद्याके अभ्यासद्वारा विराड्की उपासना की इच्छा होतो मेरी गुप्तमण्डलीमें आकर सीखजावेंगे क्योंकि यह स्थान सीखनेका नहीं है । यह तो केवल व्याख्यानका स्थान है

प्यारे श्रोताओ ! इन छादोग्योपनिपद्की श्रुतियोंसे केवल मुझको यह देखलाना था कि, श्रुतियोंमे विराड्के भिन्न २ अवयवोंकी उपासना का वर्णन है और पूर्वके महात्माओंने भी इन सूर्य, वायु इत्यादिकी उपासनाकी है, क्योकि वेद कहता है कि—

ॐ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।
तदेव शुक्रन्तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

अब मैं इस साकार उपासना को पुनः विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं श्रवण कीजिये । और एकबार सब मिल बोलिये ।

हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे !
हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे !

पहले एक दृष्टान्त देता हूं इसको एकाग्रचित्त हो श्रवण कीजिये, इस दृष्टान्तसे आगे एक बहुत उत्तम फल निकलेगा इसलिये इसको रुचि पूर्वक श्रवण कीजिये ।

एक अद्भुतनगर है जिसकी चारो ओर मनोहर पुष्पवाटिकाये लगी हैं जिनमे चित्र विचित्र हरे, नीले, स्वेत, अरुण भिन्न २ रंगोंके सुगन्धित पुष्प खिलरहे है । चारो ओर अमराइयोकी अद्भुत शोभा है, जिनकी डालियो पर कोकिल, कीर, पपीहे नानाप्रकारके पक्षी बैठे गानकररहे हैं जहा शीतल, मन्द, सुगन्ध, वायु चलरहा है । मध्य नगरमे अति सुन्दर निर्मल जलसे सुशोभित एक सरोवर है, जिसमे भिन्न २ रंगोंके कमल प्रफुल्लित होरहे हैं, जिसकी एकओर कुछ आगे बढ़कर एक अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ चौराहा मिलता है जहासे पूर्वकी ओर जानेवाले मार्गपर कुछ आगे निकलजाने से एक चौपड़बाजार बसीहुई देखपड़ती है, जिसकी दूकानो में अनेक प्रकारकी वस्तु सुशोभित होरही है, अर्थात् हीरे, लाल, मोती, मणि, माणिक, पन्ना, पुखराज, पिरोजा, नीलम, कमखाब, बाफता, जामदानी, मलमल, शाल दुशाले, सलमे, सितारे, लड्डू, पेड़े, जलेबी, कलाकन्द, बताशे, इतर, गुलाब, चोवा, चन्दन, अगर, अभ्रक, गुलाल

सजे सजाये धरे हैं, थोड़ी दूर आगे बढ़नेसे एक सातमहलकी अटारी देखपड़ती है, जिसमें सोने चांदीके रत्नजटित खम्भ लगे हैं, भीतर भिन्न२ प्रकारके पर्यंक (पलंग) रत्नजटित दूधके फेन समान उज्ज्वल बिछावनसे सुशोभित हैं, जिनके देखनेही से आंखोंमें नींद दौड़ी चलीआती है, पर आश्चर्य तो यह है कि इस नगरमें मनुष्य एकभी नहीं देखपड़ता। अकस्मात् एक सुन्दरपुरुष मार्ग भूलकर इस अद्भुतनगरमें जापडा, इसमें तो तनकभी सन्देह नहींहै कि, इनसब वस्तुओंने अपनी मनोहरताईसे उस पुरुषके चित्तको अवश्य अपनी ओर खींचलिया, पर ये सब वस्तु जड़ थीं, मनुष्यके लिये सजातीय नहीं थीं विजातीय थीं, इसलिये देखते २ थोड़ी देरमें इनवस्तुओंसे उस मनुष्यको उदासीनता होगई, क्योंकि वे सब जड़थीं उस मनुष्यसे बातचीत नहीं करसकतीथीं। पुष्प यह नहीं कहसकते थे कि तुम हमारा गन्ध लो, हम तुमको गन्ध प्रदान करनेको यहां खिले हुए हैं। वस्त्र यह नहीं कहसकते थे कि तुम हमें पहनो। शय्या यह नहीं कहसकती थी कि तुम मुझपर शयन करो, इसलिये वह मनुष्य उदासीन होकर उन सुन्दर पलंगोंके समीप पहुंच वहांसे लौट चला। उदासीन होनेके कारण अब वह किसी वस्तुकी ओर अधिक चित्त लगाकर नहीं देखता। जैसे वह पुरुष लौटताहुआ एक सरोवर के निकट पहुंचा कि इतनेमें उस सरोवरकी दाहिनी ओरसे एक सुरैली ध्वनि कानमें आई, उसकी आहट पा उसी ओर चला, आगे बढकर क्या देखता है कि, एक विशाल बरगदका वृक्ष है, जिसमें एक कंचनका हिंडोला लगाहुआ है, उसपर एक सुन्दर बालक राजकुमार, जिसका मुखारविन्द सूर्यके सदृश चमकरहा है, मधुर ध्वनिसे यों गान कररहा है (आओ आओ जी इधरके आनेवाले)। अब वह मनुष्य उसराजकुमारको देखकर एकबारगी उसके प्रेममें विह्वल होगया और उसका चित्त उसकी ओर प्रेमसे आकर्षित होकर ऐसा जाजुड़ा कि फिर हटाये नहीं हटा। उस राजकुमारने पूछा तू क्या चाहता है? उसने कहा मैं तुम्हारे पास रहकर तुम्हारी सेवा

करना चाहता हूं, तुम मुझे अपने साथ रखो । राजकुमारने कहा कि, तुम मेरे पास कैसे रहसक्ते हो ? विकरालवदन नाम राक्षस यहां रहता है वह सबको खाजाता है, तुमको भी खाजावेगा । उस पुरुषने कहा कि जो कोई इस अद्भुतनगरके मिष्टान्नको खाता होगा और इसके वस्त्र और आभूषणोंको पहनता होगा, उसे वह खाजाता होगा, मुझे तो इनसे कुछ काम नहीं है, मैं तो तुमको चाहता हूं, अब चाहे सहस्रों राक्षस क्यों न मुझे खाजावें, पर मैं तुमको छोड़ कहीं नहीं जाता ।

प्यारे सभासदो ! इस दृष्टान्तसे यह प्रत्यक्ष देखपड़ता है कि, सजातीयको सजातीयकी ओर जितना चित्तका आकर्षण होता है उतना विजातीयकी ओर नहीं होता ।

کند ہمجنس با ہمجنس پرواز × کبوتر با کبوتر باز با باز

(कुनद हमजिन्स बा हमजिन्स परवाज़ । कबूतर बा कबूतर बाज़ बा बाज़) कबूतर कबूतरके साथ और बाज़ बाज़के साथ उड़ता है अर्थात् हमजिन्स (सजातीय) हमजिन्स सजातीयके साथ उड़ता है । कबूतर बाज़के साथ और बाज़ कबूतरके साथ नहीं उड़ता ! मुख्य अभिप्राय यह है कि विजातीयमे स्नेह भी हो तो इतना नहीं होसकता जितना सजातीयसे ।

प्यारे सभासदो ! इसीकारण उसपरमात्माने विचारा कि, मैंने अपनी सत्ताको मनुष्यकी उपासनाके लिये सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु इत्यादि अनेक साकार रूपोंमे प्रगट करदिया पर सम्भव है कि विजातीय होनेके कारण बहुतेरे मनुष्योंका चित्त इसमें न लगे, समय २ पर उदासीन हो जावे, तो इनकी उपासनाकी सिद्धिमें विलम्ब होगा, इसलिये यदि इनका सजातीय साकाररूप होकर प्रगट होजाऊं तो इनका चित्त एकबारगी उस मेरेरूपकी ओर अवश्य आकर्षित होगा और उस रूपमे पूर्ण प्रेम होनेके कारण इनकी उपासनाकीसिद्धि भी अवश्य होगी। ऐसा विचार वह कृपासागर मनुष्यका सजातीय बनकर अर्थात् राम कृष्णका अवतार लेकर

प्रगट होगया, और यह आज्ञादी कि, तुम मेरे इसीरूपमें स्नेह करो इसी रूपकी उपासना द्वारा मुझमें प्राप्त होगे। देखिये श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वय अपने मुखारविन्दसे कहते हैं

सर्वगुह्यतमंभूयः शृणुमेपरमंवचः ।
इष्टोऽसिमेदृढमिति ततोवक्ष्यामितेहितम् ॥
मन्मनाभवमद्भक्तो मद्याजीमांनमस्कुरु ।
मामेवैष्यसिसत्यते प्रतिजानेप्रियोऽसिमे ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकंशरणंव्रज ।
अहंत्वासर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामिमाशुच ॥

अर्थात् हे पार्थ ! मैंने तेरे कल्याण निमित्त पहले सांख्ययोग उपदेश किया, फिर उससे भी गुह्य ज्ञानयोग उपदेश किया, पश्चात् उससे भी गुह्य भक्तियोग उपदेश किया, अब मैं तेरे कल्याण निमित्त सब योगोंका सारभूत गुह्यतम अर्थात् अत्यन्त गुप्त रहस्य फिर उपदेश करता हूं सो तू मेरे इस उत्तम वचनको सुन। तू मेरा परम प्रिय है यह निश्चय है, इसलिये मै तेरे हितकी बात कहता हूं। (मन्मना भव) मेरे इस स्वरूपमे जिसे तू अपने सन्मुख देखता है, अर्थात् मोरमुकुट, कुण्डल, पीताम्बर, औा वनमाला इत्यादि धारणकिये श्याममूर्त्ति, किशोर अवस्था, मायामनुष्यरूप, तेरे रथपर रथवानी करतेहुए देखता है, इसीरूपमें दृढ़ होकर सदा अपनामन लगा, अर्थात् इस मायामनुष्यरूपकी उपासना कर। प्रत्येक वस्तुओंमें मुझहीको देख। प्रत्येक शब्दोंमे मेरेहीको श्रवण कर। अर्थात् सब वस्तुओंमे मैं ही गुप्तरूपसे बोलरहा हूं, ऐसा अनुभवकर। फिर तू (मद्भक्तः) मेरा भक्त हो, अर्थात् परमप्रेम करके जोअनुरागरूप अनुरक्ति है वही भक्ति है सो तू मेरी भक्ति कर। यदि तुझको यह शंका हो कि मैं कौन यत्न करके भक्ति प्राप्त करूं? तो तू (मद्याजी) सदा मेरेही इसी मायामनुष्यरूपकी शुश्रूषा पूजा इत्यादि कर। इसीमे तेरा अनुराग बढ़ते २ तुझे मेरे इस रूपमें परमप्रेम उत्पन्न होगा। यदि यहशंका हो कि शुश्रूषा

औ पूजाके लिये बहुतसी सामग्रियोंकी आवश्यकता है सो यदि समय पर उपस्थित नहीं तो कैसे करूं ? तो (मां नमस्कुरु) केवल मेरेको नमस्कार करले । अर्थात् नम्रतापूर्वक शरीर, मन, वाणीसे इसी रूपको मस्तक झुका आराधना कर । ऐसे करते २ तू (मामेवैष्यसि) मेरे परमानन्दस्वरूप को प्राप्त होगा (सत्यंप्रतिजाने) मैं तेरे समीप यह प्रतिज्ञा करता हूं क्योंकि (प्रियोऽसिमे) तू मेरा प्रिय है । ६५ । फिर श्यामसुन्दर इसी प्रतिज्ञाको दृढ़ करते है कि (सर्वधर्मान् * परित्यज्य) सब धर्मोंको छोड़ अर्थात् सब कर्मोंके फलोंको मेरेमे छोड़ केवल मेरेशरण आजा ! मै तुझ-को सब पापोंसे मोक्ष करदूंगा । तू किसी प्रकारका शोच मत कर । इन वाक्योंसे सिद्ध हुआ कि श्यामसुन्दरने केवल उपासनाको शीघ्र सिद्ध होने के लिये मायामनुष्यरूप धारण कर अवतार लिया है ।

प्यारे सभासदो ! क्या हिन्दू ? क्या मुसलमान ? क्या ईसाई ? क्या यहूदी ? क्या नानकशाही ? क्या दरियादासी ? उदासी ? कुड़ापन्थी ? दयानन्दी ? क्यावृद्ध ? क्या युवा ? क्या स्त्री ? क्या पुरुष ? कोई क्यो न हो सबकी मानोवृत्ति सुन्दरताईकी ओर खिंचजाती है। यह सुन्दरताई क्या है ? उस महाप्रभुका तेज है । स्वयंप्रकाश है । जैसे अग्निको टेढी, सीधी, सड़ी, गली, सूखी, भींगी कैसी भी लकड़ीमे लगादीजिये वह प्रकाश करेहीगा, इसी प्रकार, उस परब्रह्मके स्वयंप्रकाशको चाहे जड़ चेतन किसीमें ल-गादीजिये चित्तको आकर्षण करेहीगा, पर विजातीयसे सजातीयका आक-र्षण स्वभाविक अधिक होताहै, इसलिये यदि यहीतेज मनुष्यके रूपमें आप-ड़ा तो और भी मानों स्वर्णमे सुगन्ध होगया । इसमे तो सन्देहही नहीं है कि किसीभी वस्तुकी सुन्दरताई चित्तको खींचती है, पर मनुष्यकेलिये मनु-ष्यहीकी सुन्दरताई अधिक आकर्षणकरनेवाली है, और प्रेमकीबढ़ानेवालीहै, इसीकारण उस महाप्रभु दयासागरने अन्य सब वस्तुओंमे सुन्दरताई दे-

---

* (सर्वधर्मान्परित्यज्य०) इस श्लोकका अर्थ सर्व शंकाओंको निवृत्त करतेहुए पूर्णरूपसे भक्तिके व्याख्यानमें देखलेना ।

खलातेहुए अन्तमें हमलोगोंका सजातीय वनकर अर्थात् मायामनुष्यरूप में उस सुन्दरताईको धारणकर प्रगट होगया । इसका वर्णन मैं विधिपूर्वक अवतारके व्याख्यानमें करूंगा और यह देखलाऊगा कि राम, कृष्ण की मूर्त्ति साधारण मनुष्योंकीसी नहीं है । जैसे साधारण मनुष्य माता पिताके रज वीर्यसे उत्पन्न होते है ऐसे इन अवतारोंका जन्म नहीं है । ये तो केवल देखनेमात्र ही साधारण मनुष्योंके समान देखपडते हैं पर हैं यह कुछ और । जैसे आकाशका घन नेत्रोंके सामने नील हो भासता है, जैसे जलके छोटे २ सीकरों पर सूर्यकी किरणोंके घन होनेसे इन्द्रधनुप (पनसोखा) वनजाता है, और मनोहररूप वनकर सुशोभित हो चित्त को आकर्षण करता है, जैसे जागरित अवस्था की स्थूल वस्तु घन होकर स्वप्नमें तदाकार ज्योंकी त्यों भासती हैं, ऐसेही उस परब्रह्मका तेज अर्थात् सुन्दरताई (حسن Beuty) घन होकर राम औ कृष्णकी मूर्त्ति वनगई है । आजकलके नवीन प्रकाशवाले इस गूढ रहस्यको न समझकर इनरूपोंकी उपासनाकी निन्दा करते है । स्वयंपरमात्मा अपनेमुखसे कहता है कि, सव रूपोंमें अधिक मनुष्यकारूप मुझे भाता है । रूपोंमें मनुष्यका रूप मेराही समझो ! यहांतक कि, दूसरे मतवाले भी इस वातको स्वीकार करते है । ईसाइयोंके इंजील (Bible) में भी लिखा है कि—
God created man in his own image (Genesis CH 1 PH 27)
अर्थात् ईश्वरने मनुष्यको अपने आकारके सदृश वनाया, इसलिये उस महाप्रभुने अन्यरूपोकी उपासनासे मनुष्यके लिये मनुष्यरूपकी उपासनाको अर्थात् राम औ कृष्णकी उपासनाको उत्तम और श्रेष्ठ निश्चय किया । यह भी स्मरण रहे कि स्त्री, पुरुप, वाल, वृद्ध, छोटे, वड़े, मूर्ख, विद्वान् सव इस उपासना द्वारा परमपदको प्राप्त होजाते है । कितने सहस्र पतित इनकी उपासना द्वारा भवसागरसे पार होगये है । यद्यपि आज वे मनोहर मूर्त्तियां हमारे नेत्रोंके सामने नहीं हैं तथापि हमलोग आज उनका चित्र कागद पर, पत्थर पर, मिट्टी पर, अथवा अन्य धातुओं पर वनाकर उन-

की लीला और गुणोंकी स्मृति करतेहुए उनके प्रेममें मग्न हो उनहीमें लय होजाते है । किसी प्रेमीका वचन है कि,

हमलिये फिरते है अब तस्वीरे जानां दरबगल ।

प्यारे सभासदो ! मैं आपको अद्भुतनगरका इतिहास कहतेहुए सुनाचुका हूं कि, उस मनुष्यका चित्त और प्रकारके रूपोंमें न लगा, उदासीन हो लौटचला, पर जब झूलेपर राजकुमारकी मूर्त्ति देखी तब ऐसा प्रेममें मग्न होगया कि हटाए नहीं हटा । कहनेका मुख्य अभिप्राय यह है कि प्रेमरसमें प्राण और मन ऐसे लुब्ध होजाते हैं कि, किसी प्रकारके दुख सुखका भान ही नहीं होता । जैसे उस अद्भुतनगरके मनुष्यने राजकुमारसे कहा कि एक या हजार राक्षस मेरे खानेको क्यों न आजावें मै तुमको छोड़ कहीं नहीं जाता । इससे क्या तात्पर्य निकला ? आप समझगये होंगे, अर्थात् प्रेमही एक विशेष रस है जिसमें प्राणी निर्भय हो जाता है, दुख और क्लेशोको सहनकर अपने प्राणप्रियमे मग्न रहता है, महाकालके कालका भी भय नहीं करता। इससे बढ़कर चित्तकी वृत्तियोंके निरोध करनेका उपाय अन्य किसी प्रकारकी उपासनामें नहीं है । देखिये ! भ्रमर कैसे कठोर काष्ट को छेद देता है पर रात्रिको जिस समय कोमल कमलकी पंखरियोमे बन्द होजाता है तब उसकी कोमल पत्तियोंको प्रेमवश नहीं छेदसकता, तहा अपना प्राणखोदेता है, पर छेदन नहीं करता, अर्थात् प्रातःकाल ही हस्ती वहां आकर उन कमलोंको चरने लगते है तब उन कमलोके साथ भ्रमर उनके मुखमें जा नष्ट होजाता है, पर कमलों को नही छेदता । इसी प्रकार इस प्रेमरसमे चित्तवृत्तिया सिमटकर ऐसी एकाग्र होजाती है कि, चंचलताका कही नाममात्र भी नहीं रहता ।

प्यारे सभासदो ! इस प्रेम (Love) के भड़काने कोलिये एक प्रीतमकी मूर्त्ति(تصویر جانان)अवश्य चाहिये, सो प्रीतम मनुष्यरूपसेभिन्न अन्य किसी रूपमे मनुष्यके लिये उत्तम होही नहीं सकता । अन्य रूपोंमेंभी प्रेमरस है, मैं मानता हूं, जैसे बुलबुलको गुलाबके पुष्पमे, भ्रमरको कमलमें,

पतंगको दीपकमें, पर मनुष्यको तो मनुष्यसे ही प्रेम होता है, इसलिये उन दयासागरने इनमनुष्यों पर दयाकर हमारे प्रेमको जगानेके लिये इ-नसान परमप्रेयान् (प्रेष्ठ या प्रीतम) बनकर राम कृष्ण अवतार ले इस भूमिपर हमारेही घरमें प्रगट हो हमसे स्नेहकर अन्तरध्यान होगया और आशा देकर प्रतिज्ञा करगया कि, मेरे इसी मनुष्यरूपमें स्नेह करना मैं तुमको अवश्य मिलूंगा ! प्यारे सभासदो ! आजकलके सूखे हृदयवाले तो तर्क वितर्कके सागरमें डूबे जाते हैं इसरसको क्याजानें ? यहतो उस मज़को ढूंढते हैं जो बिना आकारका होवे । जरा सोचियेतो सही, आकारवालेका बिना आकारवालेसे कैसे मेलमिलाप होसकताहै ? मेरी समझमें नहीं आता । मैं यह नहीं कहता कि, ब्रह्म बिना आकारका नहीं है, अवश्य उसकी एक विभूति निराकार भी है, जो बिना आकार के सर्वत्र देखता है और सबकी सुनता है, पर उसको तो वही पावे जो पहले आप भी निराकारका हो, अर्थात् इन्द्रियोंसे परे हो, शुद्धआत्मा रूप होगया हो, सो मैं आपको पहलेही सुनाचुकाहूं कि, निराकार उपासना के अधिकारी वेही हैं जो प्रपंचसे परे होकर उससे दूरगयेहैं किसीने कहाहै

جو پوچھے گمشدہ کی کوئی جا
کرے گم آپکو تب اسکو پاوے

जो पीछे गुमशुदा के कोई जावे। करे गुम आपको तब उसको पावे।

इसलिये इस मनुष्यरूप साकारउपासनाका आनन्द ही कुछ और है, और सब प्राणियोंके लिये सुलभ है, इस आनन्दको वे क्या जानें जिनको साकार, और निराकारका कुछ बोध ही नहीं है ।

प्यारे सभासदो ! मैं बार २ प्रेम, प्रेमी, प्रेयान् (प्रेष्ठ या प्रीतम) अर्थात् इश्क, आशिक, औ माशूकका वर्णन करता चलाआता हूं, इसलिये मुझको यहभय होरहा है कि, जोलोग गंदी औरमैली बुद्धिके हैं, विषयी हैं, बाजारोंमें वेश्याओंके महलोंकी हवा खानेवाले हैं, वे इनमेरे शुद्धशब्दोंको विषयवाले प्रेम, प्रेमी, प्रीतमके साथ न योजना करदें, ऐसा करनेसे मेरे

सम्पूर्ण व्याख्यानको मिट्टीमें मिलादेंगे, और मुझको भी अपने समान विषयी समझेंगे, क्योंकि (आत्मवत् मन्यते जगत्) इसलिये मैं यहां शुद्ध प्रेमतत्त्वको विषयात्मक प्रेमसे विलगकर देखाता हूं ।

बहुतेरे प्राणी इस प्रेमको विषयात्मक प्रेमके साथ एक करदेते हैं, पर यह स्मरण रहे कि इस शुद्ध प्रेमको विषयात्मक प्रेमकेसाथ एक करके लज्जित न करे, क्योंकि विषयात्मक प्रेममें इन्द्रियोंके सुखादिकी कामना बनी रहती है, और यह शुद्धप्रेम सर्व प्रकारकी कामनाओंसे रहित निरोधरूप है, क्योंकि इसमे किसी प्रकारकी कामनाही नहीं रहती । इस प्रेममें तो चित्तवृत्तियोंका निरोध होजाता है और प्रेमीको परमानन्द लाभ होता है। सुनिये !

हरिणायेविनिर्मुक्ता स्तेमग्नाभवसागरे ।
येनिरुद्धास्तएवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम् ॥

अर्थात् जिनको भगवानने छोड़दियाहै, जिनके महापापोंसे कोपकरके अपने से दूर फेंकदिया है, वही दिनरात भवसागरमे मग्न है, विषयात्मक प्रेममें समयको नष्ट कररहे है, इन्द्रियोके स्वादमे पड़े पचरहे है, पर जिन लोगो पर महाप्रभुने दयाकी है वे संसारी सुख और कामनाओंको त्याग उस श्यामसुन्दरके रूपमे निरुद्ध हो दिन रात आनन्द को प्राप्त होते है। बिना चित्तकी वृत्तियोंके निरोध हुए उपासनाकी सिद्धि नहीं होसकती है। वरु उपासनाका फल ही निरोध है । सभी विद्वान् जानते हैं कि, कर्मसे चित्तकी शुद्धि और उपासनासे एकाग्रता प्राप्त होती है। इसी एकाग्रताको निरोध कहते है, जिसके शीघ्र सिद्ध होनेके लिये ६ प्रकारके निरोध कहे गये है, अर्थात् उसमनमोहनके रूपमें निरोध होनेके ६ भेद है। इसीकारण ६ प्रकारके निरोध है, अर्थात् इनही ६ प्रकारकी भावना ईश्वरमे करनेसे चित्तकी वृत्तिया निरुद्ध होजाती है, जिसको जौन जहासे लाभ होजावे उसके लिये वही उत्तम है। अब मैं आपको उन छवो प्रकारके निरोधों को कहसुनाता हूं सुनिये ।

१. भीतिभावनिरोध २. स्वामिभावनिरोध ३. वात्सल्यभाव निरोध ४. सख्यभावनिरोध ५. कान्तभाव निरोध ६. सर्वभाव-निरोध । अब इनका वर्णन अलग २ करता हूं सो सुनिये ।

१. भीतिभावनिरोध—संसारके दुःखोंसे भयखाकर अथवा इसभयसे कि यदि ईश्वर २ नहीं करूंगा तो अन्नवस्त्र नहीं मिलेंगे, बालबच्चे कल्याण पूर्वक नही रहेंगे, रुपये पैसे नही मिलेंगे, अथवा संसारसाधनमें बहुत क्लेश उठाना पडेगा । ऐसे विचार भगवत्में चित्त लगाना भीतिभावनिरोध कहाजाता है । यहनिरोध सब निरोधोंमें निकृष्टहै, इसको निरोधोमें इसकारण लिखा कि बहुतोंका उद्धार इसीसे देखागया, अर्थात् कोई प्राणी प्रथम इसी भीतिभावनिरोधके द्वारा किसी साधुके शरण होगया किसी प्रतिमाकी पूजा करने लगगया, अथवा रामायण, श्रीमद्भागवत, और गीता इत्यादिका पाठ करने लगगया, वा माला पर भगवत्का नाम जपने लगा फिर धी-रे२ सत्संग होते २ स्वामिभाव, सख्यभाव, इत्यादि किसी एक प्रकारके भाव में प्राप्त होकर उपासनाकी सिद्धि करली, अर्थात् एकाग्रता लाभ कर, सर्वप्रकारकी कामनाओंको परित्याग कर, निष्काम हो, श्यामसुन्दरकी परम प्रीतिका अधिकारी होगया ।

२. स्वामिभावनिरोध—ईश्वरको जगत्का और अपना स्वामी जा-नकर अपनेको उसका दास समझ अहर्निश उसकी सेवा और कैङ्कर्यमें मग्न रहना. पर इसमें भी निष्काम सेवा उत्तम है, क्योंकि जो लोग सेवा करके कुछ अपनी कामना पूर्ण किया चाहते हैं वे व्यापारी हैं, भक्त नहीं है । यदि कामना हो भी तो केवल उस महाप्रभुकी चरणोंकी प्रीति ही की कामना हो, राजभोगादि सुखोंकी कांक्षा हृदयमें कभी न उत्पन्न होने पावे । सब कामनाओंसे रहित होकर अपनेको उसका दास जान उसके कैङ्कर्यमे मग्न रहना । रामानुजसम्प्रदायके आचारियोंमें विशेषकर इसीभाव की उपासना देखीजाती है । सब बुद्धिमान जानते हैं कि दास नाम किं-करका है, जैसे चाकर अपने स्वामीको दिनरात स्मरण रखता है ऐसेही

भगवत्के स्वरूपका स्मरण रखना और चित्त लगा उसकी सेवामें मग्न रहना चाहिये, इस सेवाके प्रभावसे उस पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघनकी समीपता प्राप्त होती है । जिस प्राणीका मन सदा भगवत्चरणोंकी सेवा में लगारहता है वह इस संसारसमुद्रको गोपदके समान तरजाता है । सो सेवा ऐसी होनीचाहिये कि, कोई अङ्ग सेवासे रहित न होवे । जिसकी यह सेवा परिणामको पहुंचजाती है वही सेवक सामीप्यमुक्तिवाला कहा जाता है । साधनकी रीति यह है कि जितने कार्य एक प्रभातसे दूसरे प्रभात तक किये जावें वे सब भगवत्सेवाके सम्बन्धमें समझेजावें । जैसे स्नान, वस्त्रधारण, भोजन इत्यादि जो कुछ कार्य हो ऐसा न समझे कि मै अपने शरीरके लिये करता हूं वरु ऐसा समझे कि सब उसीके लिये करता हूं । यहां तक कि अपने शरीरको भी भूलजावे। जैसे भोजनके समय जब भोजनके पदार्थ सामने आवें तो आंखे बन्दकर भोजनके सर्व पदार्थ भगवत् के सामने भोजनके लिये अपर्ण करे और ऐसा ध्यान करे कि, श्यामसुन्दरको भोजन करारहा हूं, पश्चात् अपने समीप रखेहुए जलसे भगवान को ध्यानमें आचमन करावे, तब आप उसजूठनको पावे। इसीप्रकार शयन के समय बिछावनके समीप जाकर प्रथम यहध्यान करे कि, इस शय्यापर श्यामसुन्दरको शयन करा उनके चरणोको दबारहा हूं । ऐसा ध्यान करते करते आप उस शय्याके पैतानेकी ओर एक किनारे चरण चापता हुआ सोजावे, जैसे श्री शेषभगवान्ने लक्ष्मणका अवतारले रघुनाथजीकी सेवा देखलाई है, जिसके विषय गोस्वामी तुलसीदासजी रामायण बालकाण्ड में लिखते हैं कि "पौढे सिरधरि पदजलजाता" अर्थात् श्री लक्ष्मणजी रघुनाथजीके शयनमें उनका चरण चापते २ उन चरणोंको अपने मस्तक पर रखकर सोगये । जैसे श्रीलक्ष्मीजी क्षीरसागरमें सदा विष्णु भगवानके चरणोंकी सेवा कररही हैं । जब अपनी निद्रा टूटजावे तो ऐसा ध्यान करे कि जबतक मै अपनी शारीरिक क्रिया शौच इत्यादि से हो आऊं तबतक भगवान् शयन ही मे रहें। फिर शौच इत्यादि से निवृत्त हो स्वच्छ

होकर भगवत्‌को शयनमें जगावे और अपने संग दन्तधावन करा उनके जूठे दतवन से आप दन्तधावन करे, फिर स्नान के पहले ध्यान में सुन्दर सुगंध मिश्रित तैल इत्यादि का लेपन कर पहले भगवत्‌को स्नान करा ऐसा अनुभव करे कि, यह जल भगवत्‌का स्नान किया हुआ उनके चरणोंका धोवन गंगाजलके सदृश है, उससे आप स्नान करे, पश्चात् पूजनके आ-सनपर जा सन्ध्या इत्यादि करते समय ऐसा ध्यान करे कि, मेरा स्वामी मेरे सन्मुख बैठा मेरे सब आचरणों को देख रहा है, वह उसीको सन्मुख बैठाल षोडशोपचार से पूजन करे, फिर सन्ध्या के पश्चात् अपने स्वामी के चरणोंमे स्तुति औ प्रार्थना कर भोजनके समय भोजनके आसनपर जा जैसे पहले कह आया हू उसी प्रकार सब भोजनकी सामग्री भगवान् को भोजनकरा आप उनका जूठन पावे, फिर पूर्ववत् शयन इत्यादिमें लेजा शयन करावे । यदि किसी संसारी काममें जाना हो, जैसे कचहरियोंके हाकिमके पास अथवा किसी अन्य प्रकारके व्योपारमें जाना हो तो भग-वानको शयनमें कर ऐसी प्रार्थना करे कि, हे दीनबन्धु ! पराधीनताके कारण कुछ कालके लिये संसारके स्वामीकी सेवामें जाता हुं, सो हे नाथ ! मुझपर दया करके ऐसी मेरी अवस्था करदो कि, यह जो थोड़ासा समय आपसे विलग होनेका आपहुंचता है सो न आने पावे, अनुक्षण तैल धारावत लगातार निरन्तर आप ही की सेवा करता रहूं। ऐसा करते २ कोई समय ऐसा आजावेगा कि संसारी बन्धनोंसे अवश्य छुटकारा हो जावेगा । भक्तों के इतिहासोंमें ऐसा देखागया है कि, बहुतेरे प्राणी जो ईश्वरकी सेवा करते २ स्वामीके पास समयपर उपस्थित होना भूलगये है तो भगवत् आप उनका स्वरूप धारण कर उनके बदले उनके संसारी स्वामीकी सेवा कर आया है । जैसे सेनभक्त जो जातिके हज्जाम हुए है माधवगढ़ के राजा की नित्यसेवा करने जाते थे । एक दिन साधुओं के संग मे सत्संग करते और भगवत् सेवा की चर्चा करते रहगये, जब समय उनकी सेवाका आया तब भगवान आप सेनभक्तका रूप धारण

कर राजाको तैलमर्दन इत्यादिकी सेवा कर आये (देखो भक्तमालनिष्ठा तीसरी सेनभक्त की कथा) बहुतेरे नवीन प्रकाशवाले नास्तिक इन इतिहासोंको गप्प समझते है, सो इसमे उनका दोप नहीं है, यह उनकी बुद्धि, विद्या औ कुसंगतिका दोप है, जिससे उनकी बुद्धि भगवत्महिमा के समझनेमें असमर्थ हो रही है । अर्थात् कूपमण्डूकवत् उनकी बुद्धि हो रही है । एक दिन संयोगवशात् एक समुद्रका मेडक किसी कूपमे जा पड़ा, कूपके मेंड़कने समुद्रवालेसे पूछा कि, आपका निवासस्थान कहां किस जलमे है ? आपको तो मै अपनेसे कुछ विचित्र देखता हूं । समुद्र के मेंड़कने उत्तर दिया कि, भाई मैं समुद्रका रहनेवाला हूं, जिसमे अगाध जल है, और जिसका विस्तार बहुत है । कूपवाला मेड़क एकबार कूपके एक किनारेसे उछल कूपके मध्य भागमे आया और बोला कि, समुद्र इतना बडा होगा । समुद्रवालेने कहा इससे भी बहुत बड़ा है, फिर वह दूसरी बार थोड़ा और अधिक उछलकर आगे बढ़ा औ बोला कि इतना बड़ा होगा, पर समुद्रके मेंड़कने कहा नहीं भाई ! इससे भी बहुत बड़ा होता है, फिर वह तीसरी बार उछलकर कूपके दूसरे किनारे तक पहुंच बोला, अब इससे अधिक तो नहीं होगा । तब समुद्रवाला फिर बोला कि नहीं भाई ! तुम क्या बार २ उछलकूद करते हो, समुद्रका विस्तार इस कूपसे कई कडोड़ गुण अधिक है, तब कूपवाला बोला कि जावे ! गप्पी ! कहांका गप्प हांकनेवाला मेरे कूपमे आया है । फिर तो सब कूपके मेंड़क इकट्ठे होकर अपनी भाषामें उसको गाली देने लगे और गप्पी और मूर्ख कहने लगे । इसीप्रकार जो भगवत्सेवासे एकबारगी विमुख संसार के कूपमें पड़े इधर उधर उछलकूद कररहे हैं, वे भगवत्सेवा की महिमा रूप अथाह सागरको क्या जानें ? इनसे अधिक बोलिये तो सब मिल गाली देने लगजावे, इससे इनके सामने तो चुपही रहना बनता है । अनधिकारियों को यह रहस्य कहना भी नहीं चाहिये, यह तो केवल भगवद्भक्तो ही के लिये है । अनधिकारियों के लिये तो ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये

कि हे उरप्रेरक जगतरक्षक तू ! इनकी बुद्धिको सीधी करदे कि, तेरी महिमा और भक्तवत्सलता किसी दिन इनकी समझमे आजावे ।

श्रीलक्ष्मणजी, श्री शेषजी, श्री हनुमानजी, प्रह्लादजी, अङ्गदजी पीपाजी, रामरायजी, श्रीरंगजी, हठीनारायणजी, गोपालभट्टजी, विभीषणजी, अक्रूरजी, तुलसीदासजी इत्यादि सब इसी स्वामिभाव निरोधसे भगवत्के परम दास कहे जाते हैं, और भगवत्के समीपी हो रहे हैं । मैंने जो यह कहा कि एक प्रभात से दूसरे प्रभात तक सब कार्य्यों को भगवत् ही के साथ समझना, इसभावको अन्य धर्मावलम्बी भी स्वीकार करते है । देखिये किसी मुसलमान कविने कहा है कि ।

نمے گو یم کہ از عالم حدا باش
بہر حالیکہ باشی باحدا باش

नमीगोयम कि अज़ आलम् जुदाबाश ।
बहर हाले के बाशी बा खुदा बाश ।

जिसका अर्थ यह है कि, मै यह नहीं कहता हू कि तू ससार छोड कर अलग होजा वरु उस छोड़नेसे उत्तम यह है कि जिस दशामें रह अपने ईश्वरके साथ रहै । ऐसा अभ्यास करनेसे चित्तवृत्ति एकबारगी ब्रह्माकार होजाती है, और सर्वत्र सब वस्तुओंमें वही अपना उपास्य देखने लग जाता है । केवल भगवत्में अहर्निश चित्त लगे रहने के लिये ही तो यह रहस्य महात्माओं ने उपदेश किया है । इससे शरीरके औ संसार के सब कार्य्य भी होते है और उसीके साथ २ ईश्वरकी स्मृति भी होती है । बहुतेरे प्राणी इस स्वामिभावमें ऐसे रत हो जाते है कि, सर्व प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त रहनेपर भी अपने हाथसे जल लाते हैं, चौका देते है, रसोई बनाते है, बिछावन बिछाते हैं, और भी अनेक प्रकारके कैंकर्य्य में दिनरात निरन्तर लगे रहते हैं । वे यही समझते हैं कि, ये सब सेवा मैं अपने उपास्य ब्रह्मदेवकी कररहा हूं । वह मेरा स्वामी है मै उसका दास हूं ।

यह अभिमान जाय नहिं भोरे ।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥ ॥ तुलसी ॥

४. वात्सल्यभावनिरोध (श्यामसुन्दर में पुत्रभावसे स्नेह करना) जैसे किसी प्राणी को बहुत दिनों पर तरसते २ एक पुत्र उत्पन्न हो जाता है फिर वह दिनरात उस पुत्रके प्रेममें मग्न रहता है, जहां कहीं किसी भी कार्यमें क्यों न लगा हो पर उसकी चित्तवृति अपने पुत्रहीमें लगीरहती है ॥ जब किसी प्रकारके खाने, पीने, पहनने, ओढ़नेकी वस्तु बाजारोंमें देखता है, यही बोलउठता है कि, बबुआजीके लिये इसे लेचलो यह टोपी उसके मस्तकपर अच्छी सोहेगी । यह कंठमाला उसके गलेमें सुहावनी लगेगी ।

इसी प्रकार श्यामसुन्दरकी बाल्यावस्थाकी मूर्त्तिमें पुत्रवत् स्नेह करना और सदा उनहीके लाड़, प्यार, शृङ्गार, और शोभामें दिन बिताना, वात्सल्यभावकी उपासना कहीजाती है । नन्द, यशोदा, दशरथ, कौशल्या इत्यादिका श्यामसुन्दरमें यही भाव था । उपास्यमें उपासनाका प्रेम, परिचर्या, औ शुश्रूषा इत्यादिकी रीति सर्वप्रकारके भावोंमें एकसमान है । एक प्रभातसे दूसरे प्रभात तक जिस प्रकार प्रत्येक कार्यको ईश्वरके निमित्त समझनेकी रीति मैं प्रथम स्वामिभावमे वर्णन करचुका हूं, उसी प्रकार वात्सल्यभावमें भी समझना चाहिये । अन्तर इन दोनों भावोंमें इतनाही है कि, एकमें उस मनमोहनको अपना स्वामी समझना है और दूसरेमें बालक समझना है, इसलिये यह तो कहना ही पड़ेगा कि, यह वात्सल्यभाव स्वामिभावसे अधिक प्रिय है, क्योंकि स्वामीसे अपने बच्चो में अधिक स्नेह होना स्वाभाविक है । ऐसे जिस प्राणी को जिसमें अधिक स्नेह हो उसी भावको स्वीकार करे । इस वात्सल्यभाव मे भगवत्की बालमूर्ति की उपासना होती है । इस बालमूर्ति में मनोहरता, हास्य, भोलापन, तोतरीबातें बोलनी इत्यादि नानाप्रकार की शोभा चित्तको खींचलेती है । देखिये गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीरघुनाथजी के बालरूप की छवि

अपने कवित्तरामायण में किस प्रकार वर्णन कररहे है कि—

कवित्त ।

कवहूं शशि मांगत आरि करैं कवहूं प्रतिबिम्ब निहारिडरै ।
कवहूं करताल बजाइके नाचत मातु सबै मन मोद भरैं ॥
कवहूं रिसियाइ रहैं हठसों पुनिलेत वही जेहि लागि अरैं ।
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मनमन्दिर में बिहरैं ॥ १ ॥
तनकी द्युति श्यामसरोरुह लोचन कंजकी मंजुलताइ हरैं ।
अति सोहत धूसर धूरिभरैं छवि भूरि अनङ्ग की दूरि धरै ॥
दमकैं दतिया द्युति दामिनि ज्यों किलकैं कलबालविनोदकरैं ।
अवधेशके बालक चारि सदा तुलसीमनमन्दिरमें विहरैं ॥
वरदन्तकी पंकति कुन्दकली अधराधर पल्लव खोलनकी ।
चपलाचमकै घनविज्जुजैंग छवि मोतिनमाल अमोलनकी ॥
घुंघुरारिलटैं लटकै मुखऊपर कुण्डललोल कपोलनकी ।
न्यवछावर प्राणकरै तुलसी बलिजाऊं लला इन बोलनकी ॥

अब एक कवित्त श्री आनन्दकन्द कृष्णचन्दकी बाल्यावस्थाकी शोभा में भी सुनलीजिये— कवित्त—

दोहनीके समय मनमोहन ललाजू की ललित लोनाई कविवर ने कहा कहैं । कवहू किलकिधाय नन्दके निकट आय कर उचकाय मुखतोतरे वचा कहैं। ताके ब्रजरानी महा कौतुक सिरानी दीठवानी मृदु सुनत बलैया लेऊं मा कहैं । ओट व्है गैयाकी ललैयावलगैया दैके यशुमतिमैया सों कन्हैया जब ता कहै ॥

प्यारे सभासदो ! एवम्प्रकार उस मनमोहन लाड़लेने बाललीला कर वात्सल्यभावकी उपासनाको दृढ़ करदिया है ।

४. सख्यभावानिरोध—उस श्यामसुन्दरको अपना मित्र समझकर उसमे प्रीति करनेको सख्यभाव कहते है । जैसे एक मित्र अपने दूसरे मित्रको एक क्षण भी अपने नेत्रोंसे विलग करना नही चाहता, जैसे दोनो

मित्र परस्पर हंसने, खेलने, संभाषण करने, खाने, पीने और एकदूसरेके लाड़प्यारमें समय बिताते हैं, इसी प्रकार श्यामसुन्दरके संग समय बिताना। सुदामा, श्रीदामा, और भी अनेक ग्वालवालोंका श्यामसुन्दरके संग यही भाव था। यह भाव अन्य सब भावोसे श्रेष्ठ और उत्तम है, क्योंकि सबसे उत्तम प्रेम मित्र ही का शास्त्रो मे कहा गयाहै, तत्पश्चात् माताका, फिर पिताका। इन तीनों प्रकारके प्रेमसे अतिरिक्त चौथे प्रकारका कोई प्रेम ही संसारमे नहीं है। यदि शंका हो कि जब चौथा कोई प्रेमही नहीं है, तो स्वामिभाव, कान्तभाव इत्यादि जो कहेगये उनसे उपासनाकी सिद्धि कैसे होगी? तो उत्तर यह है कि, अन्य सब भाव इनही तीन प्रकारके प्रेमके अन्तर्गत हैं। जैसे स्वामिभावमें स्वामीके साथ वही प्रेम है जो पिताके साथ होता है, और कान्तभावमें स्त्रियोंको अपने २ पतिके साथ वही प्रेम है जो मित्रके साथ होता है।

अब मै आपको दोएक प्रमाण देकर सिद्ध करता हूं कि, मित्रका प्रेम अन्य सबप्रकारके प्रेमसे क्यो और कैसे श्रेष्ठ है? सुनिये—

न मातरि न दारेषु न सौदर्य्ये न चाऽत्मजे।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यावन्मित्रे स्वभावजे॥ १॥
शोकाऽऽरातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनम्।
केनरत्नमिदंसृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्॥ २॥
मित्रं प्रीतिरसायनंनयनयो रानन्दनं चेतसः।
पात्रं यत्सुखदुःखयोः सहभवेन्मित्रेणतद्दुर्लभम्॥ ३॥
यस्यमित्रेणसंभाषो यस्यमित्रेणसंस्थितिः।
यस्यमित्रेणसंलाप स्ततोनास्तीहपुण्यवान्॥ ४

अर्थात् स्वाभाविकमित्रमें जिसप्रकार विश्वासकी दृढ़ता होती है, वह न मातामें, न स्त्रीमें, न सहोदर भाईमे, न पुत्रमें, किसीमेंभी नही होती। १।

शोकके समय, शत्रुओंसे आक्रमणके समय, और अन्य प्रकारके भय प्राप्तिके समय, जो रक्षा मित्रद्वारा होती है, वह किसी अन्यसे नहीं हो-

सकती, फिर प्रीति और पूर्ण विश्वासका पात्र जसा मित्र होता है वैसा कोई दूसरा नहीं होता, इसलिये शास्त्रकार कहते हैं कि इस दो अक्षर (मि + त्र) के पदरूप उत्तम रत्नको न जाने किस विधाताने रचा है।२। फिर कहते है कि, प्रीतिरूप जीवनको सजीव रखनेके लिये जो मित्ररूप रसायन है, नयन और मनका सुख देनेवाला है और दुखसुखका साथी है, ऐसा मित्र मिलना दुर्लभ है। ३।

अब कहते हैं कि, उस प्राणीसे बढ़कर कोई दूसरा पुण्यवान नहीं है जिसको ईश्वरकी कृपासे सुयोग्य और परम प्रेमी मित्र मिला है, जो अपने मित्रके साथ सदा प्यारी २ बातें करता है, जो निरन्तर अपने मित्रके संग निवास करता है, और गुप्त रहस्योंकी वार्त्ता कर आनन्दको प्राप्त होता है। अर्थात् एक दूसरेसे अपने २ किसी गुप्तभेदको भी नहीं छिपाता फिर कहते हैं कि—

पापान्निवारयतियोजतेहिताय । गुह्यंचगूहतिगुणानमकटी करोति ॥
आपद्गतंचनजहातिददातिकाले । सन्मित्रलक्षणमिदंमवदन्तिसन्तः॥

प्यारे सज्जनो ! इसी श्लोकका ठीक २ तात्पर्य श्री गोस्वामी तुलसीदासजी अपनी रामायणमें यों कहते हैं कि—

कुपथनिवारि सुपन्थ चलावा । गुणप्रगटै अवगुणहि दुरावा ॥
देत लेत मन शंक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥
विपतिकाल कर शतगुण नेहा । श्रुति कह सन्त मित्रगुण एहा ॥

प्रिय सज्जनो ! चैतन्य मनुष्य और पशु पक्षियोंमें मित्रता हुई तो कौनसी बड़ीबात है ? मैं आपको जड़ पदार्थोंकी मित्रताका दृष्टान्त देकर दिखलाता हूं कि, मित्रको मित्रकेसाथ कैसा वर्त्ताव रखना चाहिये। सुनिये-

क्षीरेणात्मगतोदकायहिगुणा दत्ताःपुरातेऽखिलाः ।
क्षीरेतापमवेक्ष्यतेनपयसा ह्यात्माकृशानौहुतः ॥
गन्तुं पावकमुन्मनस्तद्भवद्दृष्ट्वातु मित्रापदं ।
युक्तं तेनजलेन शाम्यति सतांमैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥

अर्थात् दूधमें जब पानी आमिला तब दूधने अपने मित्र पानीको अपने सब गुण देदिये. अपने समान उज्ज्वल. मधुर. स्वादिष्ट. और समान मूल्यवाला बना दिया. फिर पानीने अपने मित्रकी ऐसी अनुपम मित्रताई देख ऐसी मित्रता बढ़ाई कि. जब अपने मित्र दूधको अग्निके दाह से तपता हुआ देखा तो झट आप आगमें गिरने लगा, तब दूधने भी यह इच्छाकी कि मैं भी अपने मित्र पानीके साथ २ अग्निमें हवन होजाऊं, पर जब किसीने ऊपर जलका छींटा देदिया तब अपने मित्रको फिर अपने पास आयाहुआ देख ज्योंका त्यों शान्त होगया।

इस दृष्टान्तसे स्पष्ट होता है कि मित्रता यदि हो तो ऐसी हो कि, एक मित्र दूसरेके दुःखसुखका साथी हो औ सदा प्रेमका प्रत्युत्तर देतारहे।

इसी प्रकार जो प्राणी अपने परम मित्र श्यामसुन्दरको अपना तन मन अर्पण करेगा तो वह श्यामसुन्दर भी अपना सर्वगुण उसको प्रदान करेगा और उसके प्रेमका प्रत्युत्तर देतारहेगा।

वह महाप्रभु इस जीवका सच्चा मित्र है इसलिये अपने समान बना लेनेकी सदा चेष्टा करतारहता है। जैसे कोई एक मित्र अपने किसी बिछुड़ेहुए मित्रके पास पत्र भेजकर अपने समीप बुलाता है तो उस पत्र में अपना नाम. ठिकाना. मार्ग, रेलके लाइन. उसके जंक्शन फिर पोस्ट-ऑफिस (डाकखाना) थाना. जिला, सूबा और अपने घरका नम्बर इत्यादि लिखदेता है। ऐसेही उस परममित्र त्रिलोकीनाथने अपने बिछुड़े हुए मित्र जीवको अपने पास बुलानेके लिये वेदरूप पत्र लिखकर उसमें सब अपना पता. ठिकाना, मार्ग इत्यादि देकर भेजदिया है, और अपने समीप आनेका यत्न भी बतादिया है। अब प्रभुकी इतनी मित्रता देख यदि यह जीव उसके सम्मुख होना न चाहे तो बड़े आश्चर्यकी बात है। जीव और ब्रह्म सनातनसे परस्पर मित्रता रखते हैं. एक दूसरेके सखा हैं. यह वेदोंमें भी लिखाहुआ है "द्वासुपर्णा सयुजा सखाया०" (अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद् मुं० ३ खं० १ श्रुति १) फिर श्रीमद्भागवतके चौथे

स्कन्धमें पुरंजनके इतिहासमें इन दोनोंके सखा होनेका वृत्तान्त विस्तार पूर्वक व्यासदेवने वर्णन किया है । दूसरीबात यह है कि जब यह जीव उस ईश्वरमें सखाभावसे प्रेम करेगा तबही वेदान्तका भी मत सिद्ध होजावेगा और महावाक्योंके अर्थ भी सिद्ध होंगे " सोहमस्मि " "तत्त्वमसि " " अयमात्माब्रह्म " इत्यादि २ ।

मुख्य अभिप्राय कहनेका यह है कि इस सख्यभावकी श्रेष्ठता सर्वत्र सब वेद, पुराण इत्यादि ग्रन्थों से सिद्ध है ।

यदि यह शंका हो कि, मित्रता तो समान शक्तिवालोंमें होती है, सो कहां यह जीव नाना प्रकारके दुखोंसे व्याकुल, जन्म मरण पाप पुण्यके बन्धनमें पड़ाहुआ, और कहां वह ब्रह्म सर्व प्रकार आनन्दसागरमें मग्न नित्यमुक्त, इनमें मित्रता कैसी ? तो उत्तर इसका यह है कि अनेक इतिहास और कहानियोंमे सुनागया है और कहीं २ प्रत्यक्ष देखा भी जाता है कि दो मित्र जो सर्वप्रकार कुल, मर्यादा, बुद्धि, चतुराई, और सुन्दरताई इत्यादि में समान होते है उनमे प्रारब्धकी गतिसे एक दरिद्र होजाता है और दूसरा चक्रवर्त्ती बनजाता है " जैसे सुदामा और श्रीकृष्णचन्द्र" पर फिर भी दोनों मित्र परस्पर कभी मिलही जाते हैं, और जो मित्र सुखी होता है, वह अपने दुःखी मित्रको अवश्य अपने समान बनाही लेता है, सो उस श्यामसुन्दरने सुदामा ऐसे अपने दरिद्र मित्रको उसकी दो मूठी बाहुरी खाकर दो लोककी सम्पदा प्रदान कर अपने समान बना इस संसारको उपदेश कर देखाया कि, देखो ! तुमभी इसी प्रकार मेरे संग प्रेम करो ! तो तुम जबही मेरे सन्मुख होगे मै उसी क्षण तुमको अपने समान बनालूंगा ।

दूसरी बात यह है कि प्रीति की रीति भी भगवत्‌से बढ़कर कोई दूसरा नहीं जानता । जानत प्रीति रीति रघुराई । फिर वह आनन्दकन्द अपने मुखसे बार २ इस जीवको अपना सखा कहगया है । भगवद्गीतामें देखिये बार २ अर्जुनको यही कहा है कि, तू मेरा सखा

है । फिर ग्वालबालोंको भी सखा कहकर पुकारा है ।

इस सख्यभावका सम्बन्ध केवल भगवत्स्वरूपकी माधुर्य्यता और शृंगारसे है और यहबात स्वाभाविक है कि मनुष्योंका चित्त जितना इस रसराज शृंगारकी ओर खिंचजाता है उतना किसी अन्यरसकी ओर नहीं लगता । इसी कारण इस सख्यभावनिरोध को अन्य प्रकारके निरोधोंसे श्रेष्ठता सिद्ध है ।

अब मैं अपने सभासदोंको दो कवित्त सुनाता हूं जिनसे रामकृष्ण दोनोंके स्वरूपकी माधुर्य्यता और शृंगार प्रगट होंगे, और यह भी कहता हूं कि इनही मनोहर मूर्त्तियोंके ध्यानसे सख्यभावका प्रेम हृदयमें उत्पन्न होगा । सुनिये अपने सखाकी शोभा सुनिये । एकाग्रचित्त होजाइये !

कवित्त सवैया—करकंजन मंजु बनी पहुंची धनुहीशर पंकज पाणि लिये ॥ १ ॥ लड़िकासंग खेलत डोलत हैं सरयूतट चौहट हाटहिये । तुलसी अस बालकसों नहिं नेह कहा जप योग समाधि किये । ३ । नर सो खर शूकर स्वान समान कहो जगमें फल कौन जिये ॥ ४॥

कवित्त—त्रिगुन मालवारे चलन मरालवारे अधरनलालवारे शोभा मदभारे हैं । १ । तिलकन भालवारे जलज तमालवारे भुजन विशाल वारे दृग अनियारे हैं । २ । पीतपटवारे लटवारे नटवारे पृथीकारीतटवारे तू मोहनी मन डारे है । ३ । चोरपर वारे चितचोर पर वारे सिरमोर पर वारे तेरी मोरपर वारे हैं ॥ ४ ॥

५. कान्तभावनिरोध—जैसे स्त्रियां अपने पतिमें स्नेह करती हैं तैसे उस जगत्पतिमें स्नेह करना कान्तभाव कहाजाता है । यह भाव विशेषकर स्त्रियोंके लिये अति उत्तम है । क्योंकि स्त्रियोंके लिये पतिका प्रेम अन्य सर्वप्रकारके प्रेमसे उत्तम और योग्य समझा जाता है, इसी कारण पतिवृता स्त्रीकी प्रशंसा वेद, शास्त्र, और सब महात्मा करते हैं । स्त्रियोंके लिये पतिका प्रेम इतना प्रबल है कि, जिस कारण वे आगमें जलकर सती होजाती हैं ।

बहुतेरे नवीन प्रकाशवाले जिनकी आंखोंमें नवीन विद्युतके प्रकाश से चकाचौंध लगगई है, यों कहकर हंसपड़ते हैं कि, उस ब्रह्ममें पतिका भाव क्यों ? यह तो महा अशुद्ध भाव है। सच है जिसकी आंखोंमें कामला (पीरी يرقان Jaundice) का रोग होजाता है उसे सर्वत्र पीला ही पीला देखपड़ता है, इसी प्रकार इस कलियुगमें जबकि विषयसागर बड़े वेगसे लहरें लेरहा है जिसमें विषयीपुरुषोंके मन मत्स्यके समान मग्न होरहे हैं, सर्वत्र विषय ही विषय सूझरहा है, वहां इस कान्तभाव में भी विषयकी दृष्टिसे क्यों न देखें। भला मैं इनसे यह पूछता हूं कि तुम उस महाप्रभुको कभी पिता कहकर पुकारते हो वा नहीं ? इनको अवश्य कहना पड़ेगा कि हां। तब मैं इनसे यह पूछूंगा कि उसको पिता कहना अशुद्ध भाव है वा नहीं ? क्योंकि पिता तो माताके भर्तार (खसम्) को कहते हैं, तिसको तुम विषयकी दृष्टिसे देखकर तिसमें अशुद्ध भावना कररहे हो, तो तुम्हारे कथनानुसार यह सिद्ध होता है कि उस ईश्वरको अपनी माताका पति कहना महा अशुद्ध है, फिर तुम उसको बार२ पिता कहकर क्यों पुकारते हो ? दूसरी बात यह है कि सब छोटे बड़े अपने किसी रक्षकको प्रायः कहबैठते हैं कि सरकार तो मेरे माता पिता हैं, माई बाप हैं, सब देशोंमें अपनेसे बड़ोंके साथ बोलनेकी ऐसी प्रणाली चली आरही है। अपने गुरुको भी पिता कहकर पुकारते हैं। अंग्रेजी पढ़नेवाले भी अपने गुरुको पत्रोंमें रेवरेण्ड फ़ादर (Reve-end Father) करके लिखते हैं। क्या इन स्थानोंमें पिताका अशुद्ध भाव है ? क्या इन स्थानोंमें कहनेवालेका यही तात्पर्य है कि उसका रक्षक अथवा उसका गुरु उसकी माताका खसम है? फिर महात्मा लोग और भले पुरुष किसी अपनेसे बड़ी अवस्थावाली स्त्री को माता वा माई कहकर पुकारते हैं तब वह स्त्री अत्यन्त प्रसन्न होती है, पर यदि उसे बापकी जोरू कहकर पुकारें तो वह अत्यन्त क्रोध करेगी। इससे सिद्ध होता है कि यहां माई बाप कहना केवल भाव मात्र है। यहां सब अंग लेना बुद्धिमानोंका काम

नहीं है, यहां केवल शुद्धभावका अंग (Fair Portion) लेना चाहिये और अशुद्धभावका अंग (Unfair portion) ग्रहण नहीं करना चाहिये

इसी प्रकार इस कान्तभाव में भी केवल शुद्धभावका ग्रहण करना उचित है। इसी शुद्ध कान्तभावसे उस श्यामसुन्दर मनमोहनके चरणो में प्रीति करनेकी आज्ञा है।

मैं यह नहीं कहता हूं कि, स्त्रियां उसको पिता कहकर न पुकारे वा पिताका भाव उसमें न करें, पर स्त्रियोंके लिये पितासे बढ़कर पतिका प्रेम है इसी कारण स्त्रियां पतिव्रता कहकर पुकारीजाती हे पिताव्रता उनको कोई नहीं कहता। विचारकी दृष्टिसे देखियेगा तो आप भलीभांति समझजाइयेगा कि माता, पिता, भ्राता, पुत्र, इत्यादि सबोंसे बढ़कर पति ही का प्रेम स्त्रियोंके लिये योग्य है, यह प्रेम ऐसा है कि प्रायः पतिव्रता स्त्रिया पतिके साथ आगमे जलजाती है अथवा पतिकी मृत्यु होते ही आप भी अपना प्राण छोड़देती हैं, पर किसी स्त्रीको अपने पिता. भ्राता, अथवा पुत्रके साथ जलते नहीं सुना होगा। इसलिये मै फिर आपको निश्चय कराता हूं कि, इस कान्तभावसे विषयदृष्टिको हटाकर जब शुद्ध प्रेमसे देखियेगा तब आपको अनुभव होजावेगा कि, इस भाव द्वारा कितना शीघ्र स्त्रियोका उद्धार इस संसारसे होसकता है।

ऐसा भी देखागया है कि बहुतेरे पुरुष भी इसी कान्तभावसे ईश्वर में प्रेम करते हैं, वे अपनेको स्त्रीके समान अनुमान करते है और उस महाप्रभुको अपना पति जानते हैं।

जब वह कृपासागर जगत्पति अर्थात् सम्पूर्ण संसारका पति कहा जाता है तो इन मनुष्योके पति होनेमें क्या सन्देह रहा। इस कान्तभाव के उपासना करनेवाले तो सम्पूर्ण संसारके जीवोंको स्त्रीरूपमें देखते है केवल उस महाप्रभुको ही एक पुरुष मानते है।

प्यारे श्रोताओ! वृषभाननन्दिनी श्री राधाजी और व्रजकी गोपिकाओंको तथा मीराबाई इत्यादि अनेक सौभाग्यवती स्त्रियोंको उस श्यामसु-

न्दर मे कान्तभाव का ही प्रेम था । इसी कारण प्रेमके उदाहरणमें मह-र्षि नारद कहते हैं कि "ॐ यथा ब्रजगोपिकानाम् "

यदि किसी बुद्धिमान्को यह शंका हो कि, उनकोनन्दनन्दनमें विषयात्मक प्रेम था तो ऐसा सिद्ध नहीं होता, क्योकि भक्तिसूत्रमें महर्षि नारद कहते है कि, गोपिकाओंको श्रीकृष्णचन्द्रमें जारबुद्धि नहीं थी, वे तो साक्षात्परमात्मा परब्रह्म समझतीथीं । देखिये श्रीमद्भागवतमें गोपिकाओं ने गीत गाकर ब्रजमोहन नन्दनन्दनको यों पुकारा है कि—गोपिकागीत

न खलुगोपिकानन्दनोभवान् सकलदेहिनामन्तरात्मदृक्

अर्थात् हे नन्दकिशोर आप गोपिकानन्दन अर्थात् यशोदाके पुत्र नहीं हैं, आपतो साक्षात् पूर्णब्रह्म जगदीश्वर है, सब देहधारियोंके अन्तरात्माके देखनेवाले है । इसी गीतसे यह स्पष्ट होता है कि, यदि इन गोपिकाओंका विषयात्मक प्रेम होता तो श्यामसुन्दरको ऐसा कदापि नहीं समझतीं । इसी प्रकार जो स्त्रिया विषयकी बुद्धिको अलग फेंककर कान्तभावसे उस भगवत्मे प्रेम करती है वे इस भवसागरको गोपदके समान विना श्रम तरजाती है ।

६, सर्वभावानिरोध—उस महाप्रभुमे सर्वप्रकारके भावोंको लेकर स्नेह करना । माता, पिता, भ्राता, सखा, स्वामी इत्यादि सर्व प्रकार उसी को देखना । जब जिस समय अपने हृदयमें जिस भावके प्रेमका लहर लहराने लगजावे तिससमय तिसी भावसे उसे ध्यान करना । इस भावमें भी एक प्रभातसे दूसरे प्रभात तक भगवत्परिचर्या के करनेकी सब रीति पूर्व भावोंके अनुसार ही है । इस भावमें एक प्रकारकी विचित्रता यह है कि उपासकको सर्व प्रकारके रसोंका आनन्द समय २ पर लाभ होता रहता है । जैसे गन्धीकी दूकान पर बैठने से नाना प्रकारके अतरोंके गन्ध का आनन्द लाभ होता है ऐसे ही सर्वभावरूप गधीकी प्रीति रूपी दूकान पर बैठनेसे भीतिभावरूप खस, स्वामिभावरूप गुलाब, वात्सल्यभावरूप जुही सख्यभाव रूप मोतिया, कान्तभाव रूप केवड़ाके अतरोंके गन्धसे उपासक

के अन्तःकरणको प्रसन्नता प्राप्त होती है । अथवा यों कहिये कि जैसे बंगदेशकी स्त्रियां एक प्रकारकी भाजी (तरकारी वा शाक) बनाती हैं, जिसको चरचरी कहते हैं, इसमें नाना प्रकारके कन्द, मूल, फल, शाक, तथा आलू, बैंगन, पटोल, गोभी, रताल्ू, रामतरवी, अरवी, मूली, चौलाई इत्यादि को एकसंग मिलाकर बनाती हैं। खाने वालोंको इस चरचरी में सर्वप्रकारकी भाजियोंके खानेका स्वाद मिलता है, इसी प्रकार भक्ति रूपी सुहागिन स्नेहके घरमें बैठी हुई सर्वभाव रूप चरचरीको बनाकर ईश्वरके चरणारविन्दानुरागियोंको विचित्र स्वाद प्रदान करती है ।

मुख्य अभिप्राय यह है कि इस सर्वभावनिरोधमें एक विशेष प्रकार का आनन्द उपासकों को लाभ होता है ।

इसी भाव के सिद्धान्त में मैं आपको एक श्लोक सुनाताहूं सुनिये—

त्वमेवमाताचपितात्वमेवत्वमेवबन्धुश्चसखात्वमेव ।
त्वमेवसेव्यश्चगुरुस्त्वमेवत्वमेवसर्वममदेवदेव ! ॥

प्यारे श्रोताओ ! अब मैं आपके सन्मुख उपासनाका भेद अपनी स्वल्प बुद्धिके अनुसार जहांतक उचित जाना वर्णन करचुका । नाना प्रकारकी युक्तियों और प्रमाणोसे यह सिद्ध करचुका कि सबल और निर्बल अधिकारियोंके भेदसे उपासना दो प्रकारकी हैं "निराकार और साकार" ।आत्माकी उपासना द्वारा परमपदको पहुंचजानेको निराकारउपासना सिद्ध की, और साकारउपासनामे विराड्, विराड्के भिन्न २ अंग, तथा अवतारोंकी उपासना दिखलाते हुए स्वामिभाव, सख्यभाव, इत्यादि छवों भावोंसे चित्तवृत्तियोंके निरोध करनेका यत्न देखलाचुका। इसलिये अब मैं यह व्याख्यान समाप्त करता हूं, परन्तु मेरे चित्तमें एक बात खटक रही है कि, सनातनधर्म तथा भागवत्धर्मके विरोधियोंके चित्त में कान्तभाव पर अनेक प्रकारकी अशुद्ध शंकाये उत्पन्न होरही होंगी । यद्यपि मैंने इनके निवारणार्थ बहुतसी युक्तियां देखलाई; तथापि मलीन हृदय वालोंके चित्तसे अशुद्धभावनाओंका एकाएक मिटजाना बिना भगवत्

कृपाके असंभव है, इसलिये मैं एक भक्ता मीराबाईकी कथा सुनाता हूं, आशा है कि इस कथासे उनकी शंकाओंकी निवृत्ति होजावे । यदि न हो तो उनका अभाग्य, हमलोगोके तो दोनों हाथ लड्डू हैं । अब पहले एक बार सब मिल कहलीजिये—

हरे राम ! हरे राम ! राम ! राम ! हरे ! हरे !
हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! हरे ! हरे !

कथा मीराबाईकी ।

मीराबाई परम भगवद्भक्ता हुई हैं, आप मेरताके महाराजकी लड़की थीं। कथा यों है कि, एक दिन इनकी माता इनको प्रेमसे गिरिधरगोपाल जीके मन्दिरमे दर्शनके निमित्त लेचली । मार्गमें एक बारात चलीजाती थी जिसमें दूलह सर्वप्रकारके आभूषणोंसे भूषित नाना प्रकारके शृङ्गार कियेहुए एक शिविका (पालकी) पर चलाजाता था, उसके दायेंबायें आगे पीछे चारोंओरसे घोड़े, हाथी, पैदल, सवार बगमेल चलेजाते थे । मीराने देखकर मा से पूछा, मा ! यह क्या है ? और यह सुन्दर बालक जो शिविकामें बैठाहुआ है, जिसको लोग चारोंओरसे घेरे चलेजाते हैं, कौन है ? माताने उत्तर दिया बेटी ! यह जो बालक तू देखती है यह दूलह है, तेरी ऐसी कन्या किसी ठौरमें है जिसके विवाहनेको यह जाता है, उस कन्याका यह पति होगा, वह कन्या इसकी स्त्री होगी, और जो लोग इसे चारों ओरसे घेरेहुए हैं सब इसके बाराती हैं । मीराने पूछा, मा ! पति किसे कहते है ? और स्त्री किसे कहते है ? माने उत्तर दिया, बेटी ! पति वह है जो स्त्रीकी सर्वप्रकारसे रक्षा करे । खिलाना, पिलाना, पहनाना, उढ़ाना, और सर्वप्रकारका सुख देना, पति का काम है । स्त्री वह है जो पतिकी सेवा करे, पतिको ईश्वर समान जाने, स्त्रीके लिये पति ही ईश्वर है। जो स्त्री केवल अपने एक पतिको जानतीहै और दिन रात उसकी सेवामें रहती है उसको पतिव्रता कहते हैं। इतनी बात करती २ दोनों गिरिधरगोपालजीके मन्दिरमें पहुंचगईं। मीराने पूछा मा ! मै भी तो

किसीकी स्त्री होऊंगी और मेरा भी तो कोई पति होगा । मा गिरि-धरगोपालजीकी ओर हाथ उठाकर बोली, बेटी ! यह जो जगत्पति श्याम-सुन्दर गिरिधरगोपाल है, यही तेरा पति होगा । मीरा बोली यह कौन है ? मुझे बता ; मा ने उत्तर दिया, बेटी ! यह त्रिलोकीनाथ है, सम्पूर्ण जगत् की रचना और पालनकरना इसका काम है । जैसे मै तेरी मा हूं ऐसे यशोदा इसकी मा है । मीरा बोली, मा ! मै तो बड़ी भाग्यशालिनी हूं कि ऐसा सुन्दर सर्वगुणसम्पन्न सर्वशक्तिमान पति मुझको मिलेगा, मा ने हँसकर कहा इसमें क्या सन्देह !

प्यारे श्रोतागण ! एवंप्रकार थोड़ी देरके पश्चात् दर्शन करके दोनों अपने घर लौटआई । मीराने गिरिधरगोपालकी मूर्त्ति अपने हृदयमे बसाली और पतिभावसे नित्य स्मरण करने लगी, जब कभी अपनी सखी सहेलियोके बीच खेलाकरती और परस्पर विवाह इत्यादिकी वार्त्ता आन पड़ती तो कोई सखी बोलती हे मीरे ! मेरा विवाह तो मेरे पिताने छत्तीसगढ़के राजकुमारसे निश्चय किया है, कोई बोलती बुन्देलखण्डसे, कोई बोलती रुहेलखण्डसे, इन सबोंकी बात सुनकर मीरा बोलती कि, हे सखियो ! मेरा विवाह तो त्रिलोकीके नाथ ज-गत्सुन्दर मनमोहन नन्दसुत यशोदानन्दन गिरिधरगोपालसे होगा, मेरी मा ने मुझको यह निश्चय करदिया है । यह सुनकर सब सखियां एकबारगी हँसदेती और यों बोलतीं कि गिरिधरगोपाल तो एक प्रस्थलकी मूर्त्ति हैं, उनसे तेरा क्या विवाह होगा, तब मीरा बोलती कि, तुमलोगोंके पास भी कोई तुम्हारे पतिकी मूर्त्ति है वा नहीं ? यह सुनकर सब सखियां अपने पिताके यहांसे अपने २ पतिका चित्र उठालातीं और उसे दिखातीं, क्योंकि पहले यह रीति थी कि प्रत्येक राजधानियोमें राजा महाराजाओंके महलों के भीतर देश २ के नरेश, राजकुमार, वीर, गुणवान, धर्मात्मा, योगी, ऋषि, और मुनियोंके चित्र बड़े प्रेमके साथ रखेजाते थे । इन सखियोंके लाये चित्रको देखकर मीरा बोलती कि सखियो ! तुम्हारे पतिके चित्रको

तो कोई पूछताभी नहीं, जहां तहां दीवारमें लटके पड़े रहते हैं, पर मेरे पतिके चित्रकी तो सैकड़ों सहस्रों पुरुष वन्दना कररहे हैं। सखियोंने फिर हँसकर कहा कि, हमलोगोंका पति तो भिन्न २ राजधानियोंमें प्रत्यक्ष वर्त्तमान है, तुम्हारा कहां है ? मीरा बोली, मेरी मैयाने मुझसे यों कही है कि मेरा पति कभी गोलोकमें, कभी बैकुण्ठधाममें, कभी क्षीर सागरमें, कभी वृन्दावनमें, वास करता है।

प्यारे सभासदो ! इसीप्रकार मीराका प्रेम श्यामसुन्दरमें पतिभावसे नित्य २ बढता चलागया। कुछकाल बीतनेके पश्चात् जब मीरा बड़ी हुई, विवाहके योग्य हुई, तब पिताने बड़ी धूमधामसे उसके विवाहकी तयारी की। बारात बड़ी धूमधामसे आई, मण्डपमें बैठकर जब कन्यादानके पश्चात् विवाहकी सब विधि होचुकी तब मीराके चित्तमें यह लालसा उठी कि, मेरे गिरिधरगोपालजी मुझे विवाहने आये हैं, वे किस शोभा और शृंगारके साथ हैं तनक देखतो लूं। ऐसे विचार घूंघटकी ओटसे देखा तो समझगई कि यहतो गिरधरगोपाल नहीं हैं, यह तो कोई दूसरा पुरुष है, देखते ही एक ठण्डी सास ली और बोली कि हा ! मैयाकी बात क्या एकदम झूठी होगई ! मैंने तो मैयाकी बातको सच्ची जान गिरिधरगोपालको अपना पति जाना था, यह क्या अंधेर हुआ कि मैयाकी बात एकदम झूठी होगई। हे गिरिधरगोपाल ! मनमोहन ! यशोदा नन्दन ! जगत्सुन्दर ! मैने तो आपहीको अपना पति जानलिया था, क्या अब आपको छोड़ दूसरेको पति बनाना पड़ेगा ? हा ! हे प्रभो ! आज मेरा सर्वनाश होगया, मेरी सारी मनोकामना धूलमें मिलगई, क्या आप की इसदासीको एक दूसरे पुरुषके चरणोंकी सेवा करनी पड़ेगी, अब मेरे इस जीवनको धिक्कार है, और यह मेरा शरीर मुझको एक बहुत बड़ा भार है, हा ! किधर जाऊं ! किससे कहूं ! कौन मेरी बात सुने ! ऐसा कौन है जो मेरे गिरिधरगोपालको मेरे समीप लादेवे, वा बुलादेवे ! इतनी बात कहते २ एकदम मूर्छा खा पृथिवी पर गिरपड़ी, उसके गिरतेही

विवाहमंडपमें हाहाकार मचगया । मीरा श्यामसुन्दरके विरहमें व्याकुलहो शरीरकी सुधि, बुधि भूलगई, खाना, पीना, पहिनना, ओढ़ना, खेलना, कूदना सबको तिलांजलि देदी । उसके पिताको यह बात ज्ञात हुई कि मीराने खाना पीना सब छोड़दिया तब उसे रोगी जान इधर उधरसे वैद्योंको बुला उसे चंगी करनेका यत्न किया, वैद्योने उत्तर दिया कि राजाजी महाराज इसको कोई शारीरिक रोग नहीं है, इसकी बीमारीका निदान हमलोगोंसे नहीं हो सकता और यहभी आह २ छोड़ हमलोगोंसे और कुछ नहीं कहती, सम्भव है कि स्त्रियां बहुतसे रोगोको पुरुषोंके सन्मुख प्रगट नहीं करसकतीं इसलिये इसकी सखी सहेलियोंको इसके सन्मुख भेजकर पुछवाओ । राजाने ऐसाही किया । जब सखियां मीराके पासगई और उसके रोगका वृत्तान्त पूछने लगीं तब मीराने अपने हृदयकी सब बातें सखियोके सन्मुख प्रगट कर यों कहा कि सखियो ! मेरे रोगकी औषधि वैद्योंके पास नहीं है, इसकी औषधि करनेवाला तो केवल गिरिधरगोपाल है (अय तबीबो मेरे जीनेका कुछ असार नहीं मत करो फिक्र औ दवा) सखियोंने सब बातें राजासे जाकही । राजाने सखियोसे कहा कि, मीरासे कहदो कि, अब तो तेरा विवाह होचुका, अबतो तुझे तेरे पतिके साथ सुसराल जानाही पड़ेगा और यह तेरे पिताकी आज्ञा है, इसे माननी पड़ेगी । जब सखियोंने मीरा के पास जाकर ऐसी बातें कहीं तब मीराने उत्तर दिया, मेरे बचपनकी सहेलियो ! पिताकी आज्ञा मेरे सिरपर है वह मुझे जहा नर्क स्वर्गमें भेजदे विना विचारे चली जाऊंगी परन्तु उनसे इतना जाकहो कि गिरिधर गोपालकी मूर्त्ति मेरे साथ करदें, यदि ऐसा न करेगे तो मैं अब अपने प्राणको त्याग करदूंगी । सखियोंने पितासे जाकर मीराका वचन ज्यों का त्यों कहादिया । राजाने पण्डितोंको बुलाकर पूछा कि, अपने बड़ोंकी स्थापन कीहुई मूर्त्ति दूसरी जगह भेजदेनी चाहिये वा नहीं ? पण्डितोने उत्तर दिया नहीं ! ऐसा कदापि नहीं होसकता । ऐसा करनेसे बहुत बड़ा प्रायश्चित्त करना होगा । राजाने यहबातसुन मीराकी सबबातें पण्डितोके सन्मुख

प्रगट करदी, तब उनमेंसे एक पण्डित जो भक्ति और प्रेमरसका जाननेवाला था बोला (सामान्यशास्त्रतोन्यूनं विशेषोबलवान् भवेत्) अर्थात् सामान्य धर्मसे विशेष धर्म बलवान होता है, मूर्त्तिके देदेनेसे केवल देनेहीका प्रायश्चित्त होगा पर नहीं देनेसे अपने घरमें कन्याकी हत्या होगी जिससे अधिक प्रायश्चित्त करना होगा इसलिये गिरिधरगोपालकी मूर्त्ति मीराके साथ करदेनाही उचित है।

प्यारे सभासदो ! अबतो आगे आगे गिरिधरगोपालकी मूर्त्ति और उसके पीछे राजकुमारकी सवारी, तिसके पीछे मीराका डोला चलनिकला। मीरा अपने पतिके घर पहुंची, सासने मीराको डोलेसे उतार घरमें प्रवेश कराया, राणाके महलमें प्रथम द्वारपर एक मिट्टीका पिंड स्थापन था, सासने मीराको कहा इस पिंडको नमस्कारकर ! परंपरासे मेरे कुलकी मर्यादा यों चली आती है कि, जो कोई बहू इस घरमें पहिले पहिल आती है वह इस पिंडको नमस्कार कर घरमें प्रवेश करती है, यदि ऐसा न करे तो यह प्रेत उस बहूको मारडालता है, मीराने पूछा माजी यह प्रेत कौन है ? सासने कहा यह एक ब्रह्मपिशाच है। यह एक ब्राह्मण कान्यकुब्ज था इसकी स्त्री पर हमलोगोंके वशका कोई आसक्त था, उसस्त्रीको उससे छीनकर लेआया, उसके पुरुषने हमलोगोंके द्वारपर आकर अपनी जान देदी और बोला कि जो स्त्री इसघरमें प्रवेश करतेही मुझे दण्डवत न करेगी तो मै उसे मारडाला करूंगा। हे मीरे ! जवहीसे इसकी पूजा चली आती है, तू इसे नमस्कार कर ! फिर घरमें चल ! मीराने उत्तर दिया माजी ! यह मेरा छोटा मस्तक तो गिरिधरगोपालकोही संकल्प होचुका है यह उसके चरणोंको छोड़ और किसीको नहीं झुकता। यह सुन सासको क्रोध आया और बोली, ऐसी निरंकुश ढिठाई से भरी हुई बेहूदी बहू मेरे घरमें कोई नहीं आई थी, बहुओंको सलज्ज होना चाहिये पर यह ऐसी निर्लज्ज है जो डोलेसे उतरतेही मेरी आज्ञाका भङ्ग कर मेरे साथ बकवाद करती है। अरे निर्लज्ज! तुझको लज्जा नहीं आती, चुप ! मीराने जब

बार २ निर्लज्ज शब्द अपनेलिये सुना तो यों उत्तर दिया, माजी ! मैंने तो गिरिधरगोपालके प्रेममें लज्जा वज्जा सब धोडाली है, अब आप मुझको एक दो बार क्या सहस्त्रबार भी निर्लज्ज कहलो तो मुझे कुछ परवा नहीं

दोहा—नेह नगरमें पगधरे । फेर विचारे लाज ॥
नारायण नेही नहीं । बातनको महराज ॥ १ ॥

माजी ! मैं तो गिरिधरगोपालकी होचुकी हूं, मै तो इसे मस्तक नहीं नवाऊंगी, सास अत्यन्त कुपित हो बोली, जो तू मस्तक नहीं नवावेगी तो तुझे मैं यहासे निकालदूंगी । मीरा बोली माजी ! मैं तो पहिले ही से निकली हुई हूं क्योंकि मै तुम्हारे पुत्रको अपना पति नहीं जानती, और न तुमको अपनी सास समझती हूं, मै तो गिरिधरगोपालको अपना पति और यशोदा मैयाको अपनी सास समझती हूं, चाहे मुझे बाहर निकालो चाहे घरमें रक्खो । इतनी बातके सुनते ही सासके शिरसे पैर तक आग लगगई, यह आगबबूली होकर मीराको एक धक्का दे बोली कि, कोई है इसे यहासे बाहर निकालो ! और उसी मण्डपमें इसे लेजाकर रखदो जहां गिरिधरगोलकी मूर्त्ति रक्खीहुई है ! बार २ गिरिधरगोपाल २ बकती है, यह तो कोई बावली है । यह सुन लोगोंने उसे वहांही बैठाल दिया जहां गिरिधरगोपालकी मूर्त्ति पधराई गई थी। मीराने तो अब मनमाना वरपाया और आनन्दपूर्वक उसी मन्दिरमें रहने लगी ।

कवित्त ।

घरतजों बनतजों नागरीनवेली तजों, डरहूंतजों बंसीराम डरनाडरैहों ।
हेमतजों नेमतजों प्रेम कहो कैसेतजो, प्रेमराजकाज तजि कौनसाजसाजिहों ।
बावरेभये हैं लोग बावराकहत मोकों, बावराकहैया मैं तनक ना बरजिहों ।
कहैया औ सुनैयातजों बापऔभैयातजों, मैयाऔदैयातजौं पै कन्हैयानातजिहों ।

अब तो मीरा आनन्दमें मगन नित्य गिरिधरगोपालकी मूर्त्तिकी सेवा करती है और जो साधु महात्मा उस नगरमें आजाते है उनको बुलाकर सत्कारपूर्वक अपनेयहां रखती है और उनसे सत्सङ्ग करतीहै । जब मीराकी

इस साधुसेवाका प्रचार सर्वत्र होगया और देश २ के साधु महात्मा मीरा के पास आनेलगे, तब दुष्टोंने यह धूम मचाई कि मीरा कुलटा स्त्री है, इसके यहा देश २के पुरुष इकट्ठे रहते है ! यह बात फैलते २ जब उसके श्वसुरके कानमे पहुची तो वह सोचनेलगा कि मेरे कुलमें ऐसी कुलटा बहू धब्बा लगाना चाहती है । पहले तो बहुतसी स्त्रियोंको भेज उसे यों समझाया कि वह साधुओंका संग छोड़दे, नहीं तो उसे पूर्ण दण्ड दिया जावेगा, पर मीराने किसीकी कुछ न मानी और यों उत्तर दिया (मीरा के गिरिधरगोपाल दूसरो न कोई । साधुन संग बैठ बैठ लोकलाज खोई । अब तो बात फैलगई जानत सबकोई ॥

जब उसके श्वसुरने देखा कि मीरा किसी भांति समझाये नहीं समझती है तो यों विचारा कि इसे मारडालो, न यह रहेगी न कुलमें कलंक रहेगा (न रहे बांस न बजे बासुरी) ऐसा विचार अपनी लड़की ऊदाबाई को बुला एक स्वर्णका प्याला हलाहलसे भरा हुआ देकर कहा, बेटी ! तू जा और यह विषका प्याला अपनी भावज मीराके हाथ दे यों कहना कि भाभीजी यह श्यामसुन्दरका चरणामृत है तू इसे पीजा । जब राणाकी बेटीने विषका प्याला मीराके पास लेजाकर चरणामृत कह उसके हाथमें दिया, मीराने चरणामृतका शब्द सुनते ही झट मुंहसे लगा लिया, पर उसकी ननान्दाको दया आई और अपने हाथसे उस प्यालेको पकड़ बोली भाभी ! मत पी ! मत पी ! यह विषका प्याला है । मीराने उत्तर दिया चाहे जो कुछ हो तूतो इसे चरणामृत कहचुकी है, तेरी दृष्टिमें यह विष है पर मेरी दृष्टिमें तो इसकी एक २ बूंदमें श्यामसुन्दर नृत्य करता देखपड़ता है, तू मुझे पीजाने दे कि मेरा मनमोहन मेरे हृदयमें आजावे । इतनी बात कहकर विषका प्याला इसप्रकार पीगई जैसे कोई मिश्रीका शर्बत पीजावे ।

प्यारे सभासदो ! आजतो इसका निरालाही ढङ्ग है, जैसे २ विष चढ़ता जाता है वैसे वैसे गानके रसमें अधिक प्रवेश करती जाती है, यहां तक

कि, श्यामसुन्दरकी छवि गान करते २ एकदम तदाकार होगई है, थोड़ी देरके पश्चात् क्या देखती है कि श्यामसुन्दर मुरलीमनोहर मोरमुकुट धरे, गले बनमाला सँवारे, अपनी प्रतिमासे निकलचले आरहे हैं, हाथ में चौपड़ लिये उसकी शय्यापर जाबैठे हैं, और बोलते है, कि हे मीरे ! आओ हम और तुम चौपड़ खेलें । यह सुन्दर झाँकी और अलौकिक स्वरूपको अपनी शय्या पर देख मीरा मारे प्रेमके विह्वल होगई, शरीरकी सुधि बुधि जाती रही, बीणा हाथसे कहीं गिरी, शिरसे चीर उतरगया भालसे बेंदी खिसकगई, ऐसी शिथिल होगई कि अपने स्थानसे उठा नहीं जाता, रोमावली खड़ी होगई, अश्रुधारा बहनेलगी, कुछ बोला नहीं जाता मनहीमन यह चाहती है कि इस मूर्त्तिको आखोंमें रखलूं अथवा कलेजा चीर हृदयमे डाललूं वा पीजाऊं । जब श्यामसुन्दरने इसप्रकार प्रेमसे मत्त देखा तब अपने हाथसे उसका हाथ पकड़ शय्या पर बैठालिया और बोले हे मीरे ! शरीरकी सुधि सँभालो ! चौपड़ खेलो !

अहा ! दीनबन्धो ! हे करुणाकर ! हे सच्चिदानन्द ! हेजगत्सुन्दर ! हे भक्तवत्सल ! हे प्रणतपाल ! हे मनमोहन ! मदनगोपाल ! कोई दिन ऐसाभी होगा कि जिस प्रकार आपने मीराका हाथ पकड़ अपने समीप करलिया ऐसे मुझदुखियाको भी कभी अपनेचरणोंके समीप बैठालोगे (हंस)

प्यारे सभासदो ! मीराको श्यामसुन्दरसे कान्तभावका प्रेम है, इस लिये श्यामसुन्दरने उस भावकी पूर्त्ति की है। इसभावका वर्णन मैं छः प्रकारके निरोधके कहनेके समय करचुका हूं, यहां फिर कहनेकी आवश्यकता नहीं है ।

अबतो उस दिनसे नित्य श्यामसुन्दर रात्रिको चौपड़लिये प्रगट होते हैं और मीराके संग खेलते है । मीराके लिये यह विषका प्याला परम मंगलका मूल होगया । नाभाजी कहतेहैं कि, (चरणामृत कहि विष दियो भयो सुमङ्गलमूल) जब रानाने यह बात सुनी कि मीरा विष देनेसे मरी नहीं जीवित रहगई और साधुलोग उसके घरमें जैसेके तैसे आतेही रहते

हैं, तब उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि, शहरमें कोई साधू न आने पावे। फाटक पर पहरे बैठालदिये। जब साधुओंका आना बन्द होगया तो मीरा बहुत उदास हुई पर क्याकरे, महाराणा की आज्ञा थी।

इतनेमें अकबरबादशाहने यह सुना कि मीरा एक बाई उत्तम गानेवाली है जिसके समान इस समय भारतवर्ष मे कोई बाई नहीं है। ऐसा सुन तानसेनको साथ लिये गान सुननेकी इच्छासे मीराके पास आया। जब मीरा गिरिधरगोपालके सामने अपने नियमानुसार गान करने बैठी तब उसका मधुरगान सुनकर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और तानसेनने भी बहुत प्रशंसाकी। अकबरने प्रसन्न होकर नौलखके मोतीकी माला श्यामसुन्दरके ऊपर चढ़ादी। शहरके बदमाशोंने राणाके पास चुगली की अब तो मीराका क्या कहना है, अबतक तो साधू ही आते थे अब तो बादशाह तक आने लगे। यह सुन राणा जल भुन गया और मन्दिरके द्वारपर सोलह पहरुओंको नियत करदिया।जिसमें चार २ पहरुए एक समय पहरा देवें, जब ऐसे कुछ काल बीता तो एक दिन श्यामसुन्दर मीराके साथ खेलते २ एक ठहाका देकर पासा फेका और बोले, छः तीन नौ! यह शब्द पहरुओंके कानमे आया, पहरुए घबराये और सोचनेलगे कि, हमलोग दिन रात पहरा देते है फिर यह पुरुष किस ओरसे घुसकर मीराके साथ चौपड खेलरहा है। एक पहरुएने कपाटके समीप जा एक इंच मात्र कपाटको हटा देखा तो देखता क्या है कि, शय्या पर मीरा बैठी है और कहीं कुछ नहीं है, यह केवल मेरा भ्रम है। सच है! श्यामसुन्दरका दर्शन ऐसे साधारण पुरुषोंको हो तो कैसे हो! यह तो अनेक जन्मोंके संस्कारके उदय होनेसे होता है। थोड़ी देरके पश्चात् फिर शब्द आया पौबारह। पहरुओंने विचारपूर्वक देखा तो जाना कि, यह हमारा भ्रम नहीं है अवश्य कोई पुरुष कहीं छुपकर बैठा है! जो हो, इस समय राणाजीके पास चलकर कहदेना चाहिये, ऐसा विचार एक उसी समय राणाके पास दौड़ागया और बोला, राजन्! न जाने कहासे और किधरसे एक पुरुष

मीराके संग चौपड़ खेल रहा है, आप चलकर स्वयं अपने आंखोंसे देखलें, नहीं तो पीछे मैं मारा जाऊंगा। यह सुन राणाजीको अत्यन्त क्रोध आया और वह आगबवूला हो हाथमे नंगी तलवार ले मीराके मन्दिरकी ओर चला और चुपकेसे द्वारपर खड़ारहा, इतनेमें शब्द आया पौ वारह ! अब तो राणा क्रोधमें भरगया और जैसे किवाड़में धक्का मारा, किवाड़के दोनो पल्ले खुलगये, तलवार लिये शय्याकी ओर दौड़ा, देखनेमें तो आया कि कोई पुरुष चौपड़ खेलरहा है, पर मारे क्रोधके उसे यह पहचान नहीं हुआ कि यह श्यामसुन्दर हैं। उधर श्यामसुन्दर झट शय्यासे उठ मूर्त्ति की ओर चले, राणाकी तलवार मीराकी गर्दनकी ओर आई, मीराने देखा कि, अब मैं दो टुकड़े करदी जाऊंगी, ऐसा विचार श्यामसुन्दरके चरणोको थामलिया और बोली, नाथ! अब मुझे त्याग कहां जाते हो ! यदि मैं दो टुकड़े करदी जाऊंगी तो मेरा संसारमें बडा उपहास होगा इसलिये अब मुझे अपने चरणोंके साथ लिये चलो !

प्यारे सभासदो ! उस समय क्याही अद्भुत लीला हुई, श्यामसुन्दर तो मूर्त्ति बनगये, मूर्त्तिका बायां पार्श्व फटगया, मीरा उसमें एकदम लय होगई, राणाने जो पकडना चाहा तो कुछभी हाथ न लगा, केवल मीरा की साडीका एक खूंट हाथमें है जो गिरिधरगोपालके वायें पार्श्वसे वाहर रहगया है। अब तो न मीरा है, न श्यामसुन्दर हैं। राणा है और गिरिधरगोपालकी मूर्त्ति है। राणाके हाथमे एक साडीका खूंट है। यह लीला देख राणा भौचक्कासा रहगया और घबराकर आंखें बन्द करलीं। राणाभी साधारण पुरुष नहीं था, बहुत प्रेमी भक्त था, गिरिधरगोपालके सामने ध्यानावस्थित हो प्रार्थना करने लगा, भगवन् ! यह बात क्या है ? मेरी समझमें नही आई। जब बहुत प्रार्थना की तब मंदिरसे शब्द आया, राणा ! तूने मीराको कुलटा समझली और उसे मारने आया, इसका तुझे घोर पाप लगा । तू नही जानता कि मीरा साक्षात् आद्याका अवतार थी, उसको मैने अपने अङ्गमें मिला लिया। राणाने फिर प्रार्थना

की, स्वामिन्! मेरे अपराध क्षमा हों और मुझे एकबार फिर मीराका दर्शन मिले। उत्तर मिला नहीं! इस शरीरसे अब मीराका दर्शन नहीं मिलेगा, यदि तुझे दर्शन करना है तो जहां मीरा आई तूभी चला आ! ऐसा सुन रानाने, हा मीरे! हा मीरे! कहकर एक छातीमें मुक्का मार बोला, मै नहीं जानता था तेरी जैसी आद्या मेरे घर आई थी। मैंने तुझे कलंक लगा बध करना चाहा, अब इस कलंकित शरीरको त्यागदेना ही उचित है। ऐसा कह मूर्छा खा गिरा और एकदम प्राण त्याग गोलोक को सिधारगया। क्यों न हो! जिस घरमें एक हरिभक्त हो अपने बड़ोंको भी तारदे।

किसी २ भक्तमालवालेने ऐसा नहीं लिखा कि, मीरा गिरिधरगोपाल की मूर्त्तिमें राणाके सामने लय होगई, और राणाने अपना शरीर छोड़दिया, बरु ऐसा लिखा कि, जिस समय राणा खड्ग लेकर मीराके घरमें घुसा, वहां किसी पुरुषको नहीं पाया, केवल इतना देखा कि गिरिधरगोपाल हाथ फैलाये चौपड़ लिये मीराकी ओर देखरहे हैं, इतना देख राणा चुपचाप लौटगया।

ऐसे २ अनेक उपद्रवोंके बार २ होने से मीरा उदासहोकर वृन्दावनको चलीगई, कुछ दिन वहां निवास कर श्री द्वारकाजीको पधारगई। जबसे मीराजी राणाकी राजधानी छोड़गई तबसे राज्यमें नानाप्रकारके उपद्रव होने लगे, यहांतक कि अकबर बादशाहने चित्तौरगढ नामक क़िलेको ध्वस्तकर कुछ काल तक अपने अधीन कररखा।

इन उपद्रवोंको देख राणाने मीराका प्रभाव समझा और अपने मनुष्योंको द्वारका भेज मीराको बुलवाने चाहा, पर मीराजी श्री रणछोड़जी के वियोगको नहीं सह सकती थीं, इसलिये जब मनुष्योंने वहांसे लेजाने के लिये बहुत हठ किया तब प्रार्थना कर श्री रणछोडजीकी मूर्त्तिमें लय होगई। इसमे और जो मै पहले कहआया हूं उसमें थोड़ा ही अन्तर है।

प्यारे सभासदो ! आज मैंने आपको साकार निराकार उपासनाका भेद कहसुनाया । यह ऐसा गम्भीर विषय है कि घटे दो घंटेमे क्या कोई कहकर समाप्त करसकता है? कदापि नहीं । यह विषय अपार है, यह कहने सुननेका केवल नहीं है, यह करनेका विषय है, जिसकी जो इच्छा और जैसा अधिकार है करे, साकार औ निराकार दोनोको समझकर करे, कुछ दिन करने ही से यथार्थ समझमे आवेगा, विना किये कुछ फल नहीं होसकता, व्याख्यान तो केवल श्रद्धा दिलानेके निमित्त हैं, पर यथार्थ फल अर्थात् परब्रह्मजगदीश्वर श्यामसुन्दर जगत्पति की प्राप्ति तो करनेहीसे होगी, इतना स्मरण रहे ।

वक्ताका समर्पण ।

नाथ ! जैसीकृपा आपने मीरा और राणाके ऊपरकी है, ऐसी कभी मुझ अधम पर भी करोगे वा नहीं ? कबतक इस अपवित्र मांसके पिण्ड में दिनोंको विताना पड़ेगा । कबतक वालकोंके सदृश इस झूठे खिलौनेमें खेलना पड़ेगा ? कबतक इस अंधेल पिंजरेमें पर मारतेहुए और फरफराते हुए चीखना पड़ेगा ? क्या कभी इस दीनकी ओर कृपाकटाक्ष करोगे वा ऐसेही विताओगे ? ॥ हंस ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

{ वक्तृता ९ वीं }
{ Lecture 9 th }

प्रतिमा

ओ३म् येन पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे। तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधिच ब्रूहि देव ॥

ओ३म् सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

यस्याङ्केचविभातिभूधरसुतादेवापगामस्तके ।
भालेबालविधुर्गलेचगरलंयस्योरसिव्यालराट् ॥
सोऽयंभूतिविभूषणःसुरवरःसर्वाधिपःसर्वदा ।
शर्वःसर्वगतःशिवःशशिनिभःश्रीशङ्करःपातुमाम् ॥

आज बड़े आनन्दकी वार्त्ता है कि हमलोगोंके धर्मकी उन्नति निमित्त यह सुन्दर सभ्यमण्डली इस शुभस्थानमें सुशोभित होरही है । आज मेरी दृष्टि में यह सुभग स्थान एक मनोहर मानसरोवर* के सदृश देख-पड़ता है, जिसके मध्य सनातनधर्मरूप निर्मल जल धीरे २ प्रवाह कररहा है । अर्थ, धर्म, काम, औ मोक्ष जिसके चारों घाट हैं । ज्ञानकी सातों भूमिकायें जिसकी सात सीढ़ियां हैं, जिनके द्वारा जिज्ञासु रूप स्नान करनेवाले धीरे २ इस सरोवरके जलमें उतरकर अपने अन्तःकरणके काम क्रोधादि मलोंको धो धोकर निर्मल होरहे हैं । इस सुन्दर मानसरोवरके प्रेमरूप तट पर हमारे सभासदोंके हृदय रूप हंस हरिनामरूप मोती के चुगनेकी प्रतिज्ञामें एकटक लगाये बैठे हैं, पर इस मानसरोवरके ऐसे निर्मल तट पर निन्दक समाज, बुद्धिहीन, धर्म विमुख रूप काक और बक इत्यादि कदापि नहीं आसकते, क्योंकि इस सरोवरके अत्यन्त निर्मल होनेके कारण उनके भोजन निमित्त विषयकथा रूप शंबुकी (घोंघी) और जलूका (ठेंगी) इत्यादि यहां नहीं हैं, जो उनको प्रसन्न करसकें । अहा ! कैसा सुन्दर सुहावना दृश्य है कि, इससरोवरमें ज्ञानविज्ञानके चित्रविचित्र कमलों पर यम नियम रूप भ्रमर कैसी मधुर ध्वनिसे शब्द कररहे हैं कि—

हरे राम ! हरे राम ! राम राम ! हरे हरे !
हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! कृष्ण कृष्ण ! हरे हरे !

प्रिय सभासदो ! क्या कहूं ? जी तो चाहता है कि चुप बैठरहूं औ

---

* संस्कृतमें " मानससर " वा " मानससरोवर " शुद्ध शब्द है जिसका अपभ्रंश कर भाषामें मानसरोवर कहते हैं ।

अपने ईश्वरका भजन करूं क्योंकि कहावत है कि (नक्कारखानेमें तूती का शब्द कौन सुने) इस घोर कलियुगमें जहां चारों ओरसे नास्तिकत्वका गन्ध फैलरहा है, नवीन प्रकाशकी अधिकतासे आखोंमें चकाचौंध लगरही है, सब छोटे, बड़े, विद्वान, मूर्ख, प्रतिमापूजनके विरोधी होरहे हैं, वहां एक इस मेरी छोटी जिव्हासे निसरेहुए वचनोंको कौन सुने ! तथापि समयानुकूल थोड़ासा ढारस बांधकर कुछ कहनेको उत्सुक होता हूं । एकाग्रचित्त हो श्रवण कीजिये ।

प्रिय सज्जनो ! जो इस प्रतिमापूजनके विरोधी हैं वे यों कहाकरते हैं कि, प्रतिमापूजन व्यर्थ है, यह नवीन लोगोंका चलाया हुआ है, वेदमें कहीं भी प्रतिमापूजन नहीं है, दो चार भोले भाले हिन्दुओंको छोड़ अन्य किसी धर्मवाले प्रतिमापूजन नहीं करते ।

उत्तर यह है कि, प्रतिमापूजन नवीन नहीं है । सनातन धर्म है । वेदोंमें प्रतिमापूजन है । पृथिवीमण्डलमें जितने सच्चे धर्मावलम्बी हैं सब प्रतिमापूजन करते हैं । हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, बौध इत्यादि सब किसी न किसी रीतिसे प्रतिमापूजन करतेही हैं । इन वचनोंको विलग २ मैं भली भांति प्रमाण और युक्तियोंसे पीछे सिद्ध करूंगा, पहले इस विषय में दोचार बातोंका जानना अत्यावश्यक है जो मैं अपने सभासदोंको श्रवण करादेना उचित समझता हूं ।

प्रथम तो यह जानना चाहिये कि, प्रतिमाशब्दका अर्थ क्या है ? किस धातुसे यह शब्द बना है ? और मुख्य तात्पर्य इस शब्दका क्या है ? सुनिये ! इस शब्दमें " प्रति " उपसर्ग है और " मा " धातु है, जिसका अर्थ मापना है, इस " मा " धातुसे " मीयते " बनता है और "मीयते " में " प्रति " उपसर्गके मिलादेनेसे " प्रतिमीयते " होता है अर्थात् " प्रतिमीयतेऽनया इति प्रतिमा " (करणे अङ्) अर्थात् मापलेवें, समान करलेवें, बराबर करलेवें, तौललेवें, तुलनाकरलेवें, जिससे वह है प्रतिमा । ये इस शब्दके वाक्यार्थ हुए । प्रतिमानम्, प्रति-

विम्बम्, प्रतियातना, प्रतिच्छाया, प्रतिकृति, औ प्रतिनिधि, ये सब स-मान एक पर्य्यायके शब्द हैं (देखो अमरकोश) फिर प्रतिकाय और प्रतिरूप भी इसीके पर्य्यायमें आते है ! अब मैं आपको इस प्रतिमाशब्द के लक्ष्यार्थों को स्पष्ट करदेखाता हूं ।

प्रतिमाशब्दके लक्ष्यार्थ ।

(१) किसी अप्रमेय वस्तुमे अपनी इच्छानुसार एक अंश जिसके द्वारा निकाललेवें उसे कहिये प्रतिमा !

(२) किसी पूर्ण वस्तुसे एक अंश किसी कार्य्यसाधनके लिये नि-काल लेवें, उस अंशको भी कहिये प्रतिमा ।

(३) किसी वस्तुके समान आकृतिकी एक दूसरी वस्तु चाहे उस से छोटी हो वा वडी, बना लेवें, उसे कहिये प्रतिमा ! जैसे लडकोंके खेल-नेकी रेलगाड़ी ।

(४) किसी वस्तुकी छाया जो किसी प्रकाश द्वारा उत्पन्न हो, उसे कहिये प्रतिमा ! जैसे धूपमें वा रात्रिको दीपकके प्रकाशमें अपने शरीरकी छाया ।

(५) किसी वस्तुकी छाया किसी तैजस पदार्थमें देखपड़े उसे क-हिये प्रतिमा । जैसे दर्पण वा चादी, सोने, हीरे, इत्यादिमें अपना मुख !

(६) किसी अदृश्य पदार्थके साधनके निमित्त जो मनमाना चिन्ह बनालेवें, उसे कहिये प्रतिमा ! जैसे अ, क, ख ग घ इत्यादि वा A, B, C D इत्यादि वा ٮ८ ب ! इत्यादि, अथवा विन्दु (•) औ (—) रेखा इत्यादि ।

(७) आलोकलेख्ययंत्र (Photograph) द्वारा किसी मनुष्यका वा किसी अन्य साकार वस्तुका विम्ब लेलेवें उसे कहिये प्रतिमा ।

(८) विन्दु, रेखा, नील, पीतरंग इत्यादिसे पत्र पर, दीवालो पर वा वृक्ष पर, जो नाना प्रकारकी आकृतिया बना लेवे, उसे कहिये प्रतिमा

(९) प्रस्थल, काष्ट, मिट्टी, वा किसी धातुकी एक मूर्त्ति किसी प्र-

सिद्ध व्यक्तिकी स्मृतिके लिये किसी प्रसिद्ध स्थान पर बनाकर रखदेवें, उसे कहिये प्रतिमा। जैसे श्रीमती महारानीविक्टोरियाकी प्रतिमा (statue) कलकत्ते औ बम्बई इत्यादि शहरोंमें।

(१०) किसी महापुरुषकी स्मृतिके लिये उसकी मूर्त्ति अथवा उस के सम्बन्धकी कोई भी वस्तु बनालें, उसे कहिये प्रतिमा। जैसे मुसलमानों का मुहर्रम ( ) में ताजिया बनाना और ईसाइयोंके चर्चमें त्रिशूल (सलेब) की आकृति बनाना।

(११) किसी महापुरुष वा किसी अवतारकी स्मृति, स्तुति, वा पूजनके निमित्त किसी प्रकारकी मूर्ति बनाकर मन्दिरोंमें वा अपने घरोंमें रखलेवें उसे कहिये प्रतिमा।

(१२) काल और स्थानका बोध करानेके निमित्त एक मानीहुई आकृति बनाकर रखलेवें, उसे कहिये प्रतिमा। जैसे घड़ी Watch, Clock, और किसी देशका आलेख्यपत्र (नक़शा Map)।

(१३) अपने ध्यानके अन्तर्गत अपनी वृत्तिमें किसी अपने पूज्य माता, पिता, गुरु अथवा किसी अपने प्रिय मित्र, पुत्र, दारा इत्यादिकी मूर्ति कुछ कालतक दृढ करलेवें और उसीकी स्तुति वा पूजन करें अथवा उसके मिलनेके सुखको स्मरण कर आनन्द औ प्रेममें मग्न होजावें अथवा उसके विरहमें रोवें, उसे कहिये प्रतिमा। इसको **मनोमयीप्रतिमा** कहते हैं इस प्रतिमावालेकी सिद्धि अन्य प्रकारके प्रतिमावालोंसे शीघ्र होती है, और अपने ध्येयकी प्राप्ति शीघ्र करलेता है।

(१४) किसी एक स्थूलकारणसे नाना प्रकारके स्थूलकार्य्य भिन्न २ व्यवहारके साधन करनेके निमित्त बनालिये जावें, उन्हें कहिये प्रतिमा। जैसे लोहेसे कोदाल, हल, खड्ग, छुरा इत्यादि। कपाससे धोती, चादर, चपकन, टोपी इत्यादि और स्वर्णसे कुण्डल, कंकण इत्यादि।

(१५) स्वप्नमें जो इसी जाग्रतके विश्वका बिम्ब चेतन तेजस आत्मामें पडनेसे भिन्न २ रूप बनजाते हैं, उनको कहिये प्रतिमा।

मुख्य तात्पर्य यही निकलता है कि किसी अप्रमेय वा अदृश्यके मानने के लिये अपनी इच्छानुसार कोई वस्तु उसके समानका बनालेवें, उसकी छायाके सदृश बनालेवें, अथवा उसके स्थानपर उसका प्रतिनिधि बना लेवें, उसको (प्रतिमा) शब्द कहकर पुकारते हैं । अब मैं आपको यह देखलाता हूं कि, इस संसारके व्यवहार सामाजिक (Social) राजनैतिक (Political) धार्मिक (Religious) किसी प्रकारके भी क्यों न हों बिना प्रतिमा सिद्ध नहीं होसकते, अर्थात् सर्वप्रकारके व्यवहारोंके शीघ्र सिद्ध करनेके लिये केवल प्रतिमा ही की आवश्यकता है । अभी आप प्रतिमासे मन्दिरवाली प्रतिमा न समझ़लीजियेगा । मैं आपको धीरे २ यह देखलाना चाहता हूं कि प्रतिमा किन २ वस्तुओंको कहते है ! और उसका व्यवहार किस २ प्रकार कहा २ होता है ? सो एकाग्रचित्त हो सुनिये। आप स्वयं समझजाइयेगा कि प्रतिमा सर्वत्र व्यापक है और सब प्रकारकी विद्याके अभ्यासके लिये प्रतिमा बनानेकी आवश्यकता है। यदि आप कभी स्कूलोंमें पढ़े हों तो देखाहोगा, यदि नहीं देखाहो तो जाइये देखआइये । वह जो सामने स्कूल (मदरसा, पाठशाला) देखपड़ता है उसके बीचवाले दालान (हौल Hall) में एक वहुत बड़े लम्बे चौड़े पत्र पर हिन्दुस्थानका रूप बनाया हुआ है, जिसके उत्तर हिमालय पर्वत है, दक्षिण लंका औ समुद्र है, पूरब औ पश्चिम दोनों ओर सागर बनेहुए देखपड़ते है, इस देशालेख्य अर्थात् नक़शा (Map) में गंगा, यमुना, सतलज, रावी, चनाव, झेलम, सिन्ध, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी इत्यादि सब नदियां बनीहुई हैं । हिमालय, विन्ध्याचल, निलगिरी इत्यादि पर्वत बनेहुए है । कलकत्ता, हुगली, वरदवान, पटना, बनारस, कानपुर, देहली, लाहौर इत्यादि शहर बसेहुए हैं अर्थात् सम्पूर्ण हिन्दुस्थान जोकमसे कम ५२४०००० बावन लाख चालीस हज़ार वर्गमीलका है, वह केवल चार पांच हाथ लम्बे चौड़े पत्र पर है । यह क्या है ? हिन्दुस्थानकी प्रतिमा है ! थोड़ी दूर और हटकर इस दालानकी पश्चिम ओर स्कूल का पुस्त-

कालय (Library) है, उसमें कांचका एक बड़ा गोला रखा है, जिसमें स-म्पूर्ण पृथिवीमंडल बना हुआ है। एशिया, यूरोप, आफ्रिका, औ आमेरिका सब विलग २ उसी एक कांचके गोलेमें बने देख पड़ते हैं। यह क्या है? सम्पूर्ण पृथिवीमण्डलकी प्रतिमा है। इनको प्रतिमा क्यों कहते हैं? सो मै आपको प्रथम बता चुका हूं कि, किसी पदार्थकी छाया विम्ब वा तदा-कार वस्तुको उसकी प्रतिमा कहते हैं।

अब पूछना चाहिये कि स्कूलमें रखीहुई इन दोनों प्रकारकी प्रतिमा-ओंसे आप क्या लाभ उठाते हैं? और कौनसा व्यवहार सिद्ध करलेते हैं? तो अधिक उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं है, सभी जानते है कि स्कूलोंके विद्यार्थी छोटे २ बच्चे इनही प्रतिमाओंको कुछ दिन अभ्यास करनेसे स-म्पूर्ण हिंदुस्थान अथवा सम्पूर्ण पृथिवीमंडलके ज्ञाता होजाते हैं। आप उनमे घरबैठे बैठाये पूछलीजिये कि, लन्दन, कलकत्तासे किधर है? फ्रांसका देश रूससे किस ओर है? यदि हिन्दुस्थानसे जापान अथवा इंगलैंड सूखे मार्गसे जानाहो तो कौन २ देश बीचमें पड़ेंगे? और जो समुद्र होकर जाना होतो कौन २ समुद्र बीचमें पडेगे? एक छोटा बच्चा जो चौथी श्रेणी (4th. Class) का पढ़नेवाला है, ठीक २ बतादेगा!

प्यारे सभासदो! देखिये तो सही कि, उस छोटे बच्चेको यदि आप रेल अथवा जहाज पर चढ़ाकर पृथिवीकी चारों ओर फिराते तो एक २ बच्चेके पीछे आपको हजारों रुपये व्यय करने पड़ते और बरसों समय जाता तौभी इतना बोध नहीं होता जितना कि इस प्रतिमासे बोध हुआ। इसी प्रकार यदि आपको देहली से मुलतान जाना होतो आप चारपैसे का टाइमटेब्ल लेकर घरबैठे बैठाये यह समझ सकते हैं कि, कौन मार्ग किस शहर होकर गया है? औ किस मार्ग होकर आप मुलतान पहुंच जावेंगे? कितने रुपये रेल भारा आपको लगेंगे। टाइमटेब्ल क्या है? रेलके सड़कोंकी प्रतिमा है। प्यारे सज्जनो! ये सब बातें आपको केवल प्रतिमासे समझमें आजाती हैं। आप प्रत्यक्ष देखरहे हैं कि, प्रतिमा आप

का कैसा उपकार कररही है। साधकोंको इस प्रतिमासे कितना लाभ है? हमारे बहुतेरे नवीन प्रकाश (नई रोशनी) वाले यों कहबैठते है कि, जब तुम मन्दिरमें अग्निदेवकी प्रतिमा बनाते हो तो यदि तुम्हारा देवता अग्नि सच्चा है तो तुम्हारा मन्दिर क्यों नहीं जलजाता? जब तुम गंगाजी की प्रतिमा बनाकर घरमें रखते हो तो तुम्हारा घर क्यों नहीं बहजाता? प्यारे सज्जनो! बड़े शोककी बात है कि, ऐसे २ निर्मूल प्रश्न किये जाते हैं, ऐसे प्रश्न करनेवालेके हृदयमें ये बातें घुसी पडी है कि, जो जिसकी प्रतिमा हो वह अपने मूल पदार्थ (जिसकी वह प्रतिमा है) समान चेष्टा करे अर्थात् यदि किसी मनुष्यकी प्रतिमा है तो खावे, पीवे, बोले। कुत्ते की प्रतिमा है तो कुत्तेके समान भौंके। प्यारे श्रोताओ! ऐसे प्रश्न करने वालोंने प्रतिमाका अर्थ ही नहीं समझा। भला यह कब होसकता है कि, जो चेष्टा मूल पदार्थ में है वही उसकी छाया अर्थात् प्रतिमामें भी हो, यदि ऐसाही हो तो जो हिन्दुस्थानका नकशा दीवाल पर टगाहुआ है वह एकदम जलजावे अथवा एकदम गलजावे क्योंकि जैसे पत्र पर ज्वालामुखी पर्वत है, जिनसे ज्वाला निकलती है और गगा, यमुना, बहरही है, फिरतो चार हाथका पत्र इतने पानी औ आगमें कैसे ठहर सकता है? पर नहीं प्यारे! वह तो केवल प्रतिमा है, जिस कार्यके साधनके लिये वह बनाई-गई है उसे पूरी रीतिसे सोलहआना साङ्गोपाङ्ग सिद्ध करदेती है, अर्थात् विद्यार्थियोको सम्पूर्ण भूगोलकी विद्या बैठे बैठाये उसी प्रतिमासे प्राप्त होजाती है। इसी प्रकार आपके बँगलोमे बड़े २ बीर, गुणी, साहसी, परोपकारी, राजा, महाराजा, गवर्नर जनरल, कमिश्नर, जज, कलक्टर इत्यादिकी प्रतिमाये बनीहुई है, उनके देखनेसे वीरता, नानाप्रकारके गुण, साहस, पराक्रम इत्यादिके प्राप्त करनेकी इच्छा होती है अथवा उनकी स्मृति होती है। अर्थात् प्रतिमा से जितना कार्य सिद्ध होना है उतना तो अवश्य सिद्ध होही जाता है।

अब मन्दिरोंमे जो राम, कृष्ण, नरसिंह, महावीर, गणेश, महेश इत्यादि

की प्रतिमा बनीहुई हैं उनसे हमलोगोंका क्या कार्य सिद्ध होता है ? उन से घरबैठे बैठाये ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति कैसे होती है ? मै थोड़ा पीछे बताऊंगा, पहले मै प्रतिमाके विषय दो एक उदाहरण देकर यह देखलादेता हूं कि प्रतिमा बनानेकी आवश्यकता क्यों है ।

प्यारे सभासदो ! प्रतिमा बनानेकी आवश्यकता क्यों है ? सो सुनिये । जब किसी गंभीर औ सूक्ष्म विद्याकी प्राप्तिके निमित्त विद्यार्थियों को समझानेकेलिये गुरु (Master) को और कोई उपाय नहीं मिलता तो प्रतिमा बनानेकी आवश्यकता पड़ती है । जैसे रेखागणित Geometry (اقلیدس) एक अत्यन्त सूक्ष्म औ गंभीर विद्या है, इसमें विना प्रतिमा कामही नहीं चल सकता, आपने इस विद्या पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको देखा होगा कि स्कूलों मे अथवा अपने घरोंमें बैठकर प्रतिदिन घंटों बकते हैं

प्रथम परिच्छेद (1st Defination)

" A point is that which has no part and has no magnitude "

अर्थात् विन्दु वह है जिसका स्थान तो हो पर न उसका खण्ड हो सके औ न उसका कुछ प्रमाण हो । उर्दू में यों पढते हैं

نقطہ وہ ہے جسکے جگہ تو مقرر ہو مگر نہ اسکا ٹکڑہ ہوسکے اور نہ اسکا کچھ مقدار ہووے

द्वितीय परिच्छेद (2nd Defination)

Line is a length without breadth

रेखा वह है जिसमें केवल लम्बाई हो पर चौड़ाई कुछभी नहो ।

उर्दूमें पढ़तेहैं

خطوہ ہے جسمیں صرف لمبائی ہووے مگر چوڑائی نہووے

प्यारे श्रोताओ ! जो लोग इस विद्याके जाननेवाले है उनसे पूछिये कि बच्चे तो घरमें बैठकर हजारोंवार जिव्हाको दुख देकर बकतेरहे कि, विन्दु वह है जिसका टुकड़ा न होसके, न उसका कुछ प्रमाण हो,

पर जब स्कूलमें मास्टर साहबके पास समझने गये तब मास्टर साहबने क्या अंधेर किया कि, एक तोपके गोलेके बराबर अथवा बन्दूकके छर्रेके बराबर एक विन्दु (Point) बोर्ड (तख्ते) पर बनाकर बोले कि, Boys ! Let it be granted that A (•) is a given point अर्थात् ए मेरे बालको! मानलो! कल्पना करलो ! कि (A •) एक दी हुई विन्दु है । भला सोचिये तो सही कि मास्टर साहबने इतनी बड़ी विन्दुको बतलाई ! क्या इसका टुकड़ा नहीं होसकता ? क्या इसका प्रमाण नहीं है ? आप कहिये तो मै (•) इस विन्दुके हजारों टुकड़े करदूं अर्थात् इसका टुकड़ा करता चला जाऊंगा, यह छोटी से छोटी होती चलीजावेगी, परन्तु फिरभी जब आप चाहेंगे तो उस छोटीसे छोटीका भी टुकड़ा करदेंगे । कितनीही छोटी से छोटी विन्दु आप बनावें जैसे (• • • • • • •) फिरभी जो सबसे छोटी आप देखते है उसका भी टुकड़ा होसकता है । जितने विद्वान् हैं सब समझते हैं कि " यश्चदैर्घ्येण विस्तरेण स्थौल्येनच रहितः शक्यतेचलक्षयितुं सोऽयं विन्दुः " अर्थात् निश्चय कर के जो पदार्थ लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, से रहित हो, केवल लक्ष्यमात्र हो सो ही विन्दु है, सो यथार्थ विन्दु पत्र पर अथवा तख्ते पर बनही नहीं सकती, वहतो केवल ध्यानमें ही बनीहुई है । यदि ब्रह्मा भी मास्टर (पढ़ानेवाला) बनकर किसी स्कूलमे आजावे तो वह भी यथार्थ विन्दुको तख्ते पर वा पत्र पर बना नहीं सकता। इसी कारण इस विद्याके पढ़ाने वाले विद्वानोंके मुंहसे जब निकलेगा तो यही निकलेगा औ पुस्तकोंमें भी यही लिखा है।कि(Let it be granted that A(•) is a given point अर्थात् मानलो कि यह (A •) एक मानीहुई विन्दु है । कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस विन्दुको बनाकर सारी रेखागणितकी विद्या बताई जाती है वह केवल एक मानीहुई विन्दु है । यथार्थ विन्दुके समझानेके लिये एक प्रतिमा बनीहुई है । इसी प्रकार (Line) रेखाके विषय लड़के हजारों बार मुंहसे बकते हैं कि (Line is a length without breadth)

अर्थात् रेखा वह है जिसमें केवल लम्बाई हो चौडाई न हो । पर प्यारे सभासदो ! विचारिये तो सही कि पृथिवीमण्डलमें ऐसाभी कोई पढ़ानेवाला मिलसकता है जो एक पतलीसे पतली रेखा भी बिना चौड़ाईके बनादेवे, जव कोई रेखा पत्र पर बनेगी तो अवश्य उसमे कुछ न कुछ चौड़ाई पाई जावेगी, इस बातको सब विद्वान मानेंगे अर्थात् जोही दशा विन्दु की है वही रेखाकी भी है । फिर यदि कोई विद्यार्थी (नई रोशनी वालोंका वेटा) मास्टर साहवसे कहपड़े कि मेरे बापने प्रतिमा नहीं मानी है इसलिये मैं भी इस विन्दु (Point) औ रेखा (Line) की प्रतिमा नहीं मानूंगा । मास्टर साहव ! यह जो आपने बनाई है सब मानीहुई विन्दु औ रेखा हैं, यथार्थ विन्दु औ रेखा नहीं हैं, ये तो उनकी प्रतिमा है सो मुझे यथार्थ विन्दु औ रेखा बनाकर पढ़ाइये तो मैं पढूं नही तो घर बापके पास जाता हूं , कहदूंगा कि स्कूलोंमें प्रतिमा पढ़ाईजाती है इसलिये मैं नहीं पढ़ता ।

प्यारे सभासदो ! बताइये तो सही ! इस नईरोशनीवालेके बेटेकी क्या दुर्दशा होगी ? न कोई ऐसा पढ़नेवाला मिलेगा, जो विना प्रतिमा बनाये यथार्थ विन्दु औ रेखा को समझा सके, न बेचारा लड़का पढ़ेगा । जब नहीं पढ़ा तो न एन्ट्रेन्स पास करेगा न एफ़. ए. (F A.) न वि. ए. (B A) न एम ए. (M A), फिरतो बेचारा वालक सम्पूर्ण आयु (Life) भरके लिये मूर्ख ही रहेगा, पर जो बच्चा अपने मास्टर साहवकी बनाईहुई विन्दु औ रेखाकी प्रतिमा को पढ़ेगा वह सर्व प्रकार विद्वान् होकर प्रौफेसर (Professor) अथवा जज़ कलक्टर बनकर आयुभर आनन्द करेगा ! अब विचारिये तो सही कि, प्रतिमाने कितना उपकार किया कि, एक परम निर्धनके बच्चेको भी किसी समय ऐसा धनवान वनादिया कि उस धनके द्वारा सैकड़ों लँगड़ों लूलोंका प्रतिपालन कर एक वहुत बड़े उपकार औ धर्मको उपार्जन करताहुआ अन्तमें उस जगदीश्वरका प्यारा बनगया ।

प्यारे सभासदो ! बहुतेरे नवीन मतावलम्बी यों भी कहपड़ेंगे कि जितनी प्रतिमा (नकशा, भूगोल, विन्दु रेखा इत्यादिकी) अबतक आपने बनाई वे सब वस्तु साकार हैं, अर्थात् हिन्दुस्थान, पृथिवीमंडल, विन्दु तथा रेखा साकार है, इसलिये इनकी प्रतिमा बनाईगई अर्थात् साकारकी प्रतिमा बन सकती है निराकारकी नहीं ! प्यारे सभासदो ! जैसे मैंने साकारकी प्रतिमा बनाकर आपको देखलाई ऐसे ही निराकारकी भी प्रतिमा बनसकती है (निराकारसे आपका इस स्थानमें तात्पर्य केवल आकार रहित होनेसे है) अर्थात् जिसका आकार न हो । सो सुनिये । शब्द जो आपके मुंहसे निकलते है क्या हैं ? आकार रहित है, क्योंकि किसी शब्दके बोलते समय केवल थोड़ीसी हवा मुंहसे निकल कर कानके परदों पर धक्का देती है उससे एक शब्द बनता है, पर जो शब्द बनता है उसका कुछ आकार नहीं होता, केवल एक ध्वनि(आवाज) है। यदि आप यह कहो कि, हम आकार उसीको कहते हैं जो उस शब्दका अर्थ है, जैसे घट, पट, इनमे घटका आकार वही मिट्टीका पात्र है जिस से पानी भरते है, औ पटका आकार वही कपासका विकार कपड़ा है जिससे बदन ढकते है, इसलिये शब्दके भी आकार है । तो प्यारे बुद्धिमानो! मैं भी आपहीके समान थोड़ी देरके लिये शब्दका आकार मानभी लूं तौ भी आपको अवश्य यही कहना पड़ेगा कि वह शब्द जिन अक्षरोंके मेलसे बनता है वे अक्षर तो निराकार है, केवल ध्वनि (आवाज) है, उनका तो कोई आकार नहीं है, जैसे आपने कहा चारपाई खाट, पलंग, सेज, बिछावन बिस्तर, इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि इन शब्दोंसे एक आकारवाली वस्तु समझी गई, जिसपर सोते हैं, पर क्या आप इन शब्दों में जो अक्षर है उनका भी आकार बतावेंगे ? भला बताइयेतो सही कि चारपाईमें (चा, र, पा, ई,) चार अक्षर हैं, उनमें चा का क्या आकार है ? र, पा, ई, इन तीन अक्षरोंके क्या आकार है ? क्या आप कह सकते हैं कि (चा) खाटके चारों पैरोंको कहते है, (र) उसकी पाटी

हआरा

को कहते हैं, (पा) उसकी नींवारको कहते हैं, और (ई) उसकी बिनावटको कहते हैं, कदापि नहीं! आप यदि बुद्धिमान हैं तो कभी ऐसा नहीं कहसकते, आपको तो माननाही होगा कि अक्षरोंका कोई आकार नहीं वे केवल ध्वनि मात्र हे, निराकार हैं, बुद्धिमानोंने अपने २ देशमें सर्वप्रकारकी विद्या प्रचार करनेके निमित्त अपनी इच्छानुसार एक (अ) के अनेक रूप बनाये। नागरी औ संस्कृतवालोंने (अ) एक बतकके पांवके समान बनाया, उसीके जनानेके लिये अंग्रेजीके विद्वानोंने (A) कागलेके नोलके समान बनाया, फिर उसीके लिये फ़ारसीवालोंने (ا) एक लठके समान बनाया । इन चिन्होंको (अ) की प्रतिमा कहेंगे वा नहीं ! आपको कहना पड़ेगा कि प्रत्येक भाषामें एकही अक्षरके भिन्न २ अनेक रूप हैं सो सब अक्षरके प्रतिनिधि (Representative, substitue) अर्थात् प्रतिमा है, प्रतिमाका पर्याय शब्द प्रतिनिधि है, यह मैं पहले आपको सुनाचुका हूं, इसलिये जितने अक्षर है सब प्रतिमा हैं, जिनसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक दूसरेको विद्वान बना सकता है । जो प्राणी इन अक्षरोंकी प्रतिमाको नहीं पढ़ेगा वह कोरा मूर्ख निरक्षरभट्टाचार्य बनारहेंगा और प्रतिमा नहीं सेवन करनेकी हानि से जो दुःख होते हैं सो सब उसे भोगने पड़ेंगे । न उसे धन होगा, न बुद्धि होगी, (विद्या विहीनः पशुः) विद्या से रहित पशुतुल्य रहेगा। ईश्वरको भी नहीं पहचान सकेगा । फ़ारसीवालोंने भी कहा है कि (بے علم نتواں خدارا شناخت)
(बे इल्म नतवा खुदारा शनाख्त) अर्थात् बिना विद्या कोई प्राणी ईश्वरको भी नहीं पहचान सकता ।

प्यारे सभासदो ! अब आप प्रत्यक्ष देखरहे हैं कि निराकारकी भी प्रतिमा बन सकती है ।

अक्षरावगमलब्धये यथा स्थूलवर्तुल दृशत परिग्रहः ।
शुद्धबुद्धपरिलब्धये तथादारुमृन्मयशिलामयार्चनम् ॥

अर्थात् जैसे अक्षरोंके जाननेके लिये नाना प्रकारके स्थूल वर्तुल

(गोलाकार) टेढ़े कुबड़े परिग्रह (ﺑﻌﺾ) देखे जाते हैं, इसी प्रकार उस शुद्ध बुद्ध परब्रह्म के बोधके निमित्त लकड़ी, मिट्टी, औ पत्थरकी प्रतिमाओंकी पूजा सेवा कीजाती है । पहले मैंने आपको साकार वस्तुओंकी प्रतिमा देखाई, अब निराकारकी भी प्रतिमा बनती है भली भांति आप समझगये होंगे, मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि, साकार और निराकार दोनोंकी प्रतिमा बन सकती है ।

अब चलिये हम लोग थोड़ा और आगे चलें औ यह देखें कि प्रतिमाके व्यवहार कहां २ होते है । चलिये नाजके गोलेकी ओर चलें जहा दयाराम बनियेकी दुकानमें हजारोंमन नाज है । मान लीजिये कि आज बनियेकी बीबी मरगई है, वह अकेला है, उसके घरमे दूसरा कोई नहीं है इसलिये वह आज अपनी स्त्रीको गंगातट पर फूंकने चलागया है, पर मोहनकी लड़कीका आजही व्याह है, बारात आनेवाली है, जिसमें हजारों मनुष्य आवेंगे, मोहन इस बारातके खर्चेके लिये १५० मन — ७— सेर ६ छटाक(एकसौ पचास मन, सात सेर, नौ छटाक) अन्नका दाम ३००) तीनसौ रुपये उस बनियेको पहले ही देचुका है। अब आज मोहन उस बनियेके पास जाता है और चावल मागता है, बनिया कहता है कि आज देखते हो मुझे छुट्टी नहीं है, पर लो तुम मेरी कुंजी लेजावो मेरे गोलेमें १००० मन, १६ सेर, ३ छटांक (एक हजार मन उन्नीस सेर तीन छटांक) मेरा चावल है उसमेंसे तुम अपना १५० मन ७ सेर ६ छटांक निकाललेना और शेष छोड़देना ! जब मै जाऊंगा अपना तौल लूंगा। अब बताइये तो सही कि मोहन उस अनाजके ढ़ेरसे अपना कैसे निकालेगा ? प्रत्यक्ष कुछ देख नहीं पड़ता कि कितना १५० मन ७ सेर ६ छटांक है । अनुमानसे निकाले तो हो नहीं सकता । यदि कहो कि १५० मन ७ सेर ६ छटांक ज्वार अलग रखीहुई है उसे देखकर चावल निकालो तो इस उपमान प्रमाणसे भी ठीक २ नहीं निकल सकता । यदि कहो कि, बनियां निकालनेको कहचुका है इसलिये उसके शब्दप्रमाणसे

१५० मन ७ सेर १ छटाक निकलआवेगा, सो हो नहीं सकता । अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, औ शब्द इन चारों प्रमाणोंसे यहां कुछभी नहीं होसकता । हजारों बरस सिर पटक कर कोई मरजावे पर जबतक प्रतिमा नहीं आवेगी तबतक १५० मन ७ सेर १ छटाक चावल निकलना कठिन है । अब पूछिये प्रतिमा कहां है ? जिससे चावल माप लियाजावे, तो लीजिये पत्थरके अथवा लोहेके टुकड़ोंके बनेहुए मना, पसेरी, सेर, अधसेरी, पाव, छटकी सब प्रतिमा हैं, क्योंकि मैं पहले कहआया हूं कि प्रतिमा शब्दका अर्थ यही है कि (किसी अप्रमेय वा सम्पूर्ण वस्तु से अपनी इच्छानुसार एक अंश जिसके द्वारा निकाल लेवें उसे कहिये प्रतिमा) सो मना, सेर, पसेरी इत्यादि सब प्रतिमा है, इनहीसे मोहन तौलकर अपना अनाज लेजावेगा । इनही प्रतिमाओंके द्वारा सम्पूर्ण पृथिवीमण्डलका वाणिज्य (Commerce) चलरहा है ।

इसी प्रकार श्री गंगाजीकी धारकी ओर देखिये जो गंगोत्तरी से चल कर बंगालके समुद्रमें गिरती है, जिसमें लाखों करोड़ों मन जल इधरसे उधर जारहा है, इसमेंसे यदि सेरभर अथवा पावभर गंगाजल लेनेकी आवश्तकता हो तो विना किसी प्रतिमाके नहीं लेसकते, इसलिये घड़ा प्रतिमा, लोटा प्रतिमा, ग्लास प्रतिमा, इत्यादि २ । यदि ये प्रतिमा न हों तो असंख्य मन जलसे अपनी इच्छानुसार जल निकालना दुर्लभ है, फिर तो प्यासोंको पशुओंके समान गंगामें मुंह लगाकर जल पीना होगा अथवा प्यासा मरना होगा, इसलिये घड़ा, लोटा, ग्लास इत्यादि प्रतिमाओंकी आवश्यक्ता है । अब आपको मै यह भी देखलाऊंगा कि सम्पूर्ण संसारी व्यवहारोंमें जहा देखिये तहा प्रतिमा ही की आवश्यकता है । सुनिये ऐसा न समझिये कि प्रतिमा केवल पत्थर वा लकड़ी वा कागजकी ही बनती है । नहीं ! नहीं !! प्रतिमा तो घी, शक्कर, चीनी, मिसरी, माखन चावल, गोधूम, जव, अरहर, किशमिस, बादाम, सोना, चांदी, तांबा, पीतल इत्यादि सब वस्तुओंकी, बन सकती है । सो आपको सुनाता हूं

सुनिये।

यदि आपको सवेरे भूख लगे अथवा जवतक भंडारमें रोटी शाक तयार होवे तवतक जलपान (कलेवा) करनेकी इच्छा हो तो उस समय आप अपने नौकरसे यों कहिये कि, जा हलवाईकी दूकानसे दो पैसेका वह ले-आ ! फिर आपका नौकर हलवाईसे जा वोले कि दो पैसेका (वह) दे-दो, हलवाईने दो पैसेका कुछ देदिया, नौकर लेकर आया, तब आप वोले कि, नहीं वे ! यह नहीं (वह) लेआ ! फिर वह वेचारा नौकर लौट-कर दोवारा जाता है और उसी प्रकार हलवाईसे (वह देदो) कहकर कुछ लेआता है, पर आपके मनमें जो वह शब्दका अर्थ वसाहुआ है सो आपके नौकरने उस (वह) को कुछ और समझा है और हलवाईने (वह) को कुछ और समझा, एवम्प्रकार सैकड़ों वार (वह, वह) करते २ दिन वीतजावेगा आपके नौकर औ हलवाईमें व्यर्थ दंगे भी होजावेंगे पर (वह) का न्याय (फैसला) ठीक नहीं होगा, इसलिये समूहवाचक मिष्टान्न (मिठाई) तिसमेंसे भिन्न २ स्वादके लिये नाना प्रकारकी प्रतिमा वनाईगई। लड्डू प्रतिमा, पेड़ा प्रतिमा, जलेबी प्रतिमा, शकरपाला प्रतिमा , रेवड़ी प्रतिमा इत्यादि। इन प्रतिमाओंके वनजानेसे आपने झट अपने नौकरसे कहा जा ! दौड़ ! दो पैसेकी जलेबी ला ! (लाया आया) जव तक आप वात करतेही हैं कि वह लेआया । देखिये इन प्रतिमाओं से आपका काम कितना शीघ्र निकलगया, यों आप " वह २ " करते सारा दिन वितादेते पर आपके मनमें जो जलेवी वसी हुईथी वह कदापि नहीं आती। इसी प्रकार आप शहरमें किसी दरजीकी दूकान पर १०० गज वानात लेजाकर दीजिये और कहिये कि इसका ५० (वह) वना-कर देदो ! उसने सवको काटकर चपकन वनादी, क्योंकि " वह " का अर्थ दरजीने अपने मनमें चपकन अथवा अंगरखा समझा था। जव आप कपड़ा लाने गये तो अपना (वह) मांगा, उसने आपके सामने सव (वह) रखदिये, अव आप कहने लगे कि अबे उल्लू दरजी ! मैंने तो तुमको (वह)

बनाने कहा था तूने यह क्यों बनाया ! तूने मेरे सैकड़ों रुपयेकी हानि करदी, दरजी बोलता है, मैंने तो (वह) बनाही दिया, तुम इधर उधर मत करो मेरी मजदूरी देदो । लीजिये साहब इस (वह) के पीछे दोनों में मारपीट, चमेटे, गाली गुफ्ते सब होगये । प्यारे सभासदो ! इसी दुःख के निवारण करनेके लिये बुद्धिमानोंने कपड़ोंकी प्रतिमा बनाई देखिये—चपकन प्रतिमा, कोट प्रतिमा, निमास्तीन प्रतिमा, पाजामा प्रतिमा, टोपी प्रतिमा, इत्यादि २ ! इसी प्रकार द्रव्यके द्वारा व्यवहार सिद्ध करनेके निमित्त कौड़ी प्रतिमा, पैसा प्रतिमा, दोअन्नी प्रतिमा, चौअन्नी, अठन्नी, रुपया, अशर्फी, नोट सब प्रतिमा ही प्रतिमा बनाई है ! इसी प्रकार शस्त्रोंकी प्रतिमाको भी जानना । जैसे तलवार प्रतिमा, हल प्रतिमा, कोदाल प्रतिमा, खुरपा प्रतिमा, कुठार प्रतिमा, क़ैंची प्रतिमा, स्तुरा (छुरा) कतरनी सब प्रतिमा ! प्यारे सभासदो ! इस विषयमें मैं आपको बहुत कहचुका, आप प्रतिमाका अर्थ पूर्ण रीतिसे समझगये होंगे ।

अब एक बात और भी आपको निश्चय करादेता हूं कि, जिस कार्यसाधनके लिये जो प्रतिमा बनाईजाती है उससे उतना ही कार्य लिया जाता है । अक्षरोंकी प्रतिमासे विद्या सीखनेका, रागरागनियोंकी प्रतिमासे गानेका, अंकोंकी प्रतिमासे लेखा जोखा करनेका, अन्नकी प्रतिमासे खानेका, कपड़ोंकी प्रतिमासे पहननेका, द्रव्यकी प्रतिमासे वाणिज्य इत्यादि साधन करनेका, शस्त्रोंकी प्रतिमासे युद्ध करने अथवा कृषी इत्यादिमें पृथिवी खोदने वा घास काटनेका । मेरे कहनेका मुख्य तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण पृथिवीमंडलके कार्यके सिद्ध करनेके निमित्त प्रतिमा ही प्रतिमा सर्वत्र व्यापक देखपड़ती है । जब चारों ओर लौकिक व्यवहार साधनके निमित्त प्रतिमा ही प्रतिमा देखपड़ती है तो क्या पारलौकिक व्यवहार अथवा ब्रह्मविद्या साधनके निमित्त प्रतिमाकी आवश्यकता न होगी ? अवश्यहोगी । बुद्धि भी इसबातको स्वीकार करती है कि, जैसे सब विद्या और व्यवहार विना प्रतिमा सिद्ध नहीं होते वैसे विना प्रतिमा ब्रह्मविद्या अथवा

पारलौकिक व्यवहारोंका भी सिद्ध होना असम्भव है ।

उस प्रतिमाके दो भेद हैं १ कृत्रिमप्रतिमा दूसरी अकृत्रिमप्रतिमा फिर कृत्रिमके दो भेद हैं १ न्यायिता औ कल्पिता । अकृत्रिमके भी दो भेद हैं स्थिरा औ चंचला । ये सब भेद मैं आपको बिलग २ समझाकर कहता हूं सुनिये । एकाग्रचित्त होजाइये ।

कृत्रिमप्रतिमा उसे कहते हैं जो काष्ट, लोह, पीतल, स्वर्ण, मणि अथवा विन्दु रेखा और नील पीत रंग इत्यादिके मेलसे भिन्न २ शस्त्रों द्वारा अथवा लेखनी द्वारा वनाईजावे । सो दो प्रकारकी है न्यायिता औ कल्पिता ! न्यायिता उसे कहते हैं जो यथातथ्य हो अर्थात् जिसकी प्रतिमा वनाईजावे न्याय पूर्वक ठीक २ उसीकी आकृतिकी हो, जैसे मन्दिरोंमें राम कृष्ण इत्यादिकी प्रतिमा ! कल्पिता उसे कहते हैं जो यथातथ्य अर्थात् ज्योंका त्यों न हो किन्तु अपनी २ बुद्धि अनुसार बुद्धिमानोंने भिन्न २ देशोंमें भिन्न २ रीतिसे कल्पित करलीहो, जैसे अ, आ, क, ख इत्यादि अक्षरोंकी प्रतिमा ।

अकृत्रिमप्रतिमा उसे कहते हैं जिसको किसी मनुष्यने नहीं वनाई हो स्वयं परमात्मदेवकी निज रचना हो, तिसके दो भेद है स्थिरा औ चंचला । स्थिरा उसे कहते हैं जो सृष्टिके आरंभसे प्रलय पर्यन्त एकरूप से स्थिरहो, जैसे सूर्य, चन्द, पृथिवी, पर्वत, पत्र पुष्प इत्यादि और चंचला उसे कहते है जो क्षणमात्रके लिये बनकर विनश जावे, जैसे मेघमाला, विद्युत, इन्द्रधनुष, अरुणोदय, चन्द्रग्रहण, अथवा सूर्यग्रहण, कुहासा (कुहेलिका) औ स्वप्नमें जो नानाप्रकारके रूप इत्यादि ।

मन्दिरोंमें जितनी प्रतिमा हैं सव कृत्रिमप्रतिमा है, इनमें वहुतेरी तो न्यायिताहैं औ वहुतेरी कल्पिता है । भिन्नअवतारोंकी अर्थात् राम, कृष्ण, नरसिंह इत्यादिकी जो प्रतिमा हैं वे न्यायिता है, और शालग्राम, शिवलिङ्ग अथवा दुर्गा, काली, इत्यादि भिन्न शक्तियोकेलिये जो केवल मिट्टीके पिण्ड वनायेजातेहैं वा भिन्न२विन्दु औ रेखाओंकी खिंचीहुई गोल, वर्तुला-

कार इत्यादि मूर्त्तियां जो दीवालोंपर वा वृक्षोंपर बनाईजाती हैं वेसब कल्पित कही जाती हैं। यह भी जानना अति आवश्यक है कि, पारलौकिक व्यवहार अथवा ब्रह्मविद्या साधनके निमित्त किसी प्रकारकी प्रतिमा मन्दिरों में क्यों न हों सब पूज्य हैं। क्योंकि मैं पहले कहआया हूं कि, जिस कार्यके साधन निमित्त जैसी प्रतिमा होगी तैसाही उसके सङ्ग बरताव किया जावेगा, फिर परलोक और ब्रह्म पूजनेके योग्य हैं इसलिये इनकी प्रतिमा भी अवश्य पूजनीय होंगी! कहीं २ अकृत्रिमप्रतिमा की भी कृत्रिमप्रतिमा बनाईजाती हैं जैसे सूर्य औ चन्द्रकी। वे पूज्य है।

अब नई रोशनी वाले बुद्धिमान यह शंका करबैठेंगे कि तुम सूर्य, चन्द्र इत्यादिको प्रतिमा क्यों कहते हो? इनमें प्रतिमाका अर्थ कैसे घटता है' औरप्रतिमाका लक्षण इनमें क्या है? सो उत्तर लीजिये! मैं अभी कहचुका हूं कि समूहमें से कार्य सिद्ध करने योग्य जो अंश निकाललिया जावे वह प्रतिमा है। सूर्य को मैं प्रतिमा इस कारण कहता हूं कि, जब परमात्माने सृष्टिकी रचना आरम्भ की तब सृष्टि पूर्ण करलेसे पूर्व यह सोचा कि सर्वत्र अंधकार ही अंधकार है क्योंकि सबसे पहले अन्धकार ही उत्पन्न हुआ है। देखो (ऋग्वेद अ० ८ अ० ८ व० ५१)

ओं ऋतंच सत्यं चाभिद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततोरात्र्य जायत ० ० ०।

अर्थात् ऋत सत्य जो परमातमा उसने अपने तप रूप बलसे जब सृष्टि आरम्भ की तब प्रथम रात्रिको उत्पन्न किया।

फिर जब उस कृपासागरने यह विचारा कि मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादिको अन्धकारमें अपने खाने पीने का व्यवहार करना कठिन होगा, तब अपनी परम ज्योतिमें से एक अंश इतना विचारकर निकाला कि जिसे मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि प्राणियोंकी आंख सहन कर सके और उसे हमलोगों से इतनी दूर पर रखदिया जिससे हमलोगोंका शरीर जल न

जावे औ पृथिवीके आकर्षण करनेमें न्यूनाधिक्य न होजावे। यदि परमात्मा अपनी सम्पूर्ण ज्योतिको एकदम प्रगट करदेता तो कोई प्राणी उस ज्योतिकी ओर नहीं देखसकता, न उस ज्योतिसे अपना कोई कार्य कर सकता. सबोंकी आंखें फटजातीं और सबके सब जलजाते। इसलिये सम्पूर्ण अपनी परम ज्योतिमेंसे संसारके व्यवहार संभालनेके योग्य उस जगदीश्वरने ऐसे प्रमाणसे तोलकर ज्योति निकाली कि सब व्यवहार ठीक रहें। अतएव यह सूर्य उस परमात्मा ज्योतिःस्वरूपकी एक अकृत्रिमप्रतिमा है।

प्यारे सभासदो सबसे पहले सनातनधर्मावलम्बी इसी सूर्यदेव अकृत्रिमप्रतिमा की स्तुति पूजा करते हैं। वेदोंमें सर्वत्र सूर्यही की स्तुति भरी पड़ी है, सनातनधर्मियोंके स्मार्त्त मतमें प्रथम उपासना सूर्यहीकी है, क्योंकि यह सूर्य विराड्स्वरूप परमात्माका नेत्र मानागया है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि इस कलियुगमें हमारे नवीनप्रकाशवाले बुद्धिमान कभी २ भूले भटके विराड्कोतो मानलेते हैं पर उसी विराट्के मुख्य अंग सूर्यको नहीं मानते। देखो स्वामी दयानन्द अपने सत्यार्थप्रकाश * के सातवें पृष्ठमे जहां ओ३म् का अर्थ किया है तहां यह कहते हैं कि (यह ओंकार शब्द परमेश्वरका सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमे अ+उ+म तीन अक्षर मिलकर एक " ओम् " समुदाय हुआ है, जिस एक नाममें परमेश्वरके बहुत नाम आजाते हैं, जैसे अकारसे विराट, अग्नि, औ विश्वादि। उकारसे हिरण्यगर्भ, वायु, औ तेजसादि। मकारसे ईश्वर, आदित्य, और प्राज्ञ आदि) प्यारे सज्जनो! आप प्रत्यक्ष देखरहे हैं कि विराड्को स्वामीदयानन्दजीभी मानरहे हैं. उसीविराड् अर्थात् विश्वरूप ईश्वरका नेत्र सूर्य मानागया है, फिर सूर्यको विराट्का अङ्ग समझकर उन की स्तुति औ प्रार्थना करनेमें क्या दोष है? पर बड़े अंधेरकी बात है कि

* यह सत्यार्थ प्रकाश अजमेर के वैदिक यंत्रालय मे छपा है सम्वत् १९४८ में।

स्वामी दयानन्दके चेले पाटी सूर्यको एक दिनभी नमस्कार नहीं करते और कहते है कि हम वेदमतावलम्बी हैं, वैदिकमतको मानते हैं ! भला देखिये तो सही जिस वेदको ये मानते हैं उस वेदहीने सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्रमा इत्यादिको ब्रह्म माना है और उनकी स्तुति की है ! सुनिये।

तदेवाग्निस्तदादित्य स्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा।
तदेव शुक्रन्तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः।

अर्थात् वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है वही सर्व प्रकारका पराक्रम है, वही ब्रह्म है, वही जल है, वही प्रजापति है ! ये सब परमात्माकी भिन्न २ शक्तियोंकी अकृत्रिमप्रतिमा हैं, इसलिये इन सबोंको वेदने ब्रह्मही मानकर इनकी स्तुति औ प्रार्थना की है, पर जो इनमें प्रधान सत्ता हैं उनको विशेपकर माना है, जैसे विराड्के सब अङ्गोंमें सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, जल इत्यादि प्रधान सत्ता है इसलिये इनको ब्रह्मकी भिन्न २ शक्तियोंकी प्रतिमा मानकर स्तुति औ प्रार्थना की है। देखिये वेद सबसे उत्तम प्रधान सत्ता सूर्यकी किस प्रकार स्तुति कररहा है सो सुनिये।

ॐ उद्वयन्तमसस्परिस्वः पश्यन्तउत्तरम् देवन्देवत्रा सूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम्।

ॐ उदुत्यंजातवेदसंदेवँ वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम्।

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।*

* इन मन्त्रोंका अर्थ श्रीस्वामी हंसस्वरूपकृत "मंत्रभास्कर" ग्रंथ में देखो।

इसी अकृत्रिमप्रतिमा सूर्यकी कृत्रिमप्रतिमा मन्दिरोंमें बनाई जाती है और इसीकारण अपने स्मार्त्तमतमें सबसे प्रथम सूर्यकीउपासना बताईगई है जिस मतको " सौर्य " कहते हैं । सन्ध्योपासन इत्यादि कर्मोंमें सूर्यकीही उपासनाकीजाती है औ सूर्यको ही अर्घ्य इत्यादि देतेहैं, इसीकारण स्वामी दयानन्दजीने भी उस परब्रह्म ज्योतिःस्वरूपकी अकृत्रिमप्रतिमा सूर्यको माना है । बहुतेरे दयानन्दी यों कहते हैं कि स्वामीजीने सूर्यका अर्थ आत्मा किया है । सम्भव है कि उन्होने किसी मंत्रका आध्यात्मिक अर्थ करनेके समय सूर्यका अर्थ आत्मा करदिया हो, पर जहां आधिदैविक अर्थ किया है अथवा संस्कारोंके विधिमें जहां कहीं कोई वैदिक मंत्र आया है तहां स्वामी दयानन्दजीने भी इसी सूर्य का जो आकाशमें उदय होता है ग्रहण किया है, स्वामी दयानन्दके बनाये हुए संस्कारविधिके १४० पृष्ठमें देखिये ! लिखते हैं कि—

ॐ तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदःशत मदीनास्याम शरदःशतम्भूयःश्चशरदःशतात् ।

इस मंत्रसे वर और कन्या विवाहमे सूर्यका अवलोकन करें । यदि वह सूर्यका अर्थ आत्माही समझते तो ऐसा लिखते कि वर और कन्या आत्माका चिन्तवन करें नकि सूर्यका अवलोकन करें । फिर स्वामी दयानन्दजीने प्रतिमा कोभी माना है. देखिये उसी संस्कार विधि के ६८ वें पृष्ठ में चूड़ाकरणसंस्कार करनेके समय लिखते हैं कि, जिस छुरेसे बच्चे का मुण्डन कियाजाता है उस छुरेकी ओर देखकर यह मंत्र पढ़े—

ॐ शिवोनामासि स्वाधितिस्तेपिता नमस्ते मामाहिꣳसि । ॐ स्वधिते मैनꣳहिꣳसि ।

जिसका अर्थ यह है कि हे छुरे तेरा नाम शिव है, और कुठार तेरा पिता है "नमस्ते" तेरे लिये मेरा नमस्कार है। तू मुझको काट न देना और दूसरे मंत्रका अर्थ यह है कि हे कुठार ! इस बच्चेके शिरको काटना नहीं।

अब सोचनेकी बात है कि, स्वामी दयानन्दजी एक छुरेको जो एक लोहेकी प्रतिमा है वेदमंत्रसे नमस्कार कररहे हैं तो कब सम्भव है कि हमारे मंदिरोंमें हमारे जगदीश्वरकी प्रतिमाको नमस्कार नकरें। मैं तो जानता हूं कि वह अपने अन्तःकरणसे प्रतिमाको नमस्कार करते हैं और करही गये हैं और अब भी देखाजाता है कि उनके चेले चाटियोंमें भी किसी न किसी समय जब वे प्रतिमाके महत्वको समझजाते हैं नमस्कार करते ही हैं, क्योंकि मैं प्रत्यक्ष देखरहा हूं कि, इटावानिवासी पण्डित भीमसेन और कई अन्य महापुरुष विद्वान जो किसी समय स्वामी दयानन्दके चेले थे और प्रतिमाका खण्डनकिया करते थे अब प्रतिमाओंका मण्डन करते हैं। इसी प्रकार थोड़ा काल बतिने पर उनके और चेले भी जोकुछ साक्षर और विद्वान हैं प्रतिमाका मण्डन करेंहींगे और जैसे२समझतेजावेंगे प्रतिमाकी पूजाकरते जावेंगे। यद्यपि स्वामी दयानन्दके लेखमें कहीं२ पूर्वापर विरोध (Contradiction) है, क्योंकि अपने सत्यार्थप्रकाशके ३१० पृष्ठमें यजुर्वेदके अध्याय ३२के मंत्र ३का आधाभाग "**नतस्यप्रतिमास्ति**" लिखकर अर्थमें यों लिखते हैं कि "उस परमात्माकी प्रतिमा वा मूर्त्ति नहीं है। बस यह अर्थ लिखकर कहते हैं कि, वेदमें प्रतिमा पूजन नहीं है" प्यारे सभासदो! यदि इस स्थानमें वेदने प्रतिमाका निषेध किया है औ प्रतिमा शब्द से यहां वेदका तात्पर्य उसी प्रतिमासे है जो मन्दिरोंमें बनाई जाती है जैसा कि दयानन्दजी समझरहे हैं तो मैं आपको इसी वेद में वह मंत्र देखलाता हूं जहां प्रतिमाको विधि किया है। सो सुनिये। देखिये "यजुर्वेद अध्याय १५ मंत्र ६५"

ॐ सहस्रस्यप्रमासि सहस्रस्यप्रतिमासि सहस्र-स्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ।

अर्थात् जिस समय यज्ञके अग्निको प्रोक्षण करते है उस समय इसी मंत्रको पढ़ते है, जिस का अर्थ यह है कि हे अग्नि ! तुम सहस्र अर्थात् नारायणके "प्रमा" ज्ञानसाधनके मुख्यकारण हो (सहस्रस्य प्रतिमासि) हे अग्निदेव ! तुम नारायणकी प्रतिमा अर्थात् मूर्त्ति हो इत्यादि २ । अब इससे देखपड़ता है कि यजुर्वेदने एक स्थानमें प्रतिमाका निषेध और दूसरे स्थानमें विधि किया, ऐसा होनेसे पूर्वापरविरोध सिद्ध होता है, जिससे ग्रन्थकर्त्ताको प्रमादी कहसकते हैं, पर वेद किसी मनुष्य का रचाहुआ नहीं है, अपौरुषेय है, साक्षात् परब्रह्म परमात्माके मुखारविन्दसे निकला-हुआ है, फिर परमात्मामें प्रमाद तीन कालमें भी नहीं होसकता (इसको दयानन्दजी भी मानते है) तो क्या कारण है कि, एक ही यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखाके एक मंत्रमें "न तस्यप्रतिमास्ति" और दूसरे मंत्रमें "सहस्रस्यप्रतिमासि" कहा ? ऐसा विरोध क्यों ? उत्तर यह है कि दोनों मंत्र ठीक हैं, इनमे विरोध नहीं है । देखिये मैं अपने सभासदोंको इन मंत्रोंकी मीमांसा कर बतादेता हूं, सुनिये एकाग्रचित्त होजाइये । शतपथ ब्राह्मण काण्ड १४ का वाक्य है कि "द्वावेवब्रह्मणोरूपेयन्मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्चेत्यादि" अर्थात् ब्रह्मके दो रूप हैं एक मूर्तिमान् दूसरा अमूर्त्तिमान् ! वेदने जहां परमात्मदेवके मूर्तिमान् अर्थात् साकारविभवका वर्णन किया तहां यों कहा कि "सहस्रस्य प्रतिमासि" और जहां उसके अमूर्तिमान् अर्थात् निराकारविभवका वर्णन किया तहां कहा कि, (नतस्यप्रतिमास्ति) ब्रह्मदेवके दोनो रूपके विषय वेदमें केवल येही दो मंत्र नहीं है वरु अनेक मंत्र और अनेक श्रुतियां भरी पड़ी है । मैं साकार निराकार दोनोंके विषय वेदके दो चार मंत्र औ श्रुतियोंको श्रवण कराता हूं, सुनिये शुक्ल यजुर्वेद अध्याय १६ (रुद्री) १. ॐ वाहुभ्यामुततेनमः (मंत्र १ दे-

स्रो) अर्थात् हे रुद्रदेव! तेरे दोनों भुजाओंके लिये नमस्कार है। यहां भुजा कहनेसे से साकारके साकार विभूतिका निरूपण होगया—और सुनिये। २ ॐ असौयस्ताम्रोऽरुणउतबभ्रुः (मंत्र ६ मे देखो) अर्थात् यह जो सूर्य रूप रुद्र है वह उदयके समय लाल वर्ण, अस्तके समय रक्त वर्ण और मध्यमें पिंगल (पीत) वर्ण रहता है उसे नमस्कार है। यहाभी साकार विभूतिका निरूपण किया। और सुनो ३. ॐ नमोस्तु नीलग्रीवाय० (देखो मंत्र ८) अर्थात् रुद्रदेव जिसका गला विषपान करनेसे नील हो गया है जिनको नीलकंठ महादेव भी कहते हैं उनको नमस्कार है। ४. ॐ नमोरोहिताय स्थपतये० (देखो मंत्र १९) अर्थात् मत्स्यावताररूप जगदीश्वरके लिये मेरा नमस्कार है। ५. ॐ नम. कृत्स्नायतयाधावते सत्वानाम्पतये नमोनम (मंत्र २० में देखो) अर्थात् धनुषको कानों तक खैंचकर युद्धमें धावनेवाले अथवा भक्तोंके दुःख निवारणके लिये धनुष् खैंचकर धावनवाले और भक्तोंके स्वामी श्री रामरूपके लिये मेरा नमस्कार हो। (मंत्र २९) ६. ओं नमःकपर्दिनेच। अर्थात् जटाजूट धारणकरने वाले रुद्रभगवानके लिये भी मेरा नमस्कार हो। ऐसे २ अनेक प्रमाण परमेश्वरके साकारके विषय हैं। अब निराकारविभूतिके विषय दो चार प्रमाण देता हूं। सुनिये। इसी शुक्ल यजुर्वेद के ४० अध्यायमें देखिये—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्। मंत्र ८

यहां स्पष्ट है कि उस ब्रह्मदेवको अकायम्, अव्रणम्, और अस्नाविरम् कहकर पुकारा, अर्थात् जो ब्रह्मदेव अकाय (बिना लिङ्ग शरीरके है) अव्रण (फोड़े फुन्सी) अथवा स्नाविर (शिरा, रग, नाड़ी) इसे नहीं हैं। यहा अव्रण और अस्नाविर दोनों शब्दोंका प्रयोग करके पाञ्चभौतिक स्थूलशरीरका निषेध किया, इसलिये निराकार रूपका भली भांति निरूपण करदिया। और सुनिये। केनोपनिषद् प्रथमखण्ड श्रुति ३

में कहते हैं कि, " ॐ न तत्र चक्षुर्गच्छति* " अर्थात् वहां आंख नहीं जासकती अर्थात् उस ब्रह्मदेवकी निराकार विभूतिको ये आंखें नहीं देख-सकतीं। बस इतना कहनेहींसे उसकी निराकारविभूतिका निरूपण होगया ! फिर सुनिये। उसी उपनिषद्के प्रथम खण्डकी पांचवीं औ छटवीं श्रुतियां यों कहती हैं। " ओं यन्मनसानमनुते० "। " ओं यच्चक्षुषानपश्यति० " अर्थात् जो मनसे मनन करनेमें नहीं आता, और जो नेत्रोंसे देखा नहीं जाता। बस निराकार होगया।

इन प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि उस ब्रह्मदेवकी जो दो भिन्न विभूतिया है उनमें साकारविभूतियोंकी प्रतिमा हो सकती है औ निराकारकी नहीं! यही तात्पर्य इन दोनों मंत्रोंसे सिद्ध होता है । इस स्थानमें हमारे श्रोताओंके हृदयमें यह शंका उत्पन्न होना संभव है कि, तुम पहले साकार निराकार दोनोंकी प्रतिमा कहचुके हो अब कहते हो कि, निराकारकी प्रतिमा नहीं होती, इसलिये तुम्हारे व्याख्यानमे पूर्वापरविरोध (Contra diction) पायाजाता है, तो प्यारे श्रोतागण! यहां शंकाका स्थान कुछभी नहीं है। मैने स्वामीदयानन्दकी निर्मूल बातोंका उत्तर दिया है । " नतस्यप्रतिमास्ति " मे जो स्वामी दयानन्दने प्रतिमा समझी है वह यही मन्दिरवाली कृत्रिम औ न्यायिता प्रतिमा समझी है, अर्थात् उनके कहनेका मुख्य तात्पर्य इस मंत्रके अर्थमें यही है कि न्यायिताप्रतिमा उस ब्रह्मदेवकी नहीं है, इसलिये मैने यहां यह देखलाया कि, यदि उनका तात्पर्य इसी न्यायिताप्रतिमासे है औ उसका निषेध करते हैं तो मै उस न्यायिताप्रतिमाका विधि होना देखलाकर वेदके पूर्वापरविरोधको मिटादेता हूँ। मुख्य तात्पर्य यह है कि. निराकारविभूतिकी न्यायिताप्रतिमा नहीं होसकती, यो तो कल्पिताप्रतिमा निराकार हो चाहे साकार सबकी हो सकती है, इसलिये यहां शंकाका स्थान नहीं है। अब चलिये और आगे चलें औ प्रतिमाके विषय पूर्णप्रकार मीमांसा करलें, जिससे किसी नवीन

* इस श्रुतिको पूर्ण लिखकर उपासनाके व्याख्यानमे अर्थ किया है (देखो पृ० १३६–१४२)

प्रकाशवालेके हृदयमें तनक भी शङ्का शेष न रहजावे और इस मेरे व्याख्यानके श्रवण करनेसे जो उनके चित्तमें प्रतिमाकी ओर कुछ श्रद्धा औ विश्वास होआये हैं वे पूर्ण प्रकार उनके हृदयके घरमें स्थिर होजावें। अब सब मिल एकबार बोलिये।

हरे राम! हरे राम! राम! राम हरे! हरे!

हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हरे! हरे!

प्यारे श्रोतृगण! यजुर्वेदमें आप प्रत्यक्ष देखरहे हैं कि प्रतिमाका होना विधि है। अब मैं आपको अन्य वेदोंसे प्रतिमाका विधि होना देखलाता हूं, सुनिये! कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीयारण्यकके प्रपा ४ अनु० ५ में लिखा है कि!

ओं मा असि। प्रमा असि। प्रतिमा असि। संमासि। विमा असि। उन्मा असि। अन्तरिक्षस्यान्तर्धिरसि॥

देखिये जितने शब्द शुक्लयजुर्वेदके अध्याय १५ मंत्र ६५ में आपको सुनाचुका हूं, ठीक २ उनहीं शब्दोंका प्रयोग इस अनुवाकमें भी है, अर्थात् प्रमा, प्रतिमा, उन्मा पहलेमें भी थे, इसमें भी हैं, वरु मा, समा औ विमा" ये तीन शब्द इस मंत्रमें अधिक हैं, पर मुझको और शब्दोंसे कोई प्रयोजन यहां नहीं है, केवल प्रतिमा से तात्पर्य है, सो दोनो मंत्रोंमें समान देखपड़ते हैं, इसलिये इस अनुवाकसे भी प्रतिमा का विधि होना सिद्ध होगया।

अब और सुनिये मैं वेदोंसे एक दूसरे प्रकारकी प्रतिमा सिद्ध करता हूं। उस परमात्मदेवको सभी मतमतान्तर वाले अनन्त शक्तिमान कहकर पुकारते हैं, जिसका अन्त आज तक किसीने नहीं पाया, उसकी बहुत बड़ी अपार महिमा है, नजाने उसमें क्या २ विचित्र शक्तियां भरी पड़ी हैं, नजाने क्षणमात्रमें वह कैसी २ अद्भुत लीला औ रचनाओंको देखला सकता है, उसकी रचना केवल हमही लोगोंके सन्मुख वर्त्तमान नहीं है। हमलोग इस सृष्टिमें अपने नेत्रोंके सामने जो

कुछ देखते हैं इतनाही नहीं है । नहीं ! नहीं ! ! हमलोग तो एक अत्यन्त छोटे मृत्युलोकमें पडे है, न हममें एक लोकसे दूसरे लोकमें जानेकी शक्ति है, न हमलोग किसी प्रकार अन्य लोकोंकी कुछ रचना जानसकते हैं, फिर क्या पता है कि, अन्य लोकोंमें यथा भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, तथा अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल, इत्यादि लोकोंमे कैसी २ विचित्र रचना हैं ? इन लोकोंके वार, तिथि, महीने औ वर्ष इत्यादि हमसे कई गुण अधिक होते है । पितरोंके दिन हमारे दिनसे १५ गुण अधिक होते हैं, इसलिये हमारे १५ दिनका उनका एक दिन होता है । देवताओंका एक दिन हमारे ६ महीनोंके बराबर होता है । इससे हमलोग अनुभव करसकते है कि हमारे केवल ३६० दिनके वर्षमें जितनी रचना वायु, अग्नि जल औ पृथिवीके मेलसे भिन्न २ समय पर देखपड़ती है, उनसे नजाने कितने गुण अधिक विचित्ररचना उनलोकोंमें देखपडती होंगी ! बस ! इतना कहनेहीसे हमारे श्रोताओंको अनुभव होगया होगा कि, उस पमात्मदेवकी असीम महिमा, शक्ति, रचना इत्यादिका कुछभी अन्त नहीं है! मुख्य तात्पर्य यहहै कि उसपरमात्मदेव जगदाधारने अपनी अनन्तकोटि रचनाओंमेंसे हम मृत्युलोकनिवासियोंके कल्याण औ सुखके निमित्त जितना अंश निकालकर एकवर्षमे देखला दियाहै उसकी एकप्रतिमा बनगईहै, अर्थात् छवों ऋतुओंमें शीत उष्णका रूपबदलना, वर्षाऋतुमे मेघमालाका आकाशमें घिरआना, बादलोंका जमघट, और उनका घनघोर शब्द करना, आकाशमें इन्द्रधनुषका बनजाना, पानीकी बूंदोंका झिम २ झमकना । बिजलीका चमकना, भिन्न २ नाजोंके गुच्छोंका खेतोंमे लहराना, बेली, मदनबान, जूही, गेंदा, गुलदावदी, गुलाब, चंपा, चमेली, चन्दकला, सिंधुवार, प्रेमलता, केवड़ा औ केतकी इत्यादि पुष्पोंका भिन्न २ समय पर खिलना, आम, लीची, सेव, नाशपाती, अंगूर, अमरूद औ इंजीर इत्यादि फलोंका समय २ पर फलना; कोयल, कीर, कमेरी, मयूर, पपीहाका भिन्न २

ऋतुओंमे घोलना, शीतकालमें साझ सवेरे कुहेलिका (कुहासा) का लगना और शीतसे बचनेके लिये अग्नि ढूंढते फिरना, वसन्तऋतुमें शीतल मन्द सुगन्ध वायुका चलना, ग्रीष्म ऋतुमें गरमीकी अधिकतासे पथिकों का प्यासा होकर औ मार्गके श्रमसे थककर वृक्षोंकी शीतल छायामें बैठ जाना, ठण्डी हवाकेलिये पंखोंका खोजकरना इत्यादि २। मैं कहांतककहूं, सालभरके भीतर इनरचनाओंका बार२लौटकर प्रगट होना मानों उसकी अनन्तकोटि शक्तियोंमेसे सालभरके भीतर एक मापीहुई, तौलीहुई, नियत कीहुई शक्तिकी एकप्रतिमा बनगई है। प्यारे श्रोतृगण! इसी कारण वेदने सम्वत्सर (साल)अर्थात् एक वर्षकी एक प्रतिमा मानी है, और जब एक वर्ष (सम्वत्सर) समाप्ति होता है तब हम सनातनधर्मावलम्बी एक सम्वत्सर* की कल्पित प्रतिमा बनाकर प्रायः रात्रिके समय हवन, पूजन किया करते हैं। तिस सम्वत्सरकी प्रतिमाकी स्तुतिका मंत्र वेदोंमें है सो मै आपको सुनाता हूं सुनिये। अथर्ववेद ३।९।१०।

ओ३म् सम्वत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे।
सानआयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण संसृज॥

अर्थात् हे सम्वत्सरकी प्रतिमा! मैं तेरी उपासना करता हू, तेरी स्तुति पूजा करता हू, हे प्रतिमा! तू मेरे लिये दीर्घ आयुवाले पुत्र, पौत्र इत्यादिको धनधान्य और सम्पत्तिके सहित उत्पन्न कर! उस जगत्कर्त्ताने अपनी अनन्त शक्तिमे एक विशेष शक्तिकी प्रतिमा सम्वत्सर नाम करके स्वयंरचना कीहै जिसका प्रमाण सुनिये मे शतपथब्राह्मणका वचन देताहूं।

"सएेक्षत प्रजापतिः इमंवाऽआत्मनः प्रतिमामसृक्षिय-

---

* यह सभी जानते हैं कि सम्वत्की समाप्तिके समय हिन्दुस्थानमें सर्वत्र यह कार्य होता है जिसको सम्वत् फूंकना कहते है और साल को आनन्दपूर्वक बितानेका एक बड़ा उत्सव करते हैं, जिसको होली वा फाग कहते है।

त्सम्वत्सरामितितस्मादाहुः प्रजापतिः सम्वत्सरइत्यात्म नोह्येतं प्रतिमामसृजत यदेवचतुरक्षरः सम्वत्सरश्चतुरक्षरः प्रजापतिस्तेनो हैवास्यैषप्रतिमा " ॥

श० ११ । १ । ६ । १३ ।

अर्थात् उस जगदीश्वरने सम्वत्सर नामकी अपनी प्रतिमा आप उत्पन्न की । इसी कारण उस ईश्वरका नाम सम्वत्सर भी है । प्रजापति अर्थात् उस सृष्टिके रचयिताने सम्वत्सर को मानो अपनी रचना शक्ति की एक प्रतिमा रची है । प्रजापति मे भी चार अक्षर हैं, औ सम्वत्सर मैं भी चार अक्षर हैं, इसलिये सम्वत्सर प्रजापति की प्रतिमा है । इस में सन्देह कुछ नहीं रहा । यहा शतपथब्राह्मणने अक्षरोंका समानाधिकरण करके प्रतिमा सिद्ध करदिया अब क्या करे ।

फिर तैत्तिरीयारण्यक प्रपा० १ अनु २ में लिखा है कि

ॐ शुक्ल कृष्णे सम्वत्सरस्य दक्षिणवामयोः पार्श्वयोः । तस्यैषा भवति । अर्थात् सम्वत्सर जो हम लोगोंके व्यवहार करनेका मुख्य काल है उसके दक्षिण औ वाम दो पार्श्व (बग़ल) हैं, अर्थात् दिन जो शुक्ल वर्ण है उस सम्वत्सरकी प्रतिमाका दहिना पार्श्व है और रात्रि जो कृष्ण वर्ण है वह बायां पार्श्व है, फिर यहां प्रत्यक्ष लिखा है कि " तस्यैषाभवति " सो यह प्रतिमा इसी सम्वत्सर की होती है, फिर इस सम्वत्सरकी प्रशंसा दूसरे वाक्यमें करते है ।

नात्र भुवनम् । न पूषा । न पशवः । नाऽऽदित्यः सम्वत्सर एव प्रत्यक्षेण प्रियतमं विधात् । एतद्वै सम्वत्सरस्य प्रियतमँ रूपम् । तै० प्र० १ अनु २.

इस मंत्रका अर्थ स्पष्ट है कि, न भुवन है, न पूषा देवता है, न द्विपद चतुष्पद जन्तु हैं, न सूर्य है, केवल प्रत्यक्ष रूपसे सम्वत्सरही को

अत्यन्त प्रिय जानना औ यह जो कुछ देखते हो सब सम्वत्सर ही का प्रियतमरूप है, अर्थात् प्रतिमा है ।

प्यारे श्रोतृगण ! तैत्तिरीयारण्यकके इस अनुवाकमें सर्वत्र सम्वत्सर ही की स्तुति औ महिमाका वर्णन है देखलेना । हमारे भारतवर्षमें षष्ठी औ एकादशी इत्यादितिथियोंकी पूजा तथा शनि, रवि, मङ्गल इत्यादि वारोंकी पूजा औ व्रत जो करते हैं, वह मानों सम्वत्सररूप प्रतिमाके अङ्गों की पूजा करते हैं । यह सम्वत्सरकी प्रतिमा मानों कालकी प्रतिमा है । बहुतेरे नवीन प्रकाशवाले यों कह पड़ेंगे कि तुम जब कालकी प्रतिमाकी पूजा करते ही हो तो यह घड़ी (Watch or Clock) जो तुम्हारे पास है इसकी पूजा क्यों नहीं करते ? उत्तर इसका यह है कि, आपकी यह घड़ी हम सनातनधर्मियोंकी बनाईहुई नहीं है, अन्य देशियोंकी बनाईहुई है यदि हमारे देशकी बनाई होती और ऋषि महात्माओंकी आज्ञा होती तो अवश्य हमलोग इसमें भी ब्रह्मको व्यापक समझ किसी विशेष समय पर इसकी भी पूजा करते, जब हमारे स्वामीदयानन्दजी हज्जामके छुरेको मुण्डनके समय "नमस्ते" कहकर स्तुति करतेही है, जैसा कि मैं अभी थोड़ी देर पहले इसी व्याख्यानमें वर्णन करचुका हूं (देखो पृ०२२४) तो हमलोग घड़ीको नमस्कार क्यों नहीं करेंगे, पर क्या करें हमारे आचार्योंकी आज्ञा नहीं । देखिये हमारे सनातनधर्मावलम्बी आचार्योंकी आज्ञा पाकर विजयदशमीके दिन खड्ग, भाले, बरछे, बरछी, गदा, परशु, धनुष, बाण त्रिशूल इत्यादि शस्त्रोंकी और यमद्वितीयाके दिन हल, मूशल, कोदाल, इत्यादिकी पूजा करते ही है, तो घड़ीकी पूजा करने में क्या दोष था ? फिर जिस यजुर्वेदको दयानन्दमतावलम्बी प्राणसे अधिक प्रिय मानते हैं उसीके १६ वें अध्याय मंत्र १ और १४ में धनुष और बाण इत्यादि शस्त्रोंको वेदने नमस्कार किया है । सुनिये ।

" ओं उतोत इषवे नमः " मंत्र १ में

" ओं नमस्ते आयुधायानातताय धृष्णवे ।
उभाभ्यामुतते नमो बाहुभ्यान्तवधन्वने । मं०१४

इन मंत्रोंमें " इषवे " " आयुधाय " " धन्वने " कहनेसे धनुष बाण इत्यादि शस्त्रोंहीका तात्पर्य है । दूसरी बात यह है कि मैं पहले कह आया हूं कि जो प्रतिमा जिस तात्पर्यसे बनाई जावेगी वैसाही कार्य उस से लिया जावेगा, और उतना ही भाव उसके संग रखा जावेगा । सो घड़ियोंकी प्रतिमासे हम केवल समय देखलानेका कार्य लेते हैं हम ऐसे प्रतिमापूजक नहीं हैं कि, जिसी तिसी प्रतिमा की पूजा करते फिरें अर्थात् पुतलियोंकी पूजा हम नहीं करते हैं । यदि शंका हो कि एकबार तुम कहते हो कि, खड्ग बरछे, हल, मूशल इत्यादि की हमलोग पूजन करते हैं, और फिर कहते हो कि, हमलोग ऐसे प्रतिमापूजक नहीं हैं कि, जिसी तिसी प्रतिमाकी पूजा करते फिरें, इसलिये तुम्हारे कथनमें पूर्वापर-विरोध पायाजाता है ।

इसका उत्तर यह है कि, हमलोग खड्ग मूशल इत्यादिकी पूजा उपासना अथवा धारणा ध्यान इत्यादिकी सिद्धिके तात्पर्यसे नहीं करते । परमात्मदेवने इन शस्त्रोंमें काटने, खोदने, कूटने इत्यादिकी शक्ति दी है, जिस से हमलोगोंके अन्न वस्त्र इत्यादि तयार होते हैं इसलिये हमलोग सालमें एकदिन इनमें व्यापकशक्तिको नमस्कार करलेते हैं । उपासनाके तात्पर्यसे वे नहीं हैं। मन्दिरोंकी प्रतिमा उपासना, ध्यान इत्यादिके तात्पर्यसेहैं इसलिये इनकी पूजा हम नित्यप्रतिदिन दोनोंसन्ध्याओंमें करते है। क्या नवीनप्रकाश वाले यह नहीं जानते कि दीपमालिका (दीवाली) अथवा कार्त्तिक गंगास्नान इत्यादिके मेलोंमें नाना प्रकारके देवताओंकी प्रतिमा (पुतलियां) दुकानोंमें बिकती हैं, जिसे छोटे२बालक खेलनेके लिये खरीदकर अपने घरकी दीवालों पर रखदेते हैं उनकी पूजा कोई नहीं करता, क्योंकि यद्यपि वे देवताओंकी मूर्त्तियां है पर वे पूजनके तात्पर्यसे नहीं बनाई गई हैं, वे तो केवल

करदेते हैं कि, वह ब्रह्मदेव, जो सर्वत्र व्यापक है, हमारी इस प्रतिमामें हमारे इष्टदेवके रूपसे निवास करे । अर्थात् प्राणप्रतिष्ठा * करलेते हैं ।

अब मैं मन्दिरोंकी प्रतिमाका वर्णन करता हूं, और यह देखलाता हूं कि, मन्दिरोंकी प्रतिमासे क्या २ लाभ है, और पारलौकिक व्यवहार औ ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति इन प्रतिमाओं द्वारा हमलोग कैसे करलेते है। सर्व विद्वानों औ महापुरुषों पर विदित है कि, उस परब्रह्मकी प्राप्ति निमित्त नानाप्रकारके मार्ग है, पर सबोंमें उत्तम और श्रेष्ट मार्ग योग है, सो योग प्रेम मिश्रित होनेसे और भी उत्तमोत्तम होजाता है. मानों सोनामें सुगन्ध मिल जाता है । देखो ! श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द गीतामें अर्जुनप्रति कहते हैं कि—

तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानीभ्योऽपिमतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगी तस्माद्योगीभवार्जुन ॥
योगिनामपिसर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजतेयोमां समेयुक्ततमोमतः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता अ० ६ श्लो० ४६, ४७ ।

अर्थात् हे अर्जुन ! जंगलोंमें बसकर, निराहार रहकर, सहस्रों वर्ष पर्यन्त तप करनेवालोंसे, तथा कृच्छ्र चान्द्रायण इत्यादि करनेवालेंसे, वह योगी मेरे जानते अधिक है जो ईश्वरप्राप्ति निमित्त अपनी सकल मनोकामनाओं औ वासनाओंको क्षय करके योगक्रियामें तत्पर रहता है, और जो ज्ञानी अपनेको ब्रह्मरूप समझते है ऐसे ज्ञानियोंसे भी योगी उत्तम है । फिर जो ज्योतिष्टोमादि नाना प्रकारके यज्ञोंको कर स्वर्ग इत्यादिकी कामना करते है उन कार्मियोंसे भी योगीको मैं उत्तम मानता हूं । तैसे योगियोंमे भी जो योगी अन्तरात्मासे मेरेमें चित्त लगाकर श्रद्धापूर्वक मेरेको भजता है अर्थात् प्रेमभक्तियुक्त है उसे उत्तमोत्तम योगी मानता हूं । फिर इसी तात्पर्यको अध्याय ८ के दसवे श्लोकमें भी कहा है

* प्राणप्रतिष्ठाविधि देखलेना ।

कि, "भक्त्यायुक्तोयोगबलेनचैव" अर्थात् भक्ति युक्त होकर योगबलसे परमपुरुषको प्राप्त होता है । मेरे कहनेका मुख्य अभिप्राय यह है कि योगक्रिया अवश्य साधन करनी चाहिये । इस योगके आठ अङ्ग हैं, पर बहुतसी क्रिया ऐसी हैं जो अन्तरङ्ग कही जाती हैं, तिनमें एक क्रिया त्राटक है, जिसके साधनसे चित्तवृत्ति बहुतही शीघ्र निरोध होजाती है, क्योंकि " योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः " चित्तवृत्तिके निरोधही को योग कहते हैं । सो त्राटक कैसे सिद्ध किया जाता है ? सुनिये ।

निरीक्ष्येनिश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यसमाहितः ।
अश्रुसम्पातपर्यन्तं आचार्यैस्त्राटकंस्मृतम् ॥

अर्थात् किसी सूक्ष्म लक्ष्यको अपने सामने रखकर अपनी दृष्टिको उसपर स्थिर कर लगातार देखता रहे, और ऐसा अभ्यास करे कि, जब तक नेत्रोंमें आंसू न भरआवे तबतक एकटक देखताही रहे, पलकें न हिलने पावें, पुतलियां नीचे ऊपर न हों, एकदम चंचलता रहित स्थिर होजावे । इसीको आचार्योंने त्राटक कहा है । बहुतेरे अभ्यास करनेवाले नानाप्रकारका लक्ष्य बनाकर अवलोकन किया करते हैं, अर्थात् किसी प्रकारका चिन्ह बनालेते हैं, पर इन सब चिन्होंमें उत्तम चिन्ह जिसमें पूज्य बुद्धि भी हो क्या है ? प्रतिमा है । देखिये यह शालग्राम जो ईश्वरकृत गोलमोल सुन्दर चिक्कण बनी बनाई प्रतिमा तयार है उसे अपने नेत्रोंके सामने किसी एक पात्रमें रखकर अपनी बैठकसे कुछ ऊचा सिंहासन इत्यादि बनाकर रखलेवे, फिर उसपर त्राटक करे, अर्थात् अपने नेत्रोंको देरतक विना पलकोंके गिराये उस शालग्राम पर जमारखे और ॐकार * का अथवा हंसः सोहंका अथवा अपने इष्टदेवके मन्त्रका मानसिक जप ‡ करता जावे. ऐसा कुछकाल अभ्यास करनेसे चित्तवृत्ति

* ॐकारके जपका विधि श्रीस्वामी हंसस्वरूपकृत मंत्रप्रभाकर में देखो ।

‡ देखो श्रीस्वामीहंसस्वरूपकृतवृहत्सन्ध्याविधि ।

एकदम शान्त होजावेगी । यह एक सामान्य औ साधारण रीति है । इससे भी विशेष रीति यह है कि, अपने इष्टदेवकी मूर्त्ति, बनाकर उस मूर्त्तिके दोनों भउहोंके बिच एक कस्तूरीकी बिन्दु लगादे और उस बिन्दु पर अपने नेत्रोंको जमा रखनेका अभ्यास करे । अपने इष्टदेवका मन्त्र मानसिक रीतिसे जपता जावे । कुछकाल ऐसे करनेसे नाना प्रकारकी चंचलता जातीरहेगी । यह मन जो अत्यन्त चंचल है, अन्य किसी प्रकार स्थिर नहीं रहता, सो इस त्राटकके बलसे अवश्यही एकाग्र होजावेगा । चित्तवृत्तियोंका एकाग्र होना औ मनका स्थिर होना ब्रह्मविद्याके साधनका प्रथम अङ्ग है, क्योंकि विना एकाग्रता ब्रह्मविद्या प्राप्त होही नहीं सकती इस प्रथम अङ्गका साधन प्रतिमा द्वारा ही शीघ्र सिद्ध होता है । यहां नवीन प्रकाशवाले शंका करेंगे कि, जब किसी प्रकारका भी सूक्ष्म लक्ष्य (चिन्ह) बनाकर त्राटक कर सकते हौ तो केवल शालग्राम औ प्रतिमा ही में क्यों ऐसा करोगे ? अन्य किसी गोल मोल पदार्थ पर जैसे, तोपके गोले अथवा आलू वा सेव पर क्यों नहीं करलेते ? वे भी तो गोलमोल ईश्वरहीके बनायेहुए है । इसके दो उत्तर है । प्रथम यह है कि, शालग्रामशिलामे औ इष्टदेवकी मूर्त्तिमें चित्तके आकर्षण करनेकी एक विशेष शक्ति है, इसीकारण इस शालग्रामको धोकर पीनेसे औ उसपर नेत्रोंके लगानेसे विद्युतकी अधिकता होती है । दूसरी बात यह है कि "महाजनोयेन गतः सपन्था" अथवा "यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः" अर्थात् पूर्वके महात्माओंने जिस पदार्थसे जो कार्यसाधन करनेकी आज्ञा दी औ जिस मार्ग होकर चले अथवा जैसा २ आचरण किया तिसी मार्ग होकर चलना, तदाकार आचरण करना, उनही पदार्थोंसे उनकी आज्ञानुसार काम लेना, हमलोगोंका परमधर्म है, क्योंकि हमलोग सनातनधर्मावलम्बी हैं जो कार्य सनातनसे होते आते हैं उनहीके करनेके अधिकारी हैं । हम नवीन मतवाले नहीं हैं कि, आज कुछ औ कल कुछ करने लगजावे । यह तो नवीन प्रकाशवालोंका काम है कि, आज

हिन्दू, कल मुसलमान, परसों इसाई, चौथे दिन यहूदी, पाचवें दिन बौद्ध छठवें दिन दरियादासी, औ सातवें दिन दयानन्दी वनगये, अर्थात् प्रति-दिन एकमतके अनुयायी होते चलेगये। यदि ऐसा करनेसे भी उनको कुछ विषयसुख नहीं मिला, तो झट नास्तिक अथवा आजाद (Free Thinker) बनवैठे।

प्यारेश्रोतृगण! हमलोग ऐसे चचल नहीं हैं, हमतो सनातनरीतियों पर आजतक कटिवद्ध हो चलरहे है। शालग्राम अथवा अपने इष्टकीमूर्त्ति छोड़ किसी अन्य पदार्थ से त्राटक का काम नहीं लेसकते। जिनके पूर्व में कोई आचार्य नहीं हुए न कोई मार्ग वताया, वे जिस मार्गको चाहें तयार करलें। वर्त्तमान समयमें धर्मपर राजशासन है ही नहीं जिसका उनको कुछ भय हो।

प्यारेश्रोतृगण! इस शालग्राम वा इष्टकी मूर्त्तियोंसे हमलोग केवल त्राटक ही नहीं साधन करते वरु योगके और प्रेमके अनेक भिन्न२ अंगों का साधन करते है। सुनिये! एकाग्रचित्त होजाइये! योगके मुख्य अगोंमें **धारणा** औ **ध्यान** जो दो अङ्ग है, जिनके साधनके पश्चात् **समाधि** प्राप्त होती है, इनको हमलोग **शालग्राम** अथवा इष्टदेवकी मूर्त्तिसे पूर्ण प्रकार साधन करलेते हैं। सुनिये! पहले मैं **धारणा** का विषय कहलेता हूं फिर **ध्यान**का कहूंगा। पतंजलिने योगदर्शन अध्याय ३ सूत्र १ में धारणा के विषय लिखा है कि, "देशवन्धश्चित्तस्यधारणा" जिसकाभाष्य व्यासदेव यों करते है–**देशे नाभिचक्रादौचित्तस्यवन्धो विषयान्तरपरिहारेण यत् स्थिरीकरणं सा चित्तस्यधारणेत्युच्यते**। अर्थात् नाभिचक्र इत्यादिमें, चित्तको सर्वप्रकारके विषयोंसे रोककर स्थिरकरनेको **धारणा** कहतेहैं। मैं पहले कहआया हू कि, कुछ काल त्राटकके साधन करनेसे चित्त वृत्तियों का निरोध होजाता है, और विषयोंसे शान्ति प्राप्त होकर चंचलता मिटजाती है। जब चंचलता जाती रही और शुद्ध अन्तःकरण होगया, तव **धारणा** सिद्ध करनेके निमित्त चाहे नाभिचक्रके रूपका ध्यान हो अथवा

अपने इष्टकी मूर्त्ति हो । क्योंकि नाभिचक्रमें भी रुद्रदेव औ लाकिनी देवीकी मूर्त्ति है, इसलिये व्यासदेवने इत्यादि शब्द लिखकर यह वतला दिया कि किसी मूर्त्ति पर, जिसे अपना इष्ट माना हो, अन्तःकरणको वा धना चाहिये। कुछकाल ऐसे करनेसे अपने इष्टदेवके आकारमें अपनी वृत्ति जमजाती है, अर्थात् अन्तःकरणमें तदाकारता होनेके कारण अपना सारा स्वरूप तदाकार होजाता है ।; यह सुनकर हमारे नवीन प्रकाश वाले यों शंका किया करते हैं कि तुम्हारी प्रतिमा तो पत्थरकी है तो क्या तुम्हारा शरीर भी तदाकार हो पत्थर होजावेगा ? वाह जी समझनेवाले ! अच्छा समझा । वारजाऊ आपकी वुद्धि पर और कुर्वानजाऊं आपकी विद्या पर। भला सोचिये तो सही मैं कहरहा हूं कि स्वरूप तदाकार होजावेगा और आप समझ रहे है कि शरीर पत्थर होजावेगा ।

प्यारेनवीनप्रकाशवाले नवयुवको ! आपने तो कुछ संस्कृत पढ़ा लिखा नहीं, देशकी उन्नातिकेलिये कपड़ेकी दूकान खोलवैठे, फिर आपस्वरूप औ शरीरका भेद कैसे समझ सकते हैं ? कदापि नहीं । स्वरूप औ शरीरमें पृथिवी आकाशका अन्तर है, इनके भेद समझनेकेलिये किसी महापुरुषकी सेवामें जाकर कुछ दिन आत्मविद्याका अभ्यास कीजिये तव स्वरूप औ शरीरका भेद समझमें आवेगा । यदि प्रतिमाका विषय इस समय मेरे हाथमें न होता तो मैं ही आपको स्वरूप औ शरीरका भेद समझा देता, पर मध्यमें इस विषय के छेड़नेसे व्याख्यान रहजावेगा, इसकारण फिर कभी अवकाश पाकर आपको स्वरूप औ शरीरका भेद वतादूंगा, पर जवतक संक्षिप्तसे आप इतना तो अवश्य समझलीजिये कि, स्वरूप चैतन्य है, और शरीर जड़ है। इतना कहने ही से आपको वोध होजावेगा कि, इनदोनोंमे वहुत वड़ा अन्तर है । अव मैं यह समझाता हूं कि, अपना स्वरूप क्या है? और प्रतिमामें धारणा सिद्ध होनेसे स्वरूपकी तदाकारता क्या है ?- सुनिये ।

प्यारे श्रोताओ ! हमलोग जो प्रतिमा वनाते हैं वह मानो अपने

इष्टदेवकी मूर्त्ति (तसवीर) बनाते हैं, जैसे श्री कृष्णचन्द्रकी प्रतिमा बनाई तो मानो उनकी तसवीर बनाई । किसीकी मूर्त्ति अथवा तसवीर में क्या शक्ति है यह आप जानते होंगे । मै दूसरा दृष्टान्त आपको क्या दूं? यदि आप कुछ संस्कृत पढे लिखे हैं तो जानते होंगे कि अनिरुद्धकी तसवीर से ही ऊषाको प्रेमका उत्थान हुआ था । यदि फारसी पढ़ा हो तो बहारदानिश (بہار دانش) में आपने पढा होगा कि, राजकुमारी (शाहज़ादी) बहरवरबानू (بہروربانو) की तसवीर देखकर राजकुमार (शाहज़ादा) जहान्दारशाह ऐसा आसक्त (عاشق) होगया कि, दानापानी सब छोड़ दिन रात बहरवरबानू ही के रूप में पागलके सदृश एकटक ध्यान लगाये बैठा रहता था । आपतो नवीनप्रकाशवाले हैं, आपके टेब्ल पर तो न जाने कितनी कहानिया (Novels) स्त्री पुरुषके प्रेम औ स्नेहके विषय रखी होंगी, जिनको आप अपने हाथमें लेकर रेलगाड़ी पर पढते चले जाते हैं और अपने मनहीमन मे एकप्रकारका आनन्द लाभ करते हैं। मैने कहानिया (Novels) पढते समय आपलोगों की आखोंमें आसू निकलते देखा है । इन बहुतेरी कहानियोंमें केवल चित्र देखने ही से प्रेमका प्रगट होआना देखागया है । अब यदि आपसे यह कहाजावे कि जहांदारशाह तो बहरवरबानू के रूप (तसवीर) में तदाकार होगया, तो क्या इसका आप यही अर्थ समझेंगे कि, बहरवरबानूकी तसवीरके समान वह भी नील पीत रंग बनकर वा पतली मोटी रेखा बनकर चट कागज़में चिपकगया ? यदि आप ऐसाही समझें तवतो प्रतिमाके साथ हमारा भी पत्थर होजाना उचित, पर यह अर्थ तदाकार होनेका नहीं है, इसका अर्थ यह है कि जहांदार सोते, जागते, चलते, फिरते, उठते, बैठते, बोलते, चालते, देखते, सुनते जहा देखता है तहा सर्वत्र बहरवरबानू ही देखपड़ती है । इसी प्रकार हमलोग धारणाका अभ्यास करते २ अपने इष्टदेव श्यामसुन्दर कृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी मूर्तिमें तदाकार होजाते हैं, अर्थात् हमारे आत्माकी जो चार अवस्था हैं जागरित, स्वप्न,

सुषुप्ति और तुरीया, इन चारों अवस्थाओंमें कृष्ण ही कृष्ण देखने लगजाता है, "श्याम ही श्याम भासने लगजाता है। "जिधर देखता हूं उधर तूही तू है" हो जाता है, जैसे किसीकी आंखोंमें हरे रंगका काच लगानेसे सर्वत्र हरांही हरा दीखने लगता है, ऐसेही प्रेमियोंके नेत्रमें प्रेमका काच लगजानेसे सर्वत्र श्याम ही श्याम दीखने लगजाता है। देखो! जिस समय ऊधो मथुराजीसे श्यामसुन्दरका पत्र लेकर गोकुलमे आये हैं उस समय गोपिकाओंने जिनको श्यामसुन्दरके स्वरूपमे तदाकारता होगई थी कैसा सुन्दर वचन सुनाया है— कवित्त—

श्याम तन श्याममन श्यामही हमारो धन आठोंयाम ऊधो यहां श्यामही सों काम है॥ १॥ श्याम हिय श्याम जिय श्याम बिना नाहींतिये आंधरेकी लाकड़ी आधार नाम श्याम है॥ २॥ श्याम गत श्याममत श्यामही प्रताप पत श्याम सुखदाई पै भुलाये सुत धाम है॥ ३ तुमतो ऊधो भये बौरे पाती लेआये दौरे तुम्हें कौन सुने यहां रोम रोम श्याम है॥ ४॥ लीजिये और एक भजन सुनिये—

सखि हे कानन कुंजबिहारी॥ जित देखूं तित हरि २ दीसत हरि कुंजनकी डारी॥ १॥ तन हरि मन हरि घर आगन हरि रोम २ हरि राजै। कायागढकी गगनगुफामें हरिकी मुरली बाजै॥ २॥ देवदनुज हरि, नाग मनुज हरि, हरि घट २ में सोहै॥ ३॥ कोयल कीर कपोत कमेरी हरि चातक धुनि मोहै॥ ४॥ बाल बृद्धहरि पुरुष नारि हरि हरिहिं प्रजा हरि भूपा॥ ५॥ गिरि सुमेरुके शृंग विराजै हरिको रूप अनूपा॥ ६॥ घनघमण्ड मारुत प्रचण्ड हरि सूर्य चन्द्र हरि छाजै॥ ७॥ ऐसो व्यापक दीनबन्धु हरि कबधौं हंस निवाजै॥ ८॥

मुख्य अभिप्राय यह है कि, अन्तःकरण जो चैतन्य उसे तदाकारता होजाती है न कि शरीर पत्थर होजाता है। इसी प्रतिमा (मूर्ति تصویر) को मुसलमान और ईसाई (बुत بت) कहकर पुकारते है, पर सब विद्वानो और बुद्धिमानोको पूर्ण प्रकार ज्ञात है कि, वही लोग इस शब्द

" बुत " को अपने प्राणप्रीतम अर्थात् माशूक़ के लिये प्रयोग कियाकरते है । जहा उर्दू और फारसीके कवियोंने यह शब्द काव्योंमें लिखा है सर्वत्र प्रीतम "माशूक़" से तात्पर्य रखता है, सुनिये ! मैं आपको सुनाता हू ।, मसफ़ी कवि " مصحفی شاعر " फारसीमें कहता है

از پریشانی نیم آزرده چون زلف بتان
دیده ام از تنگدستیها فراغ خویش را

अज प्रेशानी नयम् आजुर्दा चूं जुल्फे बुतां ।
दीदाअम अज़ तंगदस्तीहा फ़रागे खेशरा ॥

यहा (जुल्फेबुता زلف بتان) वाक्यसे उसके कहनेका तात्पर्य यही है कि " माशूक़ोंके जुल्फ " अर्थात् प्रीतमके घूघरवाले विखरेहुए केशके समान मै विखरकर दुखी नहीं हू । इससे स्वच्छ जानपड़ता है कि "बुत" उसीको कहते है जो अत्यन्त सुन्दर अपना प्राणप्रिय हो, सो यहा मन्दिरोंमें हम सनातनधर्मावलम्बी तीनोलोकोके परम सुन्दर प्राणप्रिय मनोहर मूर्त्ति जगदीश्वरकी तसवीर वना उसपर आसक्त (عاشق) होते हैं, अर्थात् अपना पूर्ण प्रेम उसपर डालदेते है। हा इतना तो मै अवश्य कहूगा कि, मूर्ति अत्यन्त सुन्दर मनोहर चित्तको आकर्षण करनेवाली वनानी चाहिये । जैसे मुम्बई (Bombay) शहरके माधोवारामें श्री लक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा वनीहुई है, जिसके देखते चित्त एकदम खिंचजाता है, हिन्दू , मुसलमान, ईसाई, जो कोई उनके सामने जा खड़ा होता है दस पाच मिनट तक टक लगाये देखताही रहता है । प्रतिमा वनानेका मुख्य तात्पर्य भी यही है कि, देखतेही प्रेम उमडआवे, और एकाग्रता होजावे । सो हमारी प्रतिमा से प्रेमयुक्त योगका साधन होही जाता है । अर्थात् प्रेमयोग जो सब योगोंमे उत्तम औ श्रेष्ठ है प्राप्त होजाता है। जो प्रारब्ध हीन हैं उनको तो ब्रह्माने इस संसारमे मनुष्य बनाकर ठग दिया । यदि उनके हृदयमें प्रतिमा के सामने प्रेम उत्पन्न न हुआ तो ऐसे लोगोकी गिनती क्या है ? उनको तो कोई अमृतके कुण्डके समीप भी लेजावे तो

प्यासेही फिरेंगे । किसी फारसीके कविने कहा है ।

تہیدستاں قسمت را چہ سود از رہبر کامل
کہ خضر از آب حیواں تشنہ می آرد سکندر را

तिहीदस्ताने किस्मतरा चे सूद अज़ रहवेर कामिल ।
कि ख़िज्र अज़ आवे हैवा तिश्ना मिआरद सिकन्दररा ॥

अर्थात् सिकन्दर ऐसे चक्रवर्ती नरेशको उनके पैग़म्बर हज़रतख़िज़िर (حضرت خضر) अर्थात् वरुण देवता बड़े परिश्रमसे अमृतकुण्डके समीप लेगये, पर वह अभागा अमृत नहीं पीसका तो इसमें किसका दोष? इसलिये यहां कवि कहता है कि जो कर्महीन (تہیدستاں قسمت) हैं उनको अच्छे मार्ग वतानेवालेसे भी कुछ लाभ नहीं होता । ऐसोंकी क्या गिनती कीजावे । इसी कारण सूफी (صوفی) कहता है कि

مسلماں گر بدانستے کہ بت چیست
بدانستے کہ دیں در بت پرستی است

मुसल्मां गर वदानिस्ते कि वुत चीस्त ।
वदानिस्ते कि दीं दर वुतपरस्तीस्त ।

जिसका अर्थ यह है कि मुसलमान यदि जानता कि " वुत " क्या वस्तु है ? तो अवश्य उसको यह वोध होजाता कि " दीन " परलोककी सिद्धि यदि है तो वुतपरस्ती ही में अर्थात् प्रतिमापूजनमे है ।

प्यारे सज्जनो! अब यह तो अवश्य पूछना चाहिये कि, प्रतिमामें जो धारणा कीजाती है, पत्थर समझकर कीजाती है अथवा कुछ और समझकर कीजाती है । इस विषयमें पहले मै आपको एक उदाहरण देकर समझाता हूं । देखिये जब कभी कोई मनुष्य अपने गुरु, माता, पिता, भ्राता, पुत्र, पौत्र, मित्र, सखा, सुहृद इत्यादिकी मूर्ति अपने वा किसी दूसरेके घरकी दीवाल पर लटकाहुआ देखता है तो उस देखनेका फल उसके हृदय पर क्या होता है ? सो सुनिये । पहले तो एकबारगी देखतेही हृदयमें उस मूर्तिवालेका नाम, रूप, छवि, सौन्दर्य, गुण, हाव, भाव, क-

टान्त इत्यादि स्मरण होआते हैं, फिर मिलनेकी अभिलाषा उत्पन्न होआती है । यदि गुरु, माता, पिताकी मूर्ति है तो देखकर मनही मन प्रणाम करता है, और जिस प्रकार गुरुने प्रीति पूर्वक नानाप्रकारकी शिक्षा दीथी, माता पिताने बचपनमें कष्ट उठाकर पाला था, अपने सग प्रेम किया था, मिष्टान्न इत्यादि देकर सोनेके कटोरोंमें दूध पिलाया था, सब बाते स्मरण होआती हैं। यदि किसी परम प्रिय मित्र अथवा पुत्र पौत्रकी प्रतिमा (Picture) है तो देखकर उनका हँसना, बोलना, अपने संग प्रेम करना इत्यादि सब स्मरण होआते है । अब विचारने योग्य है कि, जितनी बातें मूर्त्ति देखनेसे स्मरण होआई, क्या उस मूर्तिमें बनी हैं ? कदापिनहीं ! उस मूर्ति में तो केवल दसपांच टेढी सीधी लकीरे है, दसबीस छोटी बडी बिन्दु हैं, और पाच सात प्रकारके नीले, पीले, हरे, लाल रंग हैं, पर इसी मूर्तिसे चित्तमे सर्वप्रकारके भाव होआते हैं । मुख्य अभिप्राय यह है कि, किसीकी मूर्ति नेत्रोंके सामने आनेही से उस व्यक्तिके नाम, रूप, गुण इत्यादिकी स्मृति होआती है ।

प्यारे सज्जनो ! इसी उदाहरणसे आप समझजावेंगे कि, इसी प्रकार हमारे मन्दिरोमें हमारे श्यामसुन्दर आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रकी प्रतिमा (Statue तसवीर) बनी है, जिसके सामने जाते ही कृष्णावतारकी सारी बातें स्मरण होआती हैं । जिस प्रकार उस योगीश्वर भगवानने अर्जुनको कर्मयोग, ज्ञानयोग, प्रेमयोग, इत्यादिकी शिक्षा दीथी, जिस प्रकार अपने भक्तो औ प्रेमियोके संग नाना प्रकारके हाव, भाव, और प्रेमकी रीति दिखलाई थी, जिसप्रकार संसारके कल्याण निमित्त योग औ प्रेममार्गको प्रकट कर हमलोगोको योगी औ प्रेमी बनाकर अपने स्वरूपमें मिला लेनेकी प्रतिज्ञा कीथी, वे सब बातें स्मरण होआती हैं । यहांतक कि, बहुतेरे प्रेमी प्रतिमाके सम्मुख जातेही प्रेमसे भरआते है, नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगजाता है, रोमाञ्चित होजाते है, एकदम प्रेममें मग्न हो घंटों उस परमात्मदेवके ध्यानमें मग्न होजाते है। तात्पर्य यह है कि प्रतिमासे प्रतिमा

वालेके नाम, रूप, गुण, लीला औ धामकी स्मृति और धारणा सिद्ध होती है, और प्रेमका प्रवाह अहर्निशि होकर तदाकार होजाता है । ईश्वर की व्यापकता यथार्थ रूप से उसके अन्तःकरणमे निश्चय होजाती है, अर्थात् उस प्रतिमा से ब्रह्मविद्या प्राप्त होजाती है ।

अब यह तो अवश्य जानना चाहिये कि, एवम्प्रकार धारणा सिद्ध होनेके पश्चात् ध्यान कैसे सिद्धहोता है? सो सुनिये ! प्रतिमाके मुखसें भउहोंके बीच कस्तूरी अथवा अन्य किसीप्रकारके चन्दन इत्यादिकी विन्दु लगाकर वरसों* अवलोकन करने से नेत्रोंके भीतर सारी प्रतिमाका आकार बनता जाता है, और जब वह जमजाता है तो उसको ध्यान कहते हैं । जैसे आलोकलेख्य (Photograph) के काच (Lens) में यह शक्ति है कि, अपने सम्मुख वाली वस्तुके सम्पूर्ण आकारको खीचलेता है । इसी प्रकार मनुष्य शरीरको आलोकलेखकयंत्र (Photograph) समझिये, जिसमे अन्तःकरणका पट्ट (प्लेट Plate) बना हुआ है , और यह दोनों नेत्र मानों दो काच (Lens) लगे हुए है, जिस होकर संसारकी सर्व वस्तुओंके विम्ब आपके अन्तःकरणके प्लेट (Plate) पर खिंचजाते है और यदि उनका अभ्यास बना रहे तो आयुष्पर्यन्त वे अन्तःकरणसे मिटते नहीं । जैसे पढ़नेवालोंके अन्तःकरणमे अक्षरोंकी जमाव होजाने से केवल उन अक्षरोंका रूप ही नहीं जमता वरु उन अक्षरोके मेलसे जो शब्द बनते हैं वे भी अपने अर्थ सहित जमजाते है ।

इसी प्रकार प्रतिमा पर त्राटक करनेसे अन्तःकरणमें केवल आकार ही नहीं जमजाता वरु उस आकारसे जितने अर्थ मै समझा आया हूं सब जमजाते है, अर्थात् जिसकी प्रतिमा है वह सर्वव्यापक है, सर्वज्ञ है, दयासागर है, दुखभंजन है, रक्षक है, कृपालु है, कर्ता है, सृष्टिका स्वामी है

* वहुत लोग समझरहे होंगे कि दोही चार दिन त्राटक वा धारणा करनेसे काम निकलजावेगा, सो यह लड़कोंका खेल नहीं है, बरसों साधन करनेकी आवश्यकता है ।

भक्तवत्सल है, दीनबन्धु है, अन्तर्यामी है, सबका द्रष्टा है, अन्तरात्मदृक् है, प्रेमी है, प्रेमका प्रत्युत्तर देनेवाला है, प्रेमकी रीति जाननेवाला है, प्रेमियोंको शीघ्र प्राप्त होनेवाला है, सुन्दरहै, छविसागर है कहातककहूं अनन्त गुण विशिष्ट है। इनसबअर्थोंकी स्मृति प्रतिमाके दर्शनके साथही होआतीहै।

एक विचित्रवार्ता मै आपको यहा यहदेखलाताहूं कि, फ़ोटोग्राफका पट्ट जड़ है, इसलिये जो मूर्ति उस प्लेट पर खिंचजाती है वह भी जड़ रहती है, बोलती चालती नहीं, पर जो मूर्ति आपके नेत्ररूप काच (Lens) होकर अन्तःकरणके प्लेट पर खिंचजाती है वह चैतन्य होजाती है, कारण यह कि आपका अन्तःकरण रूप प्लेट चैतन्य है। इसी कारण श्यामसुन्दरकी मूर्ति जो प्रतिमा द्वारा आपने अपने अन्तःकरणमें जमाली है वह जब तयार होगी तो चैतन्य होकर निकलेगी, आपसे हँसने बोलने लगजावेगी, क्योंकि जैसा पट्ट होगा वैसीही मूर्ति होगी। यह विज्ञानशास्त्र से सिद्ध है । इसी प्रकार अन्तःकरण पर धारणाके जमानेको महर्षियोने ध्यान कहा है, देखिये ! योगसूत्रके अध्याय ३ सूत्र २ में कहा है । " तत्र प्रत्ययैकतानताध्यानम् " जिसका भाष्य श्री व्यासदेव यों करते हैं कि—

तत्रतस्मिन्देशेयत्रचित्तवृतंतत्रप्रत्ययस्यज्ञानस्ययाएकतानताविसदृशपरिणामपरिहारद्वारेणयदेवधारणायामालम्बनीकृतंतदालम्बतयैवनिरन्तरमुत्पात्तिःसाध्यानमुच्यते ।

अर्थात् धारणा करते समय जिस विशेष वस्तुमे चित्त लगायागया है उसीमें प्रत्यय अर्थात् अन्यप्रकारके विषयोंके सब आश्रयोंको छोड़ केवल उसीमे बुद्धिका एकाग्र होना, अर्थात् निरन्तर लगजाना, ध्यान कहाजाता है।

प्यारे सज्जनो ! एवमप्रकार धारणा सिद्ध होजानेके पश्चात् ध्यान सिद्ध होजाता है, अर्थात् अन्तःकरणके पट्ट (Plate) पर श्यामसुन्दरके रूप, नाम, गुण, लीला धाम सब जमजाते है । इसी ध्यानके आगे समाधि है। ध्यान सिद्ध होते २ साधकको समाधि भी प्राप्त होजाती है।

सो समाधि किसे कहते है ? सो सुनिये " तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिवसमाधिः " पतजलि अध्याय ३. सूत्र ३ । अर्थात् वही ध्यान जब ध्येयके आकारसे भासने लगता है, ध्यान औ ध्येयमें भेदबुद्धि नहीं रहती, ध्याता का स्वरूप शून्यके समान विदित होता है, तब उसे समाधि कहते है । अर्थात् जब इष्टदेवके शृंगार औ माधुर्यके ध्यानमें एकबारगी ऐसा लीन होजाता है कि, ध्यान औ ध्येयमें कुछ अन्तर नहीं रहता, यह ज्ञात नहीं रहता कि, मैं कौन हूं और किसका ध्यान कररहा हूं ? वरु साक्षात् ध्येयमे अपने रूपकी शून्यता होकर तदाकारता होजाती है, वही समाधि है। ध्यान औ समाधिमें इतना ही अन्तर है कि, ध्यान में त्रिपुटी अर्थात् ध्याता, ध्यान, ध्येय तीनोका ज्ञान बना रहता है, और समाधिमें तीनों सिमट कर एक होजाते है । गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं " सोइजाने जेहि देहु जनाई । जानत तुमहिं तुमहिं होइजाई " देखिये श्री शंकराचार्य भी जिस समय शिवके रूपका ध्यान करते तदाकार होगये है तो समाधि टूटने पर कहते है कि—

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तादिनाहं । नश्रोत्रंनजिव्हानचघ्राणनेत्रम् ॥
नचव्योमभूमिर्नतेजोनवायुः । चिदानन्दरूपः शिवोऽहंशिवोऽहम् ॥
अहंप्राणसंज्ञोनतेपंचवायु । नेवासप्तधातुर्नवापंचकोशाः ॥
नवाक्यानिपादोनचोपस्थपायुः । चिदान्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्
नपुण्यनपापंनसौख्यम्नदुःखम् । नमंत्रंनतीर्थंनवेदानयज्ञाः ॥
अहंभोजनंनैवभोज्यं न भोक्ता । चिदानन्दरूपःशिवोऽहंशिवोऽहम् ॥
नमेद्वेषरागौनमेलोभमोहौ । मदोनैवमेनैवमात्सर्यभावम् ।
नधर्मोनचार्थोनकामोनमोक्ष । श्चिदानन्दरूपःशिवोऽहंशिवोऽहम् ॥
नमृत्युर्नशंकानमेजातिभेदाः । पितानैवमेनैवमातानजन्म ।
नबन्धुर्नमित्रंगुरुर्नैवशिष्य । श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहंशिवोऽहम् ॥
अहंनिर्विशेषोनिराकाररूपः । विभुर्व्यापिसर्वत्रसर्वेन्द्रियाणाम् ।
नचाबन्धनंनैवमुक्तिर्नभीति । श्चिदानन्दरूपःशिवोऽहंशिवोऽहम् ॥

अर्थात् न मै बुद्धि हूं, न अहंकार हूं, न चित्त हूं, न श्रोत्र हूं, न जिव्हा हूं, न नाक हूं, न आख हूं, न आकाश हूं, न पृथिवी हूं, न अग्नि हू, न वायु हू, न प्राण हूं, न व्यान हूं, न समान हूं, न अपान हूं, न उदान हूं, न रोम हूं, न चर्म हूं, न रुधिर हूं, न मास हूं, न हाड हूं, न मज्जा हूं, न वीर्य हूं, न अन्नमय कोश हूं, न प्राणमय कोश हूं, न मनोमय कोश हूं, न विज्ञानमय कोश हूं, न वाक्य हूं, न चरण हूं, न उपस्थ हू, न पायु हूं, न पुण्य हू, न पाप हू, न दुःख हूं, न सुख हूं, न मंत्र हू, न तीर्थ हूं, न वेद हू, न यज्ञ हू, न भोजनकी क्रिया मै हूं, न भोजन करनेवाला हूं, न भोजनके योग्य कोईवस्तु हूं, न मुझे राग द्वेष है, न लोभ मोह है, न मुझे मद है, न मात्सर्यका कोई भाव है, न मैं धर्म हूं, न काम हूं, न अर्थ हूं, न मोक्ष हूं, न मृत्यु हू न शंका हूं, न मुझमें जातिभेद है, न मेरा कोई पिता है, न माता है, न जन्म है, न मेरा कोई बन्धु है न मित्र है, न गुरु है, न शिष्य है, न मुझे बन्धन है, न मोक्ष है, न भय है । मै तो सदा निर्विशेष, निराकार, सर्वत्र व्यापक, सर्व इन्द्रियोका विभु, सच्चिदानन्दस्वरूप शिव हूं, अर्थात् परम कल्याण रूप हूं ।

प्यारे सभासदो ! इसी प्रकार प्रतिमा द्वारा सनातनधर्मावलम्बी ब्रह्मविद्या की सिद्धि कर ब्रह्ममे लय होजाते है । यह मैंने सिद्ध करदिया एक बार सब मिल बोलिये । (हरे राम हरे राम राम २ हरे १००)

प्यारे श्रोतृवृन्द ! आपको स्मरण होगा कि, मै इस व्याख्यानके मध्यमें प्रतिमा पर त्राटक और धारणा के साधनका वर्णन करतेहुए वार २ यहकहचुका हूं कि, साधन करते समय " ॐ कार " तथा " हंसः सोहं. " अथवा अपने इष्टदेवका कोई मंत्र जपताजावे (देखो पृष्ठ२३७) इसमेरे कहनेपर बहुतोके हृदयमे यहशंका अवश्य रहगई होगी कि, प्रतिमा पर त्राटक और धारणा इत्यादिके समय मंत्र जपनेका क्या प्रयोजन ? सो सुनिये ! मै पूर्ण प्रकार उस जपका फल देखलाता हूं । भगवान पतंजलि अपने योगसूत्रके अध्याय २ सूत्र ४४ में कहते है कि—

" **स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः** " जिसका अर्थ व्यासदेव यों करते है कि– " **अभिप्रेतमंत्रजपादिलक्षणे स्वाध्यायेप्रक्रम्यमाणेयोगिनइष्टया अभिप्रेतयादेवतयासम्प्रयोगो भवति । सादेवता प्रत्यक्षीभवतीत्यर्थः** । मुख्य तात्पर्य यह है कि त्राटक, धारणा, ध्यान इत्यादिके समय किसी प्रकारका मंत्र जपते रहनेसे उस जपका जो वाचक देवता अर्थात् अपनी इच्छानुसार आवाहन और अगीकार कियेहुंए देवता (इष्टदेवता)का सम्प्रयोग (साथ) होता है, अर्थात् इष्टदेवता प्रगट और प्रत्यक्ष होजाता है जिसके द्वारा अनेक कार्यसाधन होते हैं । यहा इष्टदेवतासे परमात्माहीका ग्रहण करना चाहिये। इसलिये आप यो भी कहसकते हैं कि, **स्वाध्याय** (मंत्र जप) से परमात्माके साथ संयोग होता है, जिसके संग शुद्धाचरण औ प्रेमके संयोगसे जीव सव बन्धनोसे छूट परम पदको प्राप्त होजाता है ।

मेरे प्यारे श्रोताओ ! मैं अपनी स्वल्प बुद्धिके अनुसार आज आपके सामने यह सिद्ध करचुका कि, **प्रतिमा**से हमलोग ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति कर ईश्वरमें समाधिस्थ होजाते हैं, और परमपदकी प्राप्ति करते हैं, साधन की अवस्था तक प्रतिमाकी आवश्यकता रहती है, इसका कारण यह है कि, उपासनाके भेदसे **सवल** और **निर्वल** दो प्रकारके अधिकारी हैं, जिनका वर्णन मैं पूर्व प्रकार **उपासना**के व्याख्यानमें करचुका हूं, इसकारण जब तक निर्बल अधिकारी सबलताको न प्राप्त हो, अर्थात् सबल अधिकारी न होजावे तबतक **प्रतिमापूजन** की आवश्यकता है । सुनिये !

दुर्बलाधिकारिणा प्रथमतश्चित्तस्यस्थिरत्वापादानाय काचित् स्वाभीष्टा भागवतीं मूर्तिमालम्ब्यैवोपासना कर्त्तव्या अन्यथा तेषां सर्वरूपाद्युपाधिपरिवर्जिते निर्विकारे निरंजने गुणातीतेऽवाङ्मनसगोचरे परब्रह्मणि चित्तधारणाविडम्बनैव । परान्वित्यत्र नहि ईश्वरोपासनामुपलक्षीकृत्य कथं पौत्तलिकाडम्बरं प्रतिपादयितु प्रयतसे इति वाच्यम् महात्मभिर्ब्रह्मविद्भिः पूर्वाचार्य्यैर्हि कलुषितचित्तानां दुर्बलाधिकारिणा चित्तशुद्ध्यै प्रथमतश्चित्तस्थैर्येस

म्पादनाय धारणाध्यानावलम्बनरूपायांप्रतिमायामुपासनायाः कर्त्तव्यतयोपदिष्टत्वात् । अयमर्थः । यावन्नसत्त्वोद्रेकेण चित्तशुद्धिर्भवेत् यावन्नस्वहृदये निर्गुणपरमात्मधारणायासमाधिशक्तिर्भवेत् यावन्न तत्कथाविपुदृढाभक्तिःरतिश्चभवेत् तावदर्चाग्नौ " आदिपदेनात्र सूर्ये, वन्हौ, जले, अभिष्ट मूर्तौ वा " उपासना कर्त्तव्येत्यर्थः । परमेवं मामन्यध्वं यत्केवल मृच्छिलादिनिर्म्मितप्रतिमूर्तिमाश्रित्यैव यावज्जीवं स्थूलोपासना कर्त्तव्येति। "आसत्त्वशोधनात्क्रमेणस्वहृदयेदृढतरधारणाध्यानप्रभावेन आधित्तसमाधानाच्च । इतिकालनिर्देशात् । (देखो कल्पद्रुम)

इन वाक्योंका अर्थ स्पष्ट है । मुख्य अभिप्राय यह है कि, दुर्बल अधिकारियोंको अपने चित्तके स्थिर करनेके लिये पहले किसी अपने इष्टदेवकी मूर्तिका अवलम्बन करके उपासना करना अति आवश्यक है । क्योंकि यह तो तीन कालमें भी नहीं होसकता कि, जोही चाहे सोही एकाएक निर्गुण निराकारकी उपासना करसके, जो कोई ऐसा कहे कि, मैं बिना किसी मूर्ति वा बिना आधारके सर्व रूपोंकी उपाधि से वर्जित निर्विकार निरजन गुणातीत वचन औ मनसे परे अगोचर परब्रह्ममे चित्तकी धारणा एकाएक करलूंगा तो ऐसा उसका कहना वा करना केवल विडम्बना है यथार्थ नहीं है, और तीनकालमें ऐसा नहीं होसकता, क्योंकि महापुरुषोंका सदा सर्वदा यही विचार रहाकरता है कि, यदि उपासनाका प्रयोजन न हो तो मूर्ति इत्यादि को बनाकर पूजनेकी क्या आवश्यकता है ? इसलिये जो मनुष्य कलुषित चित्त हैं अर्थात् नानाप्रकारके संसृत द्वन्द्वोंसे अथवा अपवित्र कर्मोंसे जिनका चित्त मलीन होरहा है, और इसी कारण वे दुर्बल अधिकारी समझेजाते हैं, उनके चित्तकी शुद्धि और स्थिरताके सम्पादनके हेतु धारणा ध्यानका आश्रय रूप जो प्रतिमा तिसकी उपासना अवश्य करनी चाहिये, पूर्व के महात्माओंकी यही आज्ञा है । जबतक सत्वगुणका उद्रेक हृदयमें होकर चित्तकी शुद्धि नहो, जबतक हृदयमें निर्गुण परमात्माको धारणकर समाधिकी शक्ति न हो, जबतक उस म-

हाप्रभु मनमोहन जगत्सुन्दरकी कथा औ भक्तिमें चित्तका अनुराग न हो, तबतक प्रतिमा इत्यादिमे अर्थात् सूर्य, अग्नि, जल अथवा किसी अपने इष्टकी मूर्त्तिमें उपासना अवश्य करनी चाहिये । हमारे श्रोता ऐसा न समझजावें कि, जबतक जीता रहे तब तक स्थूल प्रतिमा हीकी उपासना करता रहे । नहीं २ ऐसा नहीं, प्रतिमाकी उपासना तबहीतक है जब तक सत्त्वगुणोंसे धीरे २ अपने हृदयमे दृढ़ धारणा और ध्यानके प्रभाव से अपना चित्त उस ब्रह्ममें समाधिस्थ नहीं हुआ, पर इस मेरे कथनसे कोई ऐसा न समझले कि, प्रतिमाकी आवश्यकता ही नही है, क्योंकि विना किसी प्रकारकी प्रतिमा, चाहे वह कृत्रिम हो, अकृत्रिम हो, न्यायिता हो, कल्पिता हो, धारणा औ ध्यान इत्यादिका सिद्ध होना असंभव है । जब धारणा औ ध्यान ही सिद्ध नहीं हुआ तो निर्गुण निर्विकारमें प्रवेश होही नहीं सकता । उस महाप्रभुके चरणोमें प्रीति औ भक्ति होही नहीं सकती ।

मै यह नहीं कहता कि, आपके नगरमें जो प्रतिमा जहां तहां बनी हुई है उनहीमें आप अवश्य जाकर धारणा ध्यान करें, वरु आप अपने मनके अनुसार किसी एक अत्यन्त सुन्दर चित्रको किसी फोटोग्राफरसे बनवाकर उसकी प्राणप्रतिष्ठा कर अपने घरमें एकान्तस्थानमें रखलेवें, और जिस प्रकार मैं अपने इस व्याख्यानमे त्राटक इत्यादिका साधन मंत्रोंके सहित प्रेमपूर्वक करनेको कहआया हूं, उसी प्रकार साधन आरम्भ करदें, कुछ दिन करके देखिये तो सही आपको कैसा आनन्दलाभ होता है । कागदपर चित्र बनाकर भी प्रतिमापूजनकी आज्ञा है । वृन्दावन की कुंजसेवामें चित्र ही की प्रतिमा बनी है । यदि इसमें भी आपके चित्त को विश्वास औ श्रद्धा नहो तो किसी मन्दिरमें बनीहुई श्यामसुन्दरकी मनोहर मूर्तिको अपने घरमे बैठ मनही मन ध्यान कर चित्त लगाइये क्योंकि कई प्रकारकी प्रतिमामें मनोमयी भी प्रतिमाही है । मनही मन आवाहन करना फिर षोडशोपचारसे पूजनकर मनही मन विसर्जन कर-

देना चाहिये। इस मनोमयीप्रतिमा के मानसपूजनका फलभी श्रेष्ठ है। यदि शंका हो कि, प्रतिमासे जब केवल धारणा और ध्यान इत्यादि के काम लिये जाते है तो इनकी पूजाकी क्या आवश्यकता है? तो इस प्रश्नके अनेक उत्तर हैं।

प्रथम तो यह कि, हम आर्य्यावर्तनिवासी ऐसे कृतज्ञ, कृतविद्, और उपकारज्ञ (Grateful) हैं कि कृतज्ञता, कर्मवेदित्व, और उपकारस्मरण (Gratitude) तो हमारे रोम २ में भरा है, इसीकारण जिसवस्तु द्वारा हमारा तनक भी उपकार होता है, हम लोग आयुष्पर्य्यन्त उसका आदर, सन्मान, और पूजन इत्यादि किया करते हैं।

देखिये माता पिता से यह हम लोगोका शरीर उत्पन्न होता है, जिस शरीर द्वारा हम अपने परमात्माका भजन करते है, इसी से हम आयुष्पर्य्यन्त उनके उपकार के वदले उनकी पूजा औ सेवा इत्यादि करते हैं। इसी प्रकार अपने गुरुदेव से हमलोगोंको ब्रह्मविद्या प्राप्त होती है, इसलिये हम गुरुदेव की पूजा औ शुश्रूषा इत्यादि सदा सर्वदा करते रहते है। वेदकी भी आज्ञा है कि, मातृदेवोभव' पितृदेवोभव' आचार्य्यदेवोभव' अर्थात् माता, पिता, औ गुरु की पूजा करो। इसी प्रकार गैया से हम लोग दूध, घी, मक्खन, मलाई उत्तम पदार्थ प्राप्त कर अपने शरीर का पोषण पालन करते हैं, और यज्ञ इत्यादि वैदिककर्म करते हैं, इसलिये हम गैयाकी पूजा गोपाष्टमीके दिन करके, गउओंको मिष्टान्न औ नानाप्रकारके पक्वान्न खिलाकर उनको प्रसन्न करते है।

मुख्य अभिप्राय मेरे कहनेका यह है कि, जो हमारा उपकार करता है उसकी हम पूजा अवश्य करतें है। इसी कारण जिन शालग्राम, नरमदेश्वर और शिवलिङ्ग इत्यादि प्रतिमा द्वारा हम लोग त्राटक, धारणा, इत्यादि क्रिया सिद्ध करते है उनकी पूजा अवश्य करते हैं।

हम ऐसे कृतघ्न (Ungrateful احسان فراموش) नहीं है कि, वाप मा को तो महा दुखमें ज्वार की रोटी और अलौनी साग खाते हुए

छोड़ आप कोट पैंटलून पहन " मिस्टर यह वह वर्मा " अथवा "मिस्टर जैसे तैसे शर्म्मा " कहला अपनी बीबी को बग़ल मे ले कम्पनी बाग की हवा खिलावें, और सोनेकी जंजीरे गलेमे डारे, और इधर बापमाके पैरोंमे दुख की बेड़ी डालदेवें । हा ! यह क्या है ? कृतघ्नता ।

हम तो जब आख उठावेंगे तब अपने उपकार करने वाले को अवश्य पूजन करेंगे ।

दूसरा उत्तर यह है कि, हमलोग अपने अवतारों की प्रतिमा बना कर पूजते है। उन अवतारो ने हमारा दुख मेटा है । हमारे धर्म की रक्षा की है । समय २ पर दुष्टों के आक्रमण से हमारा प्राण बचाया है । इसलिये हम उनके उपकारोके स्मरणार्थ उनकी मूर्ति बनाकर पूजा करतेहैं ।

तीसरा उत्तर यह है कि, इसी मूर्त्ति द्वारा मूर्त्तिवाला, जो साक्षात् परमात्मादेव है, हमको शीघ्र मिल जाता है, इसलिये हम उसकी प्रतिमा की पूजा करते है ।

चौथा उत्तर यह है कि, जब हमलोग उस पूर्ण परब्रह्म के समीप पहुंचेंगे तो कैसे हमको उसके सन्मुख प्रार्थना करनी होगी? कैसे उसका यश गाना होगा? कैसे उसको प्रसन्न करना होगा? किस मर्य्यादा, सभ्याता, शिष्टाचार, (Decorum ادب و قسر) और सुरीति से उनके साथ बचन बोलना होगा? कैसे उनकी पूजा करनी होगी? इन सब बातों को सीखने के लिये हम उस देव की मूर्त्ति बना मन्दिरों में बार २ जाकर मानो पूर्वाभिनय (Rehearsal) करते है । जैसे दिल्ली दरबार के समय " शाहन्शाह इंगलिशिया के सामने किस मर्य्यादा से जाना औ शिष्टाचार की पूर्त्ति अर्थात् अदब बजालाना चाहिये ? कुछ काल पूर्वही हिन्दुस्थानके राजामहाराजाओं को बादशाही गद्दी के आगे खड़े करके सिखलाया गया था । इसी प्रकार प्रतिमा के सामने मानो हम ईश्वर से मिलने की रीति भांति की शिक्षा पाते है । इसी कारण सर्व प्रकार के पूजनका व्यवहार मन्दिरोंमें करते है ।

अब मैं आप को यह देखलाता हूं कि, पूजा में किन २ व्यवहारोंका प्रयोजन है ? और वेदने पूजा शब्दके लिये कितने शब्दोंका प्रयोग किया है ? सो सुनिये ! निरुक्त जो वैदिक कोष है, जिसमें केवल उनहीं शब्दों के अर्थ हैं जो वेदो में आते हैं, तिसमें केवल पूजन के अर्थ में इतने शब्द लिखे हैं। पूजयति। अर्चति। गायति। रेभति। स्तोभति। गूर्धयति। गृणाति। जरते। ह्वयते। नदति। पृच्छति। रिहति। धमति। कृणयति। कृपण्यति। पनस्यति। पनायते। वल्गूयति। मन्दते। भन्दते। छन्दति। छदयते। शश्मानः। रंजयति। रजयति। शंसति। स्तौति। यौति। रौति। भनति। पणयति। पणते। सपति। पपृक्षाः। महयति। वाजयति। मन्यते। मदति। रसति। वेनति। मन्द्रयते। जल्पति।

देखो निरुक्त अध्य० ३ खण्ड १९ में

ये शब्द पूजन (Worship Adoration Reverence Obeisance) के अर्थ में आते है। इन शब्दोंसे कितने अर्थ लिये जाते हैं सो सुनिये ! अर्थात् आदर करना। आज्ञामाननी। गाना। ऊंचे स्वर से हरि नाम पुकारना। स्तुति करनी। प्रार्थना करनी। पूछना। " रिहति वा लिहति " स्वाद लेना वा चाटना। पिघलजाना। छापना वा चित्र बनाना। इच्छा वा श्रद्धा करनी। ' पनायते ' प्रसन्न होजाना। सुन्दर होजाना वा आर्द्र हृदय होजाना। भाग्यवान होना। मंगलमय कार्य करना। कूदना। किसीके प्रेममें फसजाना। प्रशंसा करनी। रोना। वश में रहना। " वाजयति " भोगलगाना। आनन्द होना। तथा विशुद्ध होजाना वा मग्न होजाना। प्यार करना। विचार करना। ध्यान करना। नगाड़ा बजाना। जपना इत्यादि २। ऐसे २ अनेक अर्थ पूजाके अन्तर्गत आते हैं, सो हमलोग अपने मन्दिरोंमें अपनी प्रतिमाके समीप इन सब अर्थोंको व्यवहारमें लाते हैं। देखिये ! हमलोग मूर्तिका आदर करते हैं, मूर्तिवाले अवतार लेकर जो कुछ आज्ञा देगये उनको मानते हैं,

गाते है, ऊंचे स्वरमे हरिनाम पुकारते हैं, स्तुति प्रार्थना करते हैं, भगवत् से अपना भविष्य पूछते है, उनके जूठन प्रसादका स्वाद लेते हैं, कणिका मात्रभी मिलजाता है तो उसे बड़े आनन्दसे चाटलेते है, फिर भगवत्के प्रेममे मोमके सदृश पिघलजाते है, उनके स्वरूपको अपने हृदयमें छापले· ते हैं वा चित्र बनालेते है, तथा उनके चरणोमें लिपटनकी इच्छा करते है, उनका स्वरूप देखकर प्रसन्न होते हैं, उनका ध्यान करते है उनहीके समान सुन्दर आचरण वाले होजाते है, हृदय प्रेमसे आर्द्र होजाता है, फिर उनके दर्शनसे वड़े भाग्यवान होजाते है, नाना प्रकारके दानपुण्य मं-गलके कार्य करने लगजाते है, मारे आनन्दके उछलने कूदनेलगेत है, तथा श्यामसुन्दरके प्रेममें फंसजाते है, उनकी कृपालुताकी प्रशंसा करने लग-जाते हैं, उनके प्रेममें अश्रुपात करने लगजाते है. उनके वशीभूत होजातेहै, उनको मधुर मिष्टान्न भोग लगाते है, आनन्द होते हैं, फिर उनके प्रेममें शरीरकी सुधि भूलजाते है, उनको प्यार करते है, फिर धर्म अधर्म तथा अपनी गति मुक्तिका विचार करते है, उनको ध्यान करते है, नगाड़ा वजा-ते है, फिर उनकी प्रतिमाके समीप वैठकर जप करते है ।

मुख्य अभिप्राय यह है कि, निरुक्तने अर्थात् वेदने पूजनके अन्त-र्गत जितने अर्थ रखे हैं, हमलोग सव करते है, इन सव आचरणोंको वेदने पूजनके नामसे पुकारा है इसलिये हमलोग पूरे प्रतिमापूजक है, इसमे कोई सन्देह नहीं है । इसलिये नवीन प्रकाशवाले यदि हमको वुतपरस्त (بت پرست) कहें तो हम वड़े आनन्द होते है । वुत कहते हैं प्रीतमको जैसा कि मै पहले वर्णन करचुका हूं (देखो पृष्ठ १४२) इसलिये हम (بت پرست) अर्थात् (معشوق پرست) अवश्य हैं । जगत्के प्राणप्रतिम (معشوق دوجہاں) के पूजन करनवाल है ।

अब यह पूजा उपचारोंके भेदसे कई प्रकारकी हैं सो सुनिये !

१. चतुःषष्टिरुपचाराः *........ ६४ उपचार वाली पूजा

---

* इन सर्व प्रकारके उपचारोंका वर्णन् भक्तिके व्याख्यानमें कियाजावेगा।

२. षटत्रिंशदुपचाराः............... ३६ उपचारवाली पूजा
३. अष्टादशोपचाराः. . ...१८ , ,,
४. षोडशोपचाराः ....१६ ,, ,,
५. दशोपचाराः ... ...१० ,, ,,

अब मैं आपको यह बताता हू कि, प्रतिमा कितने प्रकारकी है सो सुनिये।

१. पाषाणमयी—(पत्थरकी) जैसी श्रीद्वारकानाथ, बदरीनाथ, केदारनाथ, और रामेश्वर इत्यादिमें है।

२. दारुमयी—(काष्ठकी) जैसी ओड़ियादेशमें श्रीजगन्नाथदेवकी प्रतिमा।

३. मृण्मयी—(मिट्टीकी) जैसी अश्वत्थके वृक्षोंके नीचे ग्रामदेवता अथवा महामाया इत्यादिकी प्रतिमा।

४. धातुमयी—(सोना, चांदी, पीतल, तांबा, कांसा इत्यादिकी) जैसी सर्वसाधारण मंदिरोंमे देखते है।

५. मणिमयी—पारसमणि अथवा पद्मराग, शोणरत्न. इत्यादिकी) जैसी नैपालदेशमें श्रीपशुपतिनाथजीकी मूर्ति जो पारसमणिकी है, जिसको एक पाषाणकी मूर्ति बनाकर ढकदेते है। केवल एकही दिन खोलते हैं जब नैपालनरेश दर्शनको जाता है। इसी प्रकार काशीजीमे श्रीविश्वनाथजीकी मूर्ति जो पद्मराग (लाल) की बनीहुई है, जो पण्डाके घरमें रखी रहती है। दशमी फाल्गुनके दिन निकालकर मन्दिरमें लेजा उत्सव करते है। केवल एकही दिन लोगोंको दर्शन होता है।

६. मनोमयी—(मानसिकमूर्ति) जो जिसप्रकारकी चाहे अपने मनमें बनालेवे। इसकी पूजाभी मानसिक होती है, जैसा मैं पहले कहआया हू। यह सबोंमे उत्तम औ श्रेष्ठ है।

७. लेख्या—(लिखकर बनाईहुई अर्थात् चित्रित कीहुई) जैसी कागद पर वा दीवालोपर बनाते हैं।

८. लेप्या— (लीपी हुई) प्रायः स्त्रिया घरकी दीवालोंपर वा वृक्षों पर सिन्दूर, चन्दन, अगेजा इत्यादि से बनालेती है ।
येही आठ प्रकारकी प्रतिमा बनाईजाती है ।

इतना कहने पर औ समझाने पर भी बहुतेरे जो हठी हैं वे हठवश यों कहपड़ेंगे कि, तुमलोग पत्थर, मिट्टी, लकड़ी इत्यादिकी पूजा और स्तुति करनेवाले हौ । विचारनेकी बात है कि, यदि हमलोग पत्थर वा काष्ठ इत्यादि समझकर इन प्रतिमाओंकी स्तुति वा पूजन करते होते, तो हम प्रतिमाके सामने खड़े होकर यों स्तुति करते कि, हे पत्थर ! वा काष्ठ! तुम तौलमें २० मन भारी हौ! बहुत ही कठोर हौ ! हिमाचल अथवा विन्ध्याचल पर्वतसे ढुलककर आये हौ ! गाड़ियों पर लादकर लायेगये हौ! शिल्पकारों (संगतराशो) ने वा खातियोंने तुमको गढ़कर तयार किया है! पर आपलोग भली भाति जानते हैं कि, हमलोग ऐसी स्तुति न करके प्रतिमाके सामने खड़े होकर वेदके मंत्रोंसे स्तुति करते हैं, और भक्तिपूर्वक उसमें प्रेम करते हुए परमात्मदेवकी प्राप्ति करते हैं ।

प्यारेश्रोताओ! जब मै यह पूर्णप्रकार देखलाचुका कि प्रतिमापूजन वेदोंमें है तब इसका सनातन होनाभी आपसेआप सिद्ध होगया। देखिये! त्रेतामें श्री रामचन्द्रजीने जीवोंके कल्याणनिमित्त रामेश्वरको स्थापनाकीथी, जिसे २० लाखवर्षके लगभग होगये, फिर जो बात २०लाख वर्षसे देखनेमें आती है उसे नवीन कोई नहीं कहसकता, इसलिये स्वामी दयानन्दका यह कहना कि, प्रतिमापुजन नवीन है, जैनियोंने चलाया है, एकदम निर्मूल है ।

अब मै आपको यहदेखलाता हूं कि, सब देशदेशान्तरोंमे प्रतिमापूजन था और है । ऐसा कोई देश पृथिवीमंडल पर नहीं है जहां ब्रह्मविद्याके साधनकेलिये प्रतिमा न बनाते हों। देखिये जिससमय मुसलमानोंके आचार्य (حضرت محمد صاحب) हजरत मुहम्मदसाहवने मक्का अपनेअधिकारमें किया था, उससमय ३६० प्रतिमाओंको तोड़डाला था। केवल एक शिवलिङ्ग मक्केश्वरनाथ नामका रहगया जिसको आजतक मुसलमानलोग संगेअसवद

(سنگ اسود) कहकर चूमते हैं। इसीसे सिद्ध होता है कि, अरबदेशमें भी प्रतिमा पूजन था और अवभी मुसलमान लोग प्रतिमा से काम लेते है। देखिये मुहर्रममें अपने परमप्रिय इमामहस्सन (إمام حسن) और हुसैन (حسين) की समाधि अर्थात् कब्र (قبر) की प्रतिमा बनाकर बाजारोंमे फिराते हैं जिसको ताजिया (تعزيہ) कहते है । उसके आगे नानाप्रकारके मिष्टान्न इत्यादि चढ़ाते है और उससे अपनी मनोकामनाओं को मागते है। यह क्या प्रतिमापूजन नहीं हैं ?

ईसाई (Christians) भी अपने मन्दिरों (Church) में त्रिशूल (Cross) की मूर्ति बनाकर कहीं २ उसमें प्रभु ईशू (Christ) की मूर्ति बनाते है, वहा जाकर अपनी टोपिया उतारते हैं, और उसके आगे धूप जलाते है। यह क्या प्रतिमापूजन नहीं है ?

आफ्रिका (Africa] देशमें एम्फसिस (Emphsis) और आइसिस (Isis) की मूर्तिया बनाकर बिल्वपत्र इत्यादि चढ़ाते है, अर्थात् शिव पार्वतीकी मूर्ति बनाकर प्रेमपूर्वक पुजते है । यह क्या प्रतिमा पूजन नहीं है ? इसी प्रकार बौद्ध, जैनी, सब अपने २ मन्दिरोंमें मूर्ति बनाकर पूजते है। जैनियोंके मन्दिरोंमे २४ तीर्थकरोंकी मूर्तिया बनीरहती है, उनकी पूजा करते है । दयानन्दी अपने उत्सवोंमे वेदकी सवारी निकालते हैं, उसके आगे भजन गाते चलते है, उस वेदको विद्याभ्यास करने की प्रतिमा मानते हैं । यह क्या प्रतिमापूजन नहीं है ? फिर अग्नि जो परमात्मदेवके मुखकी प्रतिमा है उसमें वेदमंत्रोंसे हवन करते हैं। यह क्या प्रतिमापूजन नहीं है? अब हमारे नवीन बुद्धिवाले ज्वान यह शंका कर बैठेंगे कि, तुमने जिस प्रकार प्रतिमामे धारणा, ध्यान, समाधि प्राप्त करने की रीति सीखनेका व्यवहार देखलाया, आजकलके प्रतिमापूजन करनेवाले तो ऐसा नहीं करते हैं, वे तो केवल मन्दिरोंमें मूर्तिके सामने धूप जलाते हैं, गाते बजाते है । प्रतिमाको स्नान इत्यादि कराकर मनो मिष्टान्न भोग लगायाकरते है। न तो किसीको त्राटक करते देखा है न कोई धा-

रणा करता है, न ध्यान करता है, न समाधि, न प्रेम, न शृंगार, न माधुर्य, इत्यादि कुछभी किसीको प्राप्त करते नहीं देखते। उत्तर इसका यह है कि जहां हज़ारों मनुष्योंको आप एकत्र होते देखते हैं वहां सर्व प्रकार के मस्तिष्कके लोग हैं, जिससे जौन अंगका साधन होसका अथवा जो जिस तात्पर्यसे वहां पहुंचा उसका उतनाही तात्पर्य सिद्ध होता है मन्द, तीव्र, तीव्रतर औ तीव्रतम अनेक प्रकारके अधिकारी हैं, वहां देवस्थान पर पहुंचकर अपनी २ शक्ति औ रुचि अनुसार सबही कुछ न कुछ करते ही हैं, चाहे वे करें कुछ, पर सबोंकी बुद्धि उस पवित्र स्थानमें ईश्वरहीकी ओर है। कोई तो मन्दिरोंमें झाड़ू ही लगारहा है, कोई देवालयको जलसे लीप कर स्वच्छ कररहा है, कोई फूलकी माला गूंथरहा है, कोई आरतीके निमित्त वत्तिया वनारहा है, कोई शृङ्गार के आभूषण औ वस्त्रोको सजरहा है, कोई पक्वान्न औ मिष्टान्न इत्यादि तयार कररहे है, कोई दर्शनोंकी आशामें खड़ा हैं, किसीने प्रतिमा के सामने एक टक लगा त्राटक बांधरखा है, कोई आंखे वन्द कियेहुए ध्यानावस्थित होरहा है, कोई आंखोसे प्रेमपूर्वक अश्रुपात कररहा है, कोई भजन औ गान इत्यादिमे मग्न है। तात्पर्य यह है कि, सबोंको कुछ न कुछ फल मिलही रहा है क्योंकि सबोका लक्ष्य ईश्वरही है।

इनमें वहुतेरे अपनी धारणा ध्यानकाभी साधन गुप्त रीतिसे कररहेहैं, किसीके मनका कौन जाने ? यदि तुम यह कहो कि, वहुतेरे तो केवलपेट भरनेकेलिये वहां इकट्ठेरहते हैं, तो यहऔरभी उत्तम हुआकि प्रतिमापूजनके जिससे गरीवोंको अन्न मिला। यहभी तो धर्म्महीका अंगहै, अर्थात् दया है। सनातनधर्मावलम्बी प्रतिदिन इस प्रतिमापूजनके द्वारा हज़ारोंमन अन्न नित्य दान करते हैं। भूखोंको खिलाते हैं। देखो श्री जगन्नाथजीमें नित्य हज़ारोंमनका अटके चढ़ते हैं, और भात दाल वनकर ग़रीवोको वाटेजाते-हैं। इसी प्रकार श्रीनाथजीमें, श्री वदरीनारायणजीमें, श्रीडाकोरजीमें, मथुरा जगदीशमें, वृन्दावन रंगनाथजीमें, काशी गोपालमन्दिरमें, कहांतक

कहूं इसी प्रतिमापूजनके बहाने लाखों ग़रीबोंको अन्न मिलता है ।

प्यारे नवीनप्रकाशवालो ! इस प्रतिमापूजन से लौकिक अथवा पारलौकिक उपकार छोड़ किसी प्रकारका दुष्कर्म कदापि नहीं होसकता । ऐसे जो दुष्कर्मी हैं वे ठाकुरजीके मन्दिरसे सोने चादीके पात्रही चुरालेते हैं तो उनकी क्या गिनती है ? किसी न किसी प्रकार यह प्रतिमासाधकों के हितहीके लिये बनीहुई है । बहुतेरे स्वल्पबुद्धि यह कह बैठते है कि, जब किसी समय तुम्हारी प्रतिमा टूटजाती है वा प्रतिमाका कोई अंग भंग होजाता है तो मानों तुम्हारे इष्टदेव टूटगये, अथवा इष्टदेवका हाथ टूटगया, टाग टूटगई, तो ऐसे लंगरे वा लूले इष्टदेवकी पूजा क्यों करते हो ?

प्यारे स्वल्पबुद्धियो ! आपकी भी अद्भुत लीला है, आपने तो सारे संसारको ऐसी २ बातें कह नास्तिक बनाही दिया है । भला मैं आपसे यह पूछता हू कि, यदि किसी समय आपके परम प्रिय सुन्दर पुत्र की मृत्यु होजावे और वह जलादिया जावे तो क्या उसके जड़ शरीरके जलादेने से उसका आत्मा जलगया ? क्या उसका नाम जलगया ? क्या उस का आकार जलगया ? क्या उसके रूपकी बनावट जलगई ? क्या उसकी छवि जलगई ? क्या उसके गुण जलगये ? क्या उसका प्रेम जलगया ? मेरे प्यारे ज़रा सोचो तो सही ! मेरे जानते कुछ भी नहीं जला, उसके सम्बन्धकी सब बातें ज्योंकी त्यों बनी रहीं । आप उसके नाम, रूप, गुण और प्रेमको तो मनमे स्मरण रखते ही हैं, और उसको स्मरण कर कभी२ उसके लिये शोक करते ही हैं । इसी प्रकार हमारी प्रतिमाके टूटजाने से वा अंग भग होजानेसे हमारे इष्टदेवकी शोभा, शृंगार, माधुर्य, नाम, रूप और गुणोंमें कुछभी हानि नहीं हुई । जो २ बातें उस प्रतिमासे प्राप्त होने वाली थी वे तो हममे प्राप्त होही गई । इसलिये प्रतिमाके टूटनेसे प्रतिमा द्वारा जो ब्रह्मविद्या वा जो सिद्धियां हमको प्राप्त होगई है वे ज्योंकी त्यो रहजाती हैं । हां ! इतना तो अवश्य होता है कि हमारे पीछे जो नवीन साधक होंगे उनकी धारणा इत्यादिमें अन्तःकरण पर कदाचित् कुछ वि-

कार न होजावे इसलिये हमलोग टूटीहुई प्रतिमाको मन्दिरोमे नहीं रखते उसी क्षण बदल देते है। हमारे धर्ममे अंग भंग मूर्तियोंका दर्शनही निषेध है।

हमारे देशके एक विद्वान स्वामी दयानन्दजी अपने सत्यार्थप्रकाश में कईबातें प्रतिमाके विरोधमें लिखगये है, इसलिये मै व्याख्यानके समाप्त होते २ उनकी शकाओंका उत्तर देदेना उचित समझता हूं।

सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ ३०६ पं ४ में वे लिखते हैं कि—

जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है तो उसकी मूर्ती ही नहीं बनसकती और जो परमेश्वर के दर्शन मात्र से परमेश्वरका स्मरण होवे तो परमेश्वर के वनाये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु वनस्पति आदि अनेक प्रकार जिनमें परमेश्वर ने अद्भुत रचना कीहै, क्या ऐसी रचना युक्त परमेश्वर रचित मूर्तियां जिनसे ये मनुष्य कृत मूर्तियां बनती हैं उनको देख कर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता ?

इसका उत्तर यह है कि, परमेश्वरके साकार औ निराकार, दो रूप है, यह मैं अभी इसीव्याख्यानमे सिद्ध करचुका हू। पर वे यह कहते है कि निराकारकी मूर्ति नहीं बनसकती। बड़े आश्चर्यकी बात है वे प्रत्यक्ष देखरहे है कि चारों वेद जो वे पढ़गये हैं उनमें अक्षरोकी मूर्तियां भरी पड़ी हैं, अक्षर निराकारहैं, पर उनकी मूर्तियां अर्थात् कल्पितप्रतिमा बन सकती है, मै इसी व्याख्यानमें थोड़ी देर पहले सिद्ध करचुका हूं। दूसरी बात यह है कि, जबतक निराकारके लिये प्रतिमा वा मूर्ति किसी प्रकारकी नहीं बनेगी तब तक लौकिक कोई कार्य सिद्ध नहीं होसकता, साधकको कोई दूसरा यत्न नहीं है जिससे निराकारतत्त्वको सिद्धकरसके। देखिये राग रागनियां निराकार है तथा शब्द, स्वर, तान, मूर्छना सब निराकार हैं, जबतक इनके लिये नाना प्रकारके चिन्ह टेढ़ी सीधी लकीरों में न बनाये जावें, तथा तबले, तानपूरे, पखावज, सरोद, वंसी, वीणा, सा-

रंगी, हारमोनियम इत्यादि साकार मूर्तियां न बनाईजावे तबतक कोई साधक गानविद्या सीखही नहीं सकता ।

इसी प्रकार आकर्षण (खींचनेवाली सत्ता) निराकार है पर जब उसकी साकार मूर्ति चुम्बक (मैगनेट Magnet) किसी लोहके समीप लाईजाती है तब उस निराकार आकर्षण सत्ता का अनुभव होने लगता है । फिर देखिये यह विद्युत निराकार सर्व व्यापक है, आखोंसे नहीं देखीजाती पर जब इसके लिये साकार तार, औ खम्भ इत्यादि लगाये जाते हैं तब गुप्त रीतिसे वही विजली एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुंचजाती है । मैं कहातक कहूं ऐसे अनेक प्रमाण इस विषयके सिद्ध करनेके लिये हमलोगोंके नेत्रोंके सामने उपस्थित है, फिर दयानन्दजी का यह कहना कि, निराकार सर्वव्यापककी प्राप्तिके लिये मूर्ति बनानेकी आवश्यकता नहीं है सर्वथा निरर्थक है । हां ! इतना तो मैं भी कहता हूं और पहले भी इस व्याख्यानमें कहआया हूं कि, निराकार सर्व व्यापककी यथातथ्य मूर्ति नहीं बनसकती, पर उसके निमित्त नानाप्रकार की कल्पितप्रतिमा बन सकती है । इसीप्रकार अग्नि निराकार औ सर्वव्यापक है उसके लिये भी मूर्ति बन सकती है । देखो इसी अग्निको निराकाररूपमें उष्णता, गरमी “ Heat ” कहते है । लोग गरमीके दिन में कहपड़ते है कि, आज अत्यन्त गरमी पड़रही है मानों आग बरसरही है, पर गरमी कहीं देखी नहीं जाती । अब थोड़ी देरके लिये ऐसा मानलीजिये कि संपूर्ण पृथिवीमण्डलसे, जो यह दृश्य आग है, एकदम बुझगई है, कहीं नहीं है, अब प्रातःकाल ही रोटी बनाने अथवा हवन करने की आवश्यकता है तो आप क्या करेंगे ? आग कहासे लावेंगे ? इसमेंतो सन्देह ही नहीं है कि आग सर्वत्र व्यापक है, पर उस व्यापक निराकार आगसे कुछ व्यवहार नहीं चलता, इसलिये उसके साकार करनेके लिये किसी विशेष मूर्तिकी आवश्यकता है, अतएव बुद्धिमानोंने सलाइयां सा-

कार मूर्ति बनारखी हैं, अथवा अरणी * बनारखी हैं जिसको एक दूसरेके साथ घिसकर आग निकाललेते हैं । (इस विषयमे देखो व्याख्यान नं० ८ जहां साकार निराकारके भेद वर्णन किये गये हैं) ।

अब रहा यह कि स्वामीजी कहते है कि, **परमेश्वर के बनाये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि को देखकर परमेश्वर का स्मरण हो सकता है, फिर प्रतिमा की क्या आवश्यकता है !** उत्तर यह है कि, मैंने यह कब कहा अथवा सनातनधर्मावलम्बियों ने यह कब कहा कि, परमेश्वर रचित पृथिवी, जल, पर्वत, इत्यादि को देख ईश्वरको स्मरण नहीं करसकते ! दयानन्दजीतो केवल कहतेही हैं करते नहीं । हमलोग तो करकेदिखलाते है, अर्थात् परमेश्वर रचित अकृत्रिम प्रतिमासे हम उसका स्मरण करते है, इसी व्याख्यानमें मै पहले ही कहचुका हूं । फिर हमही सनातन धर्मी हैं कि पृथिवी, जल, पर्वत इत्यादि को देख परमेश्वरका स्मरण करते हैं । देखिये मथुरा, वृन्दावन, काशी, वैद्यनाथ, गया, हरिद्वार, बदरीवन, केदारवन, इत्यादि स्थानोंको देख हम उस परब्रह्म जगदीश्वरको स्मरण करनेके लिये लाखों एकट्ठे होजाते हैं, यह क्या पृथिवीको देख ईश्वरको स्मरण करना नहीं है ? तो क्या है ? फिर गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा इत्यादिको देख हम उस ईश्वरको स्मरण करते हैं, इन नदियोंके तटपर हम लाखों सनातनधर्मावलम्बी एकत्र हो स्नान, पूजन, भजन करते हैं, अर्थात् ईश्वरका स्मरण करते हैं, यह क्या है ! जलको देख ईश्वरका स्मरण करना नहीं है तो क्या है ! ।

फिर हम लाखों सनातन धर्मावलम्बी अपनी गांठसे लाखों रुपये व्यय कर नीलगिरि ओंकारनाथ अमरनाथ, ज्वालामुखी, हिंगुलाद्रि, चित्रकूट इत्यादि पर्वतोंके समीप पहुंच इनको देख ईश्वरका स्मरण करते हैं । यह पर्वतोंको देख ईश्वरका स्मरण करना नहीं है तो क्या है !

---

* ये दो लकड़ियां होती हैं जिनको परस्पर घिसकर यज्ञ सम्पादन करनेके लिये आग निकालते हैं । शमीवृक्षसे लाईजाती हैं

स्वामी दयानन्दजी और उनसे सुने सुनाये सीखे सिखाये उनके चेले चाटी केवल मुहसे थोडी देरकेलिये कहते ही हैं, पर एक कौड़ी भी कभी गांठसे व्यय करके किसी विशेष पृथिवी पर अथवा जलके किनारे अथवा पर्वतके समीप जा कभी ईश्वरका स्मरण नहीं करते हैं।

विराड्को देख ईश्वरका स्मरण करना मैं पूर्णप्रकार उपासनाके व्याख्यानमें जहा साकार निराकारका भेद वर्णन है, कर आया हूं देखलेना। यहा कोई नवीन प्रकाशवाला ऐसी शंका न करबैठे कि, ईश्वरको स्मरण करनेके लिये किसी विशेष पृथिवी, जल, वा पर्वतकी क्या आवश्यकता है? जहा चाहें वहा ही करसकते है, अर्थात् जहा सारे शहरके मैले फैंके जाते हैं, जहा सब लोग मल मूत्र करते हैं, जहा शहरमें सड़ी गन्दी नालिया बहरही हैं, जहा बूचडखानेमें जीव मारेजाते हैं जहा कसाईकी दूकानों पर मास बिकता है, जहा कलालकी दूकान पर शराबके गैलन रखे रहते हैं, शहरके दोमंजले कोठोंके छत पर जहा वेश्यासाहिवा शृङ्गार किये बैठी रहती हैं, देखकर ईश्वरको स्मरण क्यों नहीं करते? तो प्यारे नवीन प्रकाशवालो मैं तो ऐसा नहीं करता पर कृपाकर आपलोग ऐसा अवश्य क्रिया करें, क्योंकि इन जगहोंको देखकर भी तो किसी ज्ञानी समदर्शी महात्माको अवश्य नमस्कार करना चाहिये, तिसके लिये आप लोगोंको छोड़देता हूं।

अब रहा वह कि जब पृथिवी पर्वत, जल इत्यादिको देखकर ईश्वरका स्मरण होताही है, तो घरोंमें विशेष प्रतिमा बनानेकी क्या आवश्यकता है? तो उत्तर यह है कि, इनसे ईश्वरका केवल स्मरणमात्र हो सकता है, पर यथार्थ योगक्रिया अर्थात् त्राटक, धारणा, ध्यान इत्यादि तो जबतक छोटी प्रतिमा घरोंमें बनाकर नहीं रखेंगे तब तक सिद्ध नहीं होसकते, क्योंकि सारे पर्वत पृथिवी, नदी इत्यादिको अपने छोटेसे घर में कोई घुसेड़ नहीं सकता, इसलिये एकान्तस्थानमें विशेष कर अपने घरोंमें आनन्दपूर्वक निर्विघ्न सब वस्तुओंसे चित्त हटाकर एक ठौरमें लगाने

केलिये विशेष प्रतिमा ही की आवश्यकता है ।

फिर हमारे दयानन्दजी यह कहते हैं कि, जब प्रतिमा सामने न होगी तो मनुष्य एकान्त जानकर चोरी जारी आदि कुकर्मोंको करेगा क्योंकि वह जानेगा कि यहां ईश्वर हमको नहीं देखता ।

उत्तरमें मै यह कहूंगा कि, जो प्रतिमा पूजनेवाले नहीं हैं वे क्या चोरी जारी नहीं करते ? क्या निराकार कथन करनेवालोंमे इन दुष्कर्मों के करनेवाले नहीं है ? बहुतेरे प्रतिमा नहीं पूजनेवालोंको मैंने देखा है कि वेश्याके घरोंमें पकड़ेगये हैं और दण्ड पायाँ है । दूसरी बात यह है कि स्वामीजीको यह किसने कहदिया कि प्रतिमापूजनेवाले निराकार सर्वव्यापक को नहीं मानते ? मैं अपने इसी व्याख्यानमे उस ब्रह्मके दोनों प्रकारके रूपका वर्णन कर आया हूं , इसलिये हमारे तो दोनों हाथ लड्डु है, जब हम घरमें हैं तो प्रतिमा के भय से पापसे बचते हैं और जब बाहर हैं तो सर्वत्र सब ठौर व्यापक प्रभुको जान पापोसे बचते हैं। हमतो कहीं बिना जगदीश्वरके नहीं है । इसलिये स्वामीजीकी यह शंका निरर्थक है।

स्वामीजी अपने सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ ३०७ मे लिखते है कि (परमेश्वर सर्वव्यापक है तो किसी एक वस्तुमे परमेश्वरकी भावना करनी ऐसीबात है जैसे चक्रवर्त्ती राजाको सब राज्यकी सत्ता से छुड़ाकर एक छोटीसी झोंपड़ीका स्वामी बनाना और जब व्यापक है तो वाटिकासे पुष्प पत्र तोड़कर क्यों चढ़ाते ? चन्दन पीसकर क्यों लगाते? क्योंकि उनमेंभी तो व्यापक है । अब कहिये भाव सच्चा है वा झूठा? जो कहो सच्चा है तो तुम्हारे भावकेअधीन होकर परमेश्वर बद्ध होजावेगा तो तुम मृत्तिकामें सुवर्ण रजतादि पाषाण में हीरा, पन्ना, आदि, समुद्रफेनमें मोती, जलमें घृत, दधि आदि और धूलमें मैदा शक्कर आदिकी भावना कर वैसा क्यों नहीं बनावे हो ? तुमलोग दुःखकी भावना कभी नहीं करते वह क्यो होता है? अंधा पुरुष नेत्रकी भावना करके क्यों नहीं देखता ? मरनेकी भा-

बना नहीं करते क्यों मरजाते हैं ? इसलिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं क्योंकि जैसेमें तैसे करनेकानाम भावना है, जैसे अग्निमें अग्नि जलमें जल जानना, और जलमें अग्नि, अग्निमें जल समझना अ-भावना है)।

प्यारे श्रोताओ! यहां तीन बातोंकी शंका स्वामी दयानन्दने अपने लेखमें की हैं १. सर्वव्यापकको एक देशमें क्यों मानते हो ?, २. फूल च-न्दन इत्यादिको तोड़ क्यों चढ़ाते हो ? क्योंकि उनमें भी तो परमेश्वर व्यापक है। ३. भाव तुम्हारा यदि सच्चा है वो मट्टीमे सोना चांदी, औ धूली में मैदा शक्करकी भावना क्यों नहीं करते ? इत्यादि २। अब मैं तीनों शंकाओंका अलग २ उत्तर देता हूं सुनिये।

आप फरमाते हैं कि, व्यापकको एक देशमें क्यों मानते हो ? पहले मैं उनसे यही पूछता हूं कि, आप कभी ईश्वरको मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं वा नहीं ? वे अवश्य कहेंगे कि करते है। तब उनसे यह पूछना चाहिये कि परमेश्वरतो पूर्व, पश्चिम, उत्तर, और दक्षिण चारों ओर नैर्ऋत्य वायव्यइत्यादि चारोंकोण तथा ऊपर औ नीचे अर्थात् दशोंदिशाओंमेंव्यापक है, फिर आप एकही दिशामें एकबार क्यों नमस्कार करते हैं ? जब आप पूरवकी ओर मस्तक झुकाते होंगे तो पश्चिमकी ओर पीछा पड़जाने से शरीरका पिछला अंग औ दोनों पैरोंके तलवे होजाते है, तो यह कैसा अनर्थ है कि दशोंदिशाओंमे जो व्यापक है। उसे एक दिशामें मानकर तो मस्तक झुकाना, और दूसरी दिशामें पांवके तलवे और शरीरका पिछला अंग देखाना। यह तो मानों एकही समय परमेश्वरका मान अपमान दोनों करना है। स्वामीजी अपने चेले चाटीको ऐसा क्यों नहीं कहगये कि प-रमेश्वरसे प्रार्थनाकर चक्करदार सिर अथवा दशसिर मांगलेना और जब झुकाना हो तो व्यापकको दशो दिशामें एकहीबार झुकादेना। फिर चारों वेदोंमें परमेश्वर की स्तुति औ प्रार्थना है, आप एक ही बार चारों को क्यों नहीं पढ़ते ? चार जिह्वा क्यों नहीं बना लेते ? इस से सिद्ध होता है

कि, आप भी व्यापक को एक ही देशमें समझकर सिर झुकाते हैं और वन्दना करते हैं, फिर अपनी ओर न देखकर उसी दोष को पराये में क्यों निरूपण करते हो। कहावत है कि—"लखत फिरे परकी फुली नहीं देखै निज टेंट"। मुख्य अभिप्राय मेरे कहने का यह है कि, हमसब मनुष्योंकी आकृति अर्थात् हमारे हाथ, पांव, मस्तक, मन, चित्त इत्यादि ऐसे एकदेशी बने हैं कि, जब सर्वव्यापकको स्मरण करेगें तो किसी एक ही रूपमें और एक ही देशमें कर सकेंगे। यह तो सम्भव ही नही है कि एक समय सर्वत्र मस्तक झुकादें और चारोवेदों को एकही वार पढ़ने लगजावें।

फिर वह कहते हैंकि, पुष्प औ चन्दनको क्योचढ़ाते हो? क्योंकि इन में भी परमेश्वर व्यापक है। वाह जी शंका। विद्वानोंकी ऐसी पोच शंका। इसके उत्तर देनेमें मुझे लज्जा आती है, पर क्या करूं उत्तर देना चाहिये! यदि स्वामीजी वर्तमान होते तो मैं उनसे फिर दोवारा यह पूछता कि, आप ईश्वरको कभी नमस्कार करते है वा नहीं तो वह सत्य बोलने वाले महात्माथे अवश्य बोलते कि, हां हम औ हमारे सब चेलेचाटी परमात्मा को सिर झुका नमस्कार करते है। भला सोचिये तो सही कि, स्वामीजीमें और उनके चेले चाटियोंमें परमात्मा व्यापक है वा नहीं? यदि व्यापक है तो फिर ये लोग सिर क्यो झुकाते है? क्योंकि इनमें भी तो व्यापक है, फिर जो स्वयं ब्रह्म है वह दूसरे स्थानमे ब्रह्मको सिर क्यों झुकावे? यदि यह कहो कि, ब्रह्मने ब्रह्मको सिर झुकाया तो ऐसा हमारे देशका शिष्टाचार नहीं है क्योकि जब झुकानेवाला औ जिसको झुकायाजावे दोनों ब्रह्म ही हैं तो परस्पर मित्र होगये फिर तो शेकहैण्ड (Shake hand) करना चाहिये अथवा एकबार वह ब्रह्म उस दूसरेको नमस्कार करे तो दूसरीवार वह दूसरा भी पहलेको नमस्कार करे, अर्थात् दयानन्दजी अथवा दयानन्दी जो ब्रह्मको नमस्कार करे तो ब्रह्मको भी चाहिये कि दयानन्दको औ उनके चेले चाटीको नमस्कार करे, तो व्यापकता

भी सिद्ध रहेगी औ परस्पर मित्रभाव भी बनारहेगा।

प्यारे सभासदो! वंगभाषामें एक कहावत है " जेमन कुकुर तेमन मूगुर " अर्थात् जैसा कुत्ता वैसा ही दण्डा होना चाहिये। सो जैसे स्वामीजीके प्रश्न हैं, वैसे ही उत्तर देने पड़े। उनके प्रश्न वालको के ऐसे है, विद्वानोंके समान नहीं, इसलिये मुझको भी वालकोंके सदृश उत्तर देना पड़ा।

अब रही तीसरी शंका "भाव" की। इस शंकाको किंचित विद्या से सम्बन्ध है इसलिये पूर्ण प्रकार शास्त्रानुसार उत्तर दूंगा। स्वामीजीने यहां भाव शब्दका अर्थ नहीं समझा। प्रतिमामें जो भाव कियाजाता है उसका अर्थ यह नहीं है जैसा स्वामीजी समझरहे हैं। स्वामीजीने केवल भाव अथवा भावनाका एकही अर्थ समझा है। अर्थात् (भाव–भू+णिच) भू धातुमें णिच करनेसे जो भाव वा भावना शब्द बनता है जिसका अर्थ " मानसविकार " है जैसा श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि–
" नासतो विद्यतेभावो नाभावो विद्यते सतः " अर्थात् झूठमें सत्यकी भावना नहीं होसकती औ सचमें झूठकी भावना नहीं होसकती। जैसे स्वामीजीने स्वयं उदाहरण दिया है कि, आगमे जल औ जलमें आगकी भावना नहीं होसकती। सच है मैं भी इसको मानता हू, पर यहां मूर्तिमे जो भाव करते हैं उसे इस भावनासे कोई सम्बन्ध नहीं है। देखिये मै आपको भाव शब्दके अनेक अर्थ बताता हू। सुनिये भाव वा भावनाके अर्थ ये हैं। १ मानसविकार। २. सत्ता। ३. स्वभाव। ४. अभिप्राय। ५. चेष्टा। ६ आत्मा। ७ जन्म। ८ चित्त। ९ किया। १० लीला ११ पदार्थ। १२. विभूति। १३. जन्तु। १४, भावी, प्रारब्ध। १५, पर्यालोचना। १६ प्रेम। १७, योनि। १८. उपदेश। १९, संसार। २० ग्रहोंके शयनादि द्वादशभाव " ज्योतिषशास्त्रमें " २१. रसादिके भाव जो प्रेमके साथ होते है। २२. अधिवासना भी अर्थ है, जो तीन प्रकार की होती है। प्रमाण विष्णुपुराण अंश ६ अध्याय ७।

त्रिविधा भावनाविप्र विश्वमेतन्निवोधमे ।
ब्रह्माख्याकर्मसंज्ञाचतथाचैवोभयात्मिका ।
ब्रह्मभावात्मिकाह्येका कर्मभावात्मिकापरा ।
उभयात्मिकातथैवाऽन्या त्रिविधाभावभावना ॥

देखिये यहां मैने भावके कमसेकम २२अर्थ देखलाये। अन्तवाले और आदिवाले अर्थके दो प्रमाण भी देचुका, मैं यहां सब अर्थोंमें एक २ प्रमाण देदेता, पर एकतो व्याखयान विस्तार होजावेगा दूसरे सब अर्थोंका यहां प्रसंग नहीं है । प्रतिमाके सम्बन्धमें जिन अर्थोंका समावेश है उनको पूर्ण प्रकार कहसुनाता हूं सुनिये ।

नं० १७ मे प्रेम औ २१ में रसादि अर्थ किये, वेही अर्थ इसस्थानमे अर्थात् प्रतिमावाले भावमें जानना चाहिये । देखिये श्रीमद्भगवद्गीताके अध्याय १० श्लोक ८ में कहा है " इतिमत्त्वाभजन्ते मां बुधाभावसमन्विताः " अर्थात् ज्ञानी लोग ऐसा जानकर मुझको (भावसमन्विताः) प्रेमसे युक्त होकर भजते हैं । यहां भावका अर्थ प्रेम है, फिर रसादिके अर्थमें कहाहै कि " भावाश्चत्रिविधास्थायिनोव्यभिचारिणःसात्विकाश्च " अर्थात् स्थायी, व्यभिचारी, औ सात्विक ये तीन भाव है । इनमें प्रत्येक भावके भिन्न २ लक्षण हैं (भक्तिके व्याख्यानमें देखो) इनमें से जो सात्विक के आठ भाव है उन्हें सुनाताहूं सुनिये ।

स्वेदः स्तम्भोऽथरोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथवेपथुः ।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकामताः ॥

प्रीतमकी चिन्ता में स्वेद (मुख पर पसीना निकलआना) । स्तम्भ (सकता लगजाना) । रोमाञ्च (रोंगटों का खड़ा हो जाना) । स्वरभंग (मुंह से शब्द पूरा न निकलना) वेपथुः (शरीर कांपने लगना) वैवर्ण्य (मुखका रंग उड़जाना) । अश्रु (आंसु बहनेलगना) । प्रलय (अचेत हो जाना जिसको ग़शआना वा मूर्छाहोना कहते है)* । इस-

* भक्तिके व्याख्यानमें इनका विस्तारपूर्वक वर्णन कियाजावेगा ।

लिये निश्चय है कि जहां भगवत्मूर्ती वा प्रतिमा के विषय भाव शब्द आवे तो इनही अर्थों को समझना चाहिये। तात्पर्य्य यह है कि, हमलोग प्रतिमा में परमेश्वरके साथ प्रेमकाभाव वा भावना करते है। मिट्टीको सोना चादी अथवा धुलीको मैदा शक्कर नही समझते है। यहा स्वामी जीकी शंका भाव के जिस अर्थमें हुई है उस अर्थका यहा प्रसंग ही नहीं है, इसलिये महात्मा दयानन्दजी की शका एकदम निर्मूल है। केवल हमारे भोले सनातधर्मीयोंको धोखेमें डालने के लिये है।

प्यारे सभासदो! मै प्रतिमापूजन और प्रतिमाके विषय बहुत कुछ कहचुका और सिद्ध करचुका कि, प्रतिमापूजन नवीन नहीं है, सनातन है, वेदोंमे प्रतिमा पूजन है, पृथ्वीमण्डल में जितने धर्मावलम्बी है सब किसी न किसीरीति से प्रतिमापूजन करतेही है। व्याख्यानके आदिमें मैंने इनही बातोंके सिद्ध करनेकी प्रतिज्ञा कीथी सो विलग २ पूर्ण प्रकार सिद्ध करचुका।

अब मैं एक भक्तकी कथा सुनाकर समाप्त करता हूं। इसकथा से यह ज्ञात होजावेगा कि, भगवत् मूर्ति (प्रतिमा) से कितना शीघ्र भगवत् की प्राप्ति होसकती है। इसलिये सबमिल एक बार प्रेमभरी अमृत ध्वनि से बोलिये—

हरेराम! हरेराम! राम! राम! हरे! हरे!
हरेकृष्ण! हरे कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हरे! हरे!

कथापृथ्वीराज की

मारवाड़ देश में विकानेर एक प्रसिद्ध राजधानी है, यहां महाराज कल्याणसिंह के पुत्र महाराज पृथ्वीराज परम भगवद्भक्त हुए, बड़े विद्वान भी थे, काव्यशास्त्र पिंगल इत्यादि के बड़े ज्ञाता थे, काव्य रचना में इनकी बुद्धि विचित्र थी, भाषामे कवित्त, दोहा, छन्द इत्यादि औ संस्कृत में श्लोकोकी रचनाकर हरि गुण गान किया करते थे। राजाका जो धर्म

होना चाहिये इनमें पूर्ण था । मनुमें लिखा है कि, (विषयेष्वप्रसक्तिश्च) अर्थात् राजाको विषयों से अलग रहना चाहिये। आज कल के राजा जो दिन रात विषयमें मग्न रहते है, जिनकी तीन पैसे की भी आमदनी है वह भी अपनेको चक्रवर्ती समझकर हिंसा औ व्यभिचारमें मग्न रहते हैं और इसी हिंसा औ व्यभिचार को अपना धर्म समझते हैं, न कभी ईश्वरको स्मरण करते हैं, न अपने गुरुको मस्तक नवाते है। यहांतक नास्तिक हो गये है कि; कभी सन्ध्या हवन भी नहीं करते । ऐसे राजा हमारे पृथ्वीराज नही थे । यहां तक वैराग्य था कि निज धर्मपत्नी के समीप जाना भी आपको दुस्सह ज्ञात होता था । एक बार आपके चित्तमें यह चिन्ता हुई कि, अपनी आयु का अधिक अंश राज करते बीत गया, अबतक जगदीश्वरकी प्राप्तिके निमित्त कोई यत्न हाथ नहीं आया । ऐसा विचारते ही आप को कठोपनिषद् की श्रुति स्मरण हो आई कि " उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत ! "

अर्थात् उठो ! जागो ! औ जिन लोगों ने ईश्वर को प्राप्त किया है उनको ढूंडो ! फिर तो आप बिकानेर से चलकर काशी आये और महात्माओंका सत्संग करते अपने गुरुदेवके शरण हुए । श्रीगुरुमहाराज ने पूछा कि, तुम्हारा क्या अभिष्ट है ? यदि आजकल के विषयी साधारण राजाओं में होते तो बेटा चाहिये, बेटी चाहिये, राज की वृद्धि चाहिये, धन चाहिये, घोड़े, हाथी चाहिये इत्यादि । ये तो परम भक्त थे, राज्य को तुच्छ समझतेथे, और अपने को धूल के समान जानतेथे । श्रीगुरु महाराज के प्रश्न करते ही आपने प्रार्थना की कि, स्वामिन् ! मुझे इस असार संसार की कुछ भी कामना नहीं है, मुझे तो भगवत्की मनोहर मूर्त्ति का दर्शन हो, यही अभिलाषा है । श्रीगुरु महाराजने उपदेश किया कि, तुम श्यामसुन्दर की एक मनोहर शोभा शृंगार युक्त मूर्त्ति बनाकर एक मन्दिरमें स्थापित करो ! उस मूर्त्तिपर त्राटक, धारणा, औ ध्यान इत्यादि का अभ्यास करो ! महाराजने ऐसा ही किया ! कुछकाल बीतनेपर

जब महाराजकी धारणा सिद्ध होने लगी तो ऐसा होगया कि जहां आ-प नेत्र बन्दकर बैठजाते तहा श्यामसुन्दर की मनोहर छवि में मग्न हो जातेथे, उनकी वृत्ति उस प्रतिमा में ऐसी जमी थी कि, ठीक उस स्थानमें चलेजाते थे तो भगवत्मूर्त्तिकी मानसिक पूजा करलिया करतेथे। एक वार ऐसा संयोग हुआ कि, किसी देशकी यात्रामें थे तहा मानसिक पू-जन करते समय आपकी वृत्ति मन्दिरमें पहुंची तो भगवत्मूर्त्तिको नहीं देखा, दो दिन लगातार ऐसाही हुआ तो चित्तमें कुछ शंका हो आई। फिर साड़नी दौड़वाकर कारण पुछवाया तो ऐसा ज्ञात हुआ कि, मन्दिरके जीर्णोद्धार अर्थात् मरम्मत होनेके कारण श्रीनाथजी दो दिन दूसरेस्थान में विराजमान किये गये थे।

एकवार ऐसा संयोग हुआ कि, विदेशमें अपनी सेनाके साथ जा रहे थे सो किसी ऐसे वनमें पहुंच गये जहा खाने पीनेका कुछ भी सामान नहीं मिलसकता था। सब लोग भूख प्याससे घवड़ा गये। भगवत्ने भ-क्तवत्सलता करके थोडीही देरमें वहा एक ऐसा सुन्दर नगर वसादिया कि सारी सेनाके भोजन इत्यादि का सुन्दर प्रवन्ध होगया। सब लोग परम आनन्द हुए और महाराजकी भक्तिका प्रभाव समझा। महाराजने श्रीमथु-राजीमें शरीर त्यागनेका प्रण किया था, पर देहली के बादशाहने जब उ-नका यह प्रण सुना तो द्वेषके कारण काबुलकी लड़ाई पर भेजादिया। महाराज वृद्ध होगये थे अपनी आयुका भरोसा कम करते थे। ऐसे समय में लड़ाई में जानेके कारण आपका चित्त बहुतही उदास होगया। एक २ दिन एक २ कल्पके समान बीतने लगा। भगवतसे यही प्रार्थना की कि हे भक्तवत्सल! दीनबन्धो! करुणासागर! यह आपकादास सदा-से आपकी मनोहर मूर्ति की सेवामें दिन बिता चुका है अब यह समय मेरा युद्धमें रहनेका नहीं है, नाथ! जो आप मेरी लज्जा न रखोगे तो किसके शरण जाऊं? हे प्रभो! भला हूं वा बुराहूं आपके चरणोका किंकर हूं! हे कृपासागर! अपनायेकी लाज तो हम पामरजीवों

को होतीहै और आपतो विश्वम्भर हो, अपनी करुणाकटाक्षसे सम्पूर्ण विश्वका कल्याण करसकते हो ! फिर मुझ अपने दासपर ऐसे कठोर समय में ऐसी दृष्टि क्यो है ? प्रभो! यदि मेरे कर्मोंकी ओर देखोगेतो रसातलमे भी मेरी गति न होगी । प्रभो दयाकरो ! त्राहि ! त्राहि !! त्राहि !!!

प्यारे सज्जनो ! इतनी प्रार्थना करनेकेसाथ आंख लगगई तो स्वप्नमें श्रीनाथजीने दर्शन देकर यह आज्ञा दी, कि, हे पृथिवीराज ! तू व्याकुल न हो ! जब तेरी आयुके दो दिन रहजावेंगे तब मैं तुझको ज्ञात कर दूंगा । तू उसीक्षण मथुराजीमें जा शरीर त्यागकर मेरे शरण होजाना । ऐसाही हुआ । जब महाराजकी आयुके दो दिन शेष रहगये तब भगवत्ने स्वप्नमें कहदिया कि, अब तू मथुराजीको चलाजा ! महाराजने ऐसाही किया और मथुराजीमें पहुंच श्री श्यामसुन्दरकी मनोहर मूर्तिमें मग्न हो अपना शरीर छोड़ गोलोकको सिधारगये । जय २ की ध्वनि सारे संसार में फैलगई, और महाराजका यश सर्वत्र विख्यात होगया ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

{ वक्तृता १० वीं }
{ Lecture 10 th }
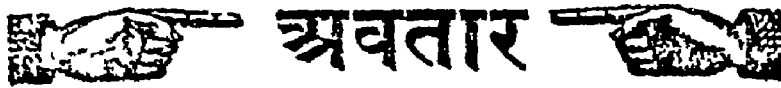
अवतार

INCARNATION
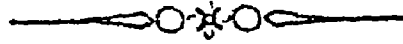
ॐ कृष्णं त एम रुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषा मिदेकम् । यदप्रवीता दधतेह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदुदूतः ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

वन्दे श्रीकृष्णदेवं मुरनरकभिदं वेदवेदान्तवेद्यं ।
लोके भक्तिप्रसिद्ध्यैयदुकुलजलधौप्रादुरासीदपारः ॥
यस्यासीद्रूपमेवत्रिभुवनतरणेभक्तिवच्चस्वतंत्रं ।
शास्त्रंरूपंचलोकेप्रकटयतिमुदायः सनोभूतिहेतुः ॥
कर्त्ताज्ञः सकलस्ययोनिगमभूः सर्वस्वरूपोहिसन् ।
सर्वस्यापिविधारणोविजयते निर्दोषसर्वेष्टदः ॥
योलीलाभिरनेकधावितनुते रूपंनिजंकेवलः ।
सोऽयंवाचिममास्तुपूर्णगुणभूः कृष्णावतार·पतिः ॥

आज मेरी इस छोटी तुच्छ जिव्हासे निकलीहुई टूटी फूटी वाणियो को श्रवण करनेके निमित्त जो यह सुजनसमाज इस सभा भूमिमें आ-जुरा है इसको मैं फाग खेलनेवाले समाजके नामसे पुकारता हूं, जहा सना· तनधर्मरूप फाग मचानेवाला सुघर सुजान ज्ञानके गुलालको नेहके नीरमें घोलकर प्रीतिकी पिचकारीमें भरेहुए ब्रह्मानंदके मदसे उन्मत्त सैकड़ों वल खाताहुआ चलाआरहा है, आशा है कि थोड़ी देरमें कर्मकाण्डके कुमकुमो को दशो दिशाओंमे फेकताहुआ सभासदोके अन्तःकरण रूप निर्मल वस्त्र को अनुरागके अरुण रंगसे लाल २ करदेवे और उपासनाकी डोलचियो की साटियोसे उनके शुद्ध औ स्वच्छ हृदयको।चिन्हित करलेवे। एवम् प्रकार हर्षपूर्वक रँगेजाकर ये सभ्यगण होली गानेवाले विवेकरूप तानपूरे और विरागरूप पखावजके सुर और तालो पर ध्यानके धमारको छेड़ते हुए किस प्रकार गान करें कि—

हरेराम ! हरेराम ! राम ! राम ! हरे ! हरे !
हरेकृष्ण ! हरे कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! हरे ! हरे !

अवतार।

अहा ! "अवतार" यह चार अक्षरका कैसा सुन्दर शब्द ? कैसा मनोहरशब्द ? कैसा चित्तको लोभालेनेवाला शब्द? कैसा अन्तःकरणका प्रसन्न करनेवाला शब्द ? त्रयतापोंका नशानेवाला शब्द ? कैसा प्रेमको ज-

गानेवाला शब्द ? कैसा चित्तको एकाग्र करनेवाला शब्द ? कैसा भक्तोंके हृदयको प्रफुल्लित करनेवाला शब्द ? कैसा भवबन्धनसे छुड़ानेवाला शब्द? जिसी समय कर्णकुहर होकर हृदय कमलमें पहुंचता है, हरिभक्तोंका चित्त किसप्रकार नृत्य करनेलगजाता है, जैसे श्रावणकी घटाका शब्द सुनकर मयूर।

प्रिय श्रोतृवृन्द! इस समय भारत देशमे अनेक मत मतान्तरोंके प्रवेश करजानेसे नानाप्रकारकी शंकायें इन अवतारों पर कीजाती हैं। कोई तो कहता है कि, जैसे हम मनुष्य हैं तैसे ये अवतार भी हैं। कोई कहता है कि, भारत निवासी अपनी मूर्खता औ अज्ञानताके कारण अपने देशके राजाओंको औ किसी २ विशेष विद्वानोंको अथवा तपस्वियों को, जिनमें कुछ चमत्कार देखा, अवतार कह ईश्वर मानने लगे।

हँसी आती है इनके इन वचनो पर औ शोक होता है इनकी ऐसी तुच्छ बुद्धि पर। इनको इस विषयमे कुछभी बोध नहीं है कि " अवतार " क्या है? क्यों होता है? कैसे होता है? कहा होता है? क्या करजाता है? यद्यपि भारत निवासी २४ अथवा दश मुख्य अवतार मानते हैं तथापि मैं यह कहसकता हूं कि अवतारोंकी गिनती नहीं है। रेतके कणोंकी गिनती होजावे तो हो, आकाशके तारागणकी गणना कोई करले तो करले, पर " अवतारों " की गिनती नहीं होसकती, क्योकि यह सृष्टि अनादि कालसे चलीआरही है, फिर इस सृष्टिमें जब २ जहा २ भक्तोंने उस परब्रह्म जगदीश्वरको जिस २ रूपमें पुकारा उस कृपासागर सर्वव्यापी दुःखभंजनने वहांही प्रकट हो उनके दुःखोंको निवारण किया इसलिये अवतारोंकी गिनती नहीं होसकती।

अवताराह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः* कुल्याः सरस स्युःसहस्रशः॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ अ० ३ श्लो० ५६

---

* अविदासिनः—उपक्षय शून्यात् (चाहे जितना निकालतेजाओ पर मूलमें कुछ घटे नहीं ज्योंका त्यों रहे)

अर्थात् शुकदेवजी कहते हैं कि, हे शौनकादि द्विजगण ! उस सत्त्वनिधि भगवानके असंख्य अवतार हैं सो उसी एक पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द घनसे प्रादुर्भूत होते हैं, जैसे नित्य पूर्ण अमृत सरोवरसे सहस्रो छोटी २ धाराये निकलकर फैलजाती हैं ।

अब पहले तो यह जानना चाहिये कि "अवतार शब्दका क्या अर्थ है" सुनिये मैं सुनाता हूं "अवतार" इस शब्दमें "अव" उपसर्ग है औ "तॄ" धातु है । (तॄ तरे अभिभावे प्लुत्याम्) इसी "तॄ" "अव" लगानेसे "अवतॄ" बनता है, जिसके अनेक अर्थ हैं । जैसे ऊपरसे नीचे उतरना, प्रगट होना, प्रादुर्भाव होना, कूदपडना बढ़जाना, एक स्थानसे दूसरे स्थानको चलाजाना, उठना, उपजना, किसी लक्ष्यकी इच्छा करनी, नदी पार उतरना, अपनी मनोकामनाकी प्राप्ति करनी, प्रवेश करना, आरम्भ करना, विजय करना, एकओर खींचना, इसी अवतॄ से (करणेघञ्) करके अवतार सिद्ध होता है । इसकारण समय २ पर ऊपर कथन किये हुए सब अर्थ सिद्ध होसकते हैं । मैं इन सब अर्थोंके देखानेके लिये भिन्न २ प्रमाण देसकता हूं , पर इस समय इनकी आवश्यकता नहीं है । अति उक्ति होजानेका भय है, इसकारण मुख्य तात्पर्य जिन अर्थोंसे है उनहीको यहां देखलाना उचित है । अब यहां मैं इन अर्थोंमेंसे केवल दोही अर्थ लेकर अपना तात्पर्य सिद्धकरूंगा, अर्थात् १. ऊपरसे नीचे उतरना २. आविर्भाव होना, अर्थात् प्रगट होजाना ।

प्रथम ऊपरसे नीचे उतरनेको अवतार कहते हैं । इस अर्थको भिन्न२ ग्रन्थोंसे दो एक सामान्य उदाहरण देकर देखलाता हूं । रघुवंश सर्ग १ श्लोक ५४ मे "रथादवततारच" । अर्थात् राजा दिलीप रानीको रथ से उतारकर आप भी उतरा । फिर सर्ग १३ श्लोक ६८ में "ज्योतिष्पथादवततार" श्री रामचन्द्रका विमान आकाशसे नीचे उतरा । शकुन्तला अंक ७ में "मेघपदवीमवतीर्णौस्वः" तथा पंचतंत्रमें "कदैतदव-

तरिष्यति चक्रं मस्तकात् " इन सब ग्रन्थोंमें "अवतार " का अर्थ ऊपरसे नीचे उतरना कियागया है, देखलेना।

अब सुनिये! सूर्यकान्त (सूर्यमुखी) एक पत्थर है, जिसको सूर्य के सम्मुख लगानेसे सूर्यसे आग उतरकर उसी सूर्यकान्त होकर उसके समीप एक काले वस्त्रमें प्रगट होजाती है। यहां अवश्य कहना होगा कि आगने अवतार लिया, अर्थात् ऊपरसे नीचे उतरी। इसी प्रकार ईश्वरके भक्तोंका हृदयरूप " सूर्यकान्त " जब उस परब्रह्मरूप सूर्यके सम्मुख होता है तो उसी क्षण वह देव झट उसके समीप जिस रूपसे उसने स्मरण किया, उतरआता है, पर इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि " सूर्यकान्त " पत्थर केवल सूर्यके सामने रखनेहीसे आग नहीं प्रकट करेगा जबतक पूर्ण प्रकार उस पत्थरके हृदयका केन्द्र दशों दिशाओंके अन्य विम्बोंसे अलग होकर एक सीधमें सूर्यकी किरणोंको अपनेमें न लेवे। इसी प्रकार जबतक भक्तोंका हृदय अन्य सब आशा, भरोसा और आश्रयोंको परित्याग कर शुद्ध औ निर्मल हो भगवत्के स्वरूपमें एकाग्रता प्राप्त न करे, तबतक अवतार नहीं होता, क्योंकि सूर्यकान्त पत्थरका हृदय अत्यन्त निर्मल और स्वच्छ होनेके कारण सूर्यसे अग्नि प्रगट करता है यदि उसपर किसी प्रकारका भी आवरण रहेगा अथवा सूर्यसे तनकभी तिर्यक् (टेढा) रहेगा तो अग्नि प्रगट होना असभव है। इसी प्रकार भक्तोंका हृदय जबतक संसृत मलोंमे मलीन है, और उसपर नाना प्रकार की वृत्तियोंका आवरण पड़ाहुआ है, और भगवत्से तिर्यक् है, अर्थात् भगवत्के सम्मुख नहीं हुआ है, तबतक उनके लिये भगवत्का अवतार किसी रूपमें भी नहीं होसकता।

अवतारका दूसरा अर्थ है आविर्भाव होना अर्थात् प्रगट होजाना (Manifestation) उदाहरण "प्रसभमवततारचित्तजन्मा" (किरातार्जुनी १०।१७) अब सुनिये! जैसे आपके वस्त्रकोप (पौकेट) में जो सलाई है, उसमें आग है, पर वह गुप्त रूपसे निराकार तत्त्वमे है, इसीकारण

उसमें आग रहते भी आपका पौकेट नहीं जलता, जब आगकी आवश्यकता हुई तो आपने उसे किसी दूसरी वस्तुसे घिसदिया झट आग निकल पड़ी । यह भी आगका अवतार लेनाही कहा जावेगा ।

इसी प्रकार जितने शरीरधारी हैं सबके भीतर वह निराकार ब्रह्म गुप्त रूपसे निवास कररहा है, पर जबतक भक्तोंका निर्मल हृदय, उस चैतन्य अविनाशीके साथ न रगड़ा जावे तबतक उसका कोई स्वरूप प्रगट नहीं होसकता । जैसे मार्कण्डेयने उस सर्वव्यापी ब्रह्मको शिवलिङ्गमें भी व्यापक समझ उसमे अपने हृदयकी रगड़ लगाई तो झट भगवत्ने शिवरूप धारण कर, वहाही प्रगटहो, यमराजसे उनकी जान बचाई । अथवा प्रह्लादके लिये भगवत्ने खम्भसे प्रगट होकर हिरण्यकश्यपको मारडाला ।

हमारे नवीन प्रकाशवाले जवान भला मेरी ऐसी सीधी बातोंको कब मानने लगे । वेतो बार २ यही प्रश्न करेंगे कि तुम वेदोसे अवतार बताओ ! और अवतारकी आवश्यकता बताओ ! क्योंकि जब परमेश्वर अपनी इच्छासे सब कुछ करसकता है तो अवतारकी क्या आवश्यकता ? सुनिये मैं पूर्ण प्रकार इस विषयको युक्तियोंसे औ प्रमाणोसे सिद्ध करदिखलादेता हूं । एकाग्र चित्त होजाइये !

मै उपासना और प्रतिमापूजनके व्याख्यानमे वेदोके प्रमाणोसे सिद्ध करचुका हूं कि उस परब्रह्मके दो रूप है **निराकार औ साकार** । अब यहां यह देखलाता हूं कि उस ब्रह्मदेवने जितनी वस्तु उत्पन्न की हैं वे भी दो प्रकारकी हैं, **निराकार औ साकार** । **सूक्ष्म औ स्थूल** । **चैतन्य औ जड़** । **तैजस औ तामस** । **शुद्ध औ मलीन** । **गुप्त औ प्रकट** । कोई बुद्धिमान् जब किसी भी वस्तुको विचारकी दृष्टिसे देखेगा तो वह अवश्य अनुभव करलेगा कि, अमुक वस्तु निराकार है वा साकार, सूक्ष्म है वा स्थूल । चैतन्य है वा जड़ इत्यादि २ ।

जैसे किसीने पूछा यह देह क्या है ? विचारकर कहो ! तो तनक विचार करनेसे अनुभव होगया कि, यह देह साकार है, स्थूल है, जड़ है

तामस है, मलीन है, प्रकट है ।

इसी प्रकार जब यहप्रश्न हुआ कि, यहजीवात्मा क्या है ? विचारकर कहो ! तो थोड़ाही विचार करनेसे अनुभव होगया कि, यह जीव निराकार है, सूक्ष्म है, चैतन्य है, तैजस है, शुद्ध है, गुप्त है ।

अब हमारे बुद्धिमान सभासद विचारलेवें कि, देह और जीव दोनों एक दूसरेसे विरुद्ध धर्मवाले देखेजाते है परन्तु कैसी आश्चर्यकी बात है कि इन दोनोंमें अनादि कालसे ऐसी मित्रता हुई हैं कि, एक विना दूसरे के कुछभी नहीं करसकता । देखिये यदि जीवात्मा न हो तो यह देह मृतक है । इसी प्रकार यदि देह न हो तो यह जीव निरर्थक है । जब इस जीवको देह मिलता है तो नाचता है, गाता है, हँसता है, खेलता है, कूदता है, दौड़ता है, उड़ता है, तैरता है, युद्ध करता है, उपदेश करता है, नाना प्रकारकी शिक्षा देता है तात्पर्य यह है कि, यहजीव देहके संगहोनेसे नाना प्रकारकी चेष्टा करता है, यदि इसको देह न मिले तो अनुभव ही नहीं होसकता कि जीवात्मा कुछ करनेकी सामर्थ्य रखता है वा नहीं । देखिये व्यासदेवने इस देहका संग करनेसे वेदोंका विभाग किया, और शास्त्र पुराण इत्यादि बनाकर जीवोका उपकार किया । सूर्यवंश दिवाकर श्रीमहाराज भगीरथने गंगाजीको पृथिवीमें लाकर भारतवर्षको पवित्र किया । धन्वन्तरिने चिकित्सा शास्त्र द्वारा औषधियोंके गुण अवगुणका वर्णन करके रोगग्रस्त प्राणियोंके घोर तापको दूर किया । इससे सिद्ध होता है कि अनादि, निराकार, सूक्ष्म, चैतन्य, तैजस, शुद्ध और सदा गुप्त रूपसे रहनेवाले जीवात्माको इस साकार स्थूल, जड़, तामस, मलीन, और नेत्रों के सामने प्रकट देहको वारम्वार स्वीकार करनेका अभ्यास अनादिकालसे चला आरहा है । फिर जो लोग शंका करते हैं कि वह ब्रह्म जो अनादि, निराकार, सूक्ष्म, तैजस, और चैतन्य है इस देहको स्वीकार कर अवतार नहीं लेसकता, उनकी ऐसी शंका एकदम निर्मूल है । प्रत्यक्ष देखनेमें आता है, और प्रायः सनातन धर्मके विरोधी भी इस वचनको स्वीकार करते है

कि, ब्रह्म और जीव, दोनों अनादि हैं, अविनाशी हैं, निराकार हैं, सूक्ष्म हैं, तैजस है, शुद्ध है और परस्परके सखा एक संग रहनेवाले है। तो क्या कारण है कि इनमे एक शरीर धारणकरे और दूसरा नहीं करे। ये दोनों आत्माही है केवल एकमें परमशब्द लगानेसे परमात्मा और दूसरेमें जीव शब्द लगानेसे जीवात्मा कहाजाता है, पर हैं दोनो आत्मा. आत्माकी व्यापकता मैं उपासनाके व्याख्यानमें दखलाआया हूं (देखो पृष्ठ १४४—१४७) इसलिये जीवात्मा भी व्यापक है। केवल शरीरका संग होनेसे एकदेशीय और बद्ध देखपड़ता है, यथार्थमे तो नित्यमुक्त है। सनातनधर्मके विरोधियोंका यह कहना है कि अनादि, अविनाशी, चैतन्य, निराकार और व्यापक शरीर नहीं धारण करसकता, यह बात कदापि सिद्ध नहीं होती। मैंने यहां अभी सिद्ध करदिया कि चैतन्य, अविनाशी और व्यापक जीवात्मा शरीर धारण कर सकता है, तो परमात्मा शरीर धारण क्यो नहीं करेगा ?

हा इतना तो अवश्य है कि जीव अल्पज्ञ होनेके कारण नाना प्रकारके कर्मोंसे बद्ध हो प्रकृतिकी प्रवलताके पार करनेमें असमर्थ है, और वह ब्रह्म नाना प्रकारके देहधारण करने पर भी प्रकृतिसे परे है, औ प्रकृतिके अधीन न होकर प्रकृतिको अपनी मूठीमें रखता है, क्योकि प्रकृति उसकी शक्ति है, जो सदा उसके अधीन है।

अब इनबातोका जानना भी अति आवश्यकीय है कि अवतारोंकी आवश्यकता इस संसारको है वा नही ? अवतार सम्पूर्ण पूर्णब्रह्म जगदीश्वरका होता है अथवा उसके अंश औ कलाका होता है, अथवा उसकी अनन्त शक्तियोंसे किसी एक विशेष शक्तिका होता है ? ये अवतार कितने प्रकारके है?

प्यारे श्रोतृगण ! इस संसारको अवतारकी अत्यन्तही आवश्यकता है, क्योकि समय २ पर अवतार न होवे तो ससार चलही नही सकता, दुखियोके दु:ख निवारण नहीं होसकते, भक्तोका उद्धार ही नहीं होसकता,

फिरतो भक्तोंके हृदयका विश्वास उठजावे । यदि अवतार न होवे तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नास्तिक होजावे, फिर तो ईश्वरका भय किसीके हृदयमें न रहे । प्रत्यक्ष देखाजाता है कि संसारमें पापात्मा प्राणी अपने पापोंके बदले अनेक प्रकारके दुस्सह कष्ट जैसे कुष्ठ (Leprosy) कास श्वास (Asthma) जलोदर (Dropsy) कारागार और फांसी इत्यादि पानेही रहते है, तथापि पापकरनेवाले अपने पापोंसे नहीं रुकते । ऐसीदशामें यदि अवतार इत्यादि न होवे तो औरभी अन्धेर होजावे, क्योंकि निराकार ब्रह्मका भय तो केवल ज्ञानियोंके हृदयमें होता है, साधारण बुद्धियाले मनुष्यके हृदय में निराकार ब्रह्मका भय होताही नहीं । कारण इसका स्पष्ट है कि निराकारको कोई देखही नहीं सकता, फिर इस जीवका स्वभाव है कि जिसे अपनीआयुष्पर्यन्त कभी न देखे उसे मानता ही नहीं। मानलीजिये कि, मोहन और सोहन दो पुरुषोंके पॉकेटमें दो हीरे है, और वे दोनों कहते है कि हमारे पास हीरा है, पर मोहन तो अपने पॉकेटसे हीरा निकालकर सबोंको देखलाताहुआ बाजारमें सेठजीके यहा भेजकर उसका लाखों रुपये लेआता है और सोहन कहता है कि अहो सेठजी ! मुझकोभी एकलाख देदीजिये, पर जब सेठजी कहते है कि हीरा देखलाओ तब उसका मूल्य निश्चय कर रुपये दूंगा । तब सोहन उत्तर देता है कि, मानलो कि, मेरे पास हीरा है रुपया देदो, देखलाऊगा नहीं । भला विचारियेतो सही ! इसप्रकार यह सोहन सेठजीसे रुपये मागता रहजायेगा पर बिना देखे और हाथमें लिये सेठजी कभी रुपया नहीं देगे । जो सोहन यह कहे कि सेठजी मेरेपास हीरातो है पर निराकार हीरा है, साकार नहीं, इसलिये मेरे निराकार हीरेको मनही मन अनुभव कर लाख रुपये देदीजिये । भला सोचिये तो सही ! हीरा नहीं देखलानेवालेको अथवा हमारे बुद्धिमान निराकार हीरावालेको कभी सेठजी लाखरुपये देवेंगे? कभी नहीं ! रुपया तो वही पावेगा जो प्रत्यक्ष हीरा देखलावेगा । नहीं लाख सिर पटककर मरजावे पर गुप्त अथवा निराकार हीरासे सोहनको

तो रुपया कदापि नहीं मिलेगा ।

इसी प्रकार सलाई मे निराकार अग्नि अवश्य है, पर उस सलाईको चूल्हेके सामने रख कर सहस्रों वर्ष पर्यन्त प्रार्थना करते रहजाइये कि हे निराकार अग्नि ! आप मेरी रोटी पका दीजिये, पर वह निराकार आग विना साकार हुए अर्थात् विना अवतार लिये रोटी नहीं पकावेगी । जब घिसकर वह आग प्रगट होगी अर्थात् आग अवतार लेगी तवही रोटी पकावेगी । अवतारका अर्थ " प्रगट होना " मैं पहले देखाआया हूं और इसी अग्निका उदाहरणभी देआया हूं (देखो पृष्ठ २७९) ।

मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि, निराकारसे व्यवहार कदापि सिद्ध नहीं होसकता । जवतक किसी प्रकारकी निराकारवस्तु साकार होकर प्रगट न हो तवतक किसी प्रकारका संसृत व्यवहार सिद्ध होही नहीं सकता । यहां निराकारवालोकी यह शंका होगी कि जव निराकारसे किसी प्रकारका व्यवहार ही सिद्ध नहीं होता तो तुमने अपनी उपासनाके व्याख्यानमें निराकार उपासनाका कथन क्यों किया ?

उत्तर इसका यह है कि, मैने निराकार उपासनाका केवल उन अधिकारियोंके लिये कथन किया है जो सर्व प्रकारके प्रपंचसे रहित होकर, सर्व प्रकारके दुःखोंको समान समझकर, शत्रु मित्रको समान दृष्टिसे देखते हुए व्यवहार रहित होगये हैं जिनको किसी प्रकारका व्यवहार साधन करना ही नहीं है, जिनके हृदयसे सर्व प्रकारकी शुद्ध औ मलीन वासनाये नष्ट होगई हैं, प्रारब्धसे जिनको उद्वेग नहीं है न पुरुषार्थकी कोई आवश्यकता है, जिन्होने स्वर्गको भी तुच्छ जाना है । ऐसे पुरुषोंको निराकार ब्रह्मकी आवश्यकता है । ऐसे पुरुष जीवनमुक्त है, श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन प्रति कहते है कि

यः सर्वत्रानभिस्नेह स्तत्तत्प्राप्यशुभाशुभम् ।
नाभिनन्दतिनद्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

भगवद्गीता अ० २ श्लो० ५७

परन्तु शरीरके सम्बन्धसे इस संसारमें चार प्रकारके जीव हैं। आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी।

चतुर्विधाभजन्तेमांजनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

भ॰ गी॰ अ॰ ७ श्लो॰ १६

अर्थ स्पष्ट है। इनमें प्रथमके तीन प्रकारके जीवोंसे सारी सृष्टि भरी हुई है और चौथे जो मुक्तजीव हैं वे करोड़ोंमें एक आधही होंगे। इस लिये इन मुक्त जीवोंको संसार से छांटकर अलग कर दीजिये। अब रहे तीन प्रकारके जीव, सो ये तीनों जबतक जीवन्मुक्त न होजावें अवतारों की आवश्यकता रखते हैं, क्योंकि इन तीनोंके साथ किसीनकिसी प्रकार सगुण व्यवहार, सात्त्विक हों, राजस हों, वा तामस हों, लगे हुए हैं, इस लिये समय २ पर इनको अवतारोंकी आवश्यकता है, क्योंकि निराकार से इनके कार्य कदापि सिद्ध नहीं होसकते। यह निश्चय है।

देखिये, यदि कोई नरेश किसी दूसरे राजाको पत्रमें यह लिखभेजे कि जब तुम्हारे ऊपर शत्रु चढ़ाई करे तब मेरे पास आना तुमको अपनी सेनासे सहायता करूंगा, पर जब उसपर शत्रु आनपहुचे और वह उस नरेशके पास जाकर पुकारे तो भीतरसे यह शब्द आवे कि मैं निराकार हूं, मुझे कोई देखता नहीं, न मैं किसीसे बात करता हूं, न कोई व्यवहार करता हूं, तुम क्यों व्यर्थ यहां आये। अब विचारिये तो सही कि, यह कितना बड़ा विश्वासघात होगा और किस प्रकार उस बेचारे राजाका सब कार्य भ्रष्ट होजावेगा। इस दृष्टान्तसे मेरा तात्पर्य यह है कि, उन पूर्ण परब्रह्म जगदीश्वरने हमजीवोंके पास वेदरूप पत्र लिखकरभेजा है, जिसमें यह प्रतिज्ञा की है कि, मैं तुम्हारी सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला हूं जिस समय तुम किसी आपत्ति में मुझको पुकारोगे, मैं झट उसी समय जैसी तुम्हारी कामना होगी उसके पूर्ण करनेके लिये तदाकार रूप धारण कर प्रगट होजाऊंगा।

इसलिये जब २ हमलोगोंके धर्मके नष्ट करनेके लिये पापात्माओं, और दुष्टोंकी वृद्धि होजाती है, हम लोग अपनी शक्ति औ बलसे कुछ नहीं करसकते, सर्व सामर्थहीन होकर व्याकुल होजाते हैं, और एकाग्र चित्त होकर उस महाप्रभुको पुकारते है, तब सूर्यकान्तकी अग्निके समान झट वह निराकार पूर्ण परब्रह्म जगदीश्वर अपने साकार स्वरूपको धारण कर हमारी सहायता करते हुए दुष्टोंका संहार कर हमारी रक्षा करता है। इसीको अवतार कहते हैं " दुष्टान्मार्जेतुंभक्तांस्तारयितुंहरिहरादि रूपेणाविर्भवतीत्यवतारः " अर्थात् दुष्टोको ताड़नेके लिये और भक्तोंकी रक्षाके लिये हरि और हर, अर्थात् विष्णु औ महेश्वरके जो आविर्भाव होते है उनहीको अवतार कहते हैं। सो सदा वह आनन्दकन्द अवतार ही लेकर धर्मरक्षा रूप व्यवहारका साधन करता है। निराकार रहनेसे कदापि तीनकालमें कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होसकता। श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं अपने मुखारविन्दसे अर्जुनप्रति कहते हैं कि—

यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणायसाधूनां विनाशायचदुष्कृताम् ।
धर्म्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥
जन्मकर्म्मचमेदिव्यमेवं योवेत्तितत्त्वतः ।
त्यक्त्वादेहंपुनर्जन्म नैतिमामेतिसोऽर्जुन ॥

भगवद्गीता अ० ४ श्लोक ७, ८, ९.

अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द अर्जुन प्रति कहते हैं कि हे पार्थ जब २ धर्मकी ग्लानि होती है, और अधर्मका उत्थान होता है, तब २ मै अपनेको सृजता हूं, अर्थात् अवतार लेता हू। साधारण मनुष्य के देहके समान देहधारण कियेहुए देखपडता हूं। और वेद विहित पुण्य कर्म करनेवाले जो ऋषि, महर्षि, आचार्य, भक्त इत्यादि जिनको साधु कहकर पुकाराजाता है तिनकी रक्षाके निमित्त, हिंसादि तथा धर्मसे द्वेष

करनेवाले दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये, औ पुनः उस नष्टहुए धर्मको संस्था-पन करनेकेलिये, मैं प्रतियुगमें बार २ मायामनुष्यरूप धारण करता हूं। सो हे अर्जुन ! इस प्रकार जो प्राणी मेरे दिव्य जन्म कर्मको तत्त्वतः (ठीक २) जानता है, वह फिर संसारबन्धनमें पड़कर जन्म नहीं लेता, वह तो इस शरीरको छोड़ मेरे स्वरूपको प्राप्त होजाता है।

प्यारे श्रोतृगण ! यहां श्यामसुन्दरने यह स्पष्ट कहदिया कि, जो प्राणी मेरे दिव्य जन्म कर्मको तत्त्वतः जानता है, अर्थात् जो यह जानता है कि मेरा जन्म जैसे साधारण मनुष्योंका रज वीजके संयोगसे होता है, वैसे नहीं है, पर मैं तो केवल लीलामात्र अपनी दिव्य माया करके संसार के जीवोंके देखनेही मात्र मनुष्यरूपका अनुकरण करता हूं नहीं तो मेरा शरीर ऐसा नहीं है कि पञ्चभूतों करके बना हो. और जैसे सर्वसाधारण प्राणी अपने संचित और प्रारब्धके अनुसार कर्म्मोंके बंधनमें पड़ेहुए नाना प्रकारके शुभाशुभ कर्म्मोंके फल भोगते हैं वैसे मेरे कर्म नहीं। मेरे कर्म जो संसारको पालन इत्यादि करनेमें नित्य दिव्यरूप हैं, और मेरे अधीन हैं, ऐसे कर्मोंको दिव्यही कहना चाहिये। अर्थात् मेरे जन्म भी अलौकिक हैं और मेरे कर्म भी अलौकिक हैं।

यदि शंका हो कि तुम यह कैसे कहते हो कि, कृष्णचन्द्रका शरीर साधारण मानुषी शरीर नहीं था ! तो उत्तर यह है कि यदि मानुषी शरीर होता तो मातृगर्भसे जैसे बच्चे छोटे बाहर आते हैं, ऐसे जन्मके समय ये भी छोटे बच्चोंके समान गर्भसे प्रगट होते, पर ऐसा नहीं हुआ। जन्मके समय षोडश वर्षकी अवस्था धारण किये चतुर्भुज रूपसे प्रगट हुए। सुनिये ! श्रीमद्भागवतसे प्रमाण देकर सुनाता हूं।

तमद्भुतंबालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजंशंखगदाद्युदायुधं।
श्रीवत्सलक्ष्मंगलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरंसान्द्रपयोदसौभगम्॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषापरिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभि र्विरोचमानवसुदेव ऐक्षत॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० । अ० ४ श्लोक १०,११

अर्थात् (वसुदेव ऐक्षत) वसुदेवने देखा । क्या देखा सो सुनिये— अर्थात् जब श्रीकृष्णचन्द्रके आविर्भाव होने अर्थात् प्रगट होनेका वा अवतार लेनेका समय आया तब आप अपने दिव्यस्वरूप से वसुदेव देवकी के सामने प्रगट हुए। उस समय आपका स्वरूप था सो और वसुदेव* ने किस रूपसे देखा सो व्यासदेव श्रीमद्भागवतमें वर्णन करते हैं, सुनिये ! श्रीकृष्णचन्द्र कैसे हैं कि, अद्भुत बालक है. अद्भुत क्यों कहा ? तो साधारण बालक बहुतही छोटा बच्चा विना किसी वस्त्र वा आभूषणके प्रगट होता है और यह तो किशोर अवस्था धारण किये सर्व अलकारों से युक्त है, इसलिये अद्भुत बालक हैं, फिर कैसे है ? "अंबुजेक्षणं" अर्थात् कमलके समान जिनके सुन्दर नेत्र विकसे हुए है, फिर और बच्चोको केवल दो ही भुजा होती हैं, इनके चार भुजा है, इसलिये अद्भुत बालक है, फिर इन चारों भुजाओमें शंख, चक्र, गदा, और पद्म धारण कियेहुए हैं फिर आपके हृदयमें श्रीवत्स (शुक्लवर्ण दक्षिणावर्त्त रोमावली) का चिन्ह है, जो केवल अवतारोंहीके हृदयमें होता है, साधारण मनुष्य के हृदयमें नहीं होता। आपके गलेमे कौस्तुभमणि शोभायमान होरहा है, पीताम्बर धारणकियेहुए (सान्द्रपयोदसौभगम्) पूर्ण जलसे भरेहुए मेघके समान श्याम शरीर है जिनका। "महार्हवैदूर्य०" बड़े मूल्यवाले वैदूर्य‡ अर्थात् विदूररत्न से जडेहुए। किरीट कुण्डलके प्रकाशसे आपके सहस्र कुन्तल जो घुंघराले लट (زلف) परिष्वक्त होरहे है, अर्थात् आपके बालके घुंघरों को नाना प्रकारके रत्नोंके प्रकाश कैसे घेरेहुए है, जैसे कारी घटाको कही २ बिजली चमक २ कर घेरे-

---

* यदि शंका हो कि, पुत्रके जन्मके समय माता केवल रहती है बसुदेवने कैसे देखा ? तो उत्तर यह है कि कंसने वसुदेव देवकी दोनोंको एकसाथ बेड़ीमें बाधकर कारागारमें रखा था।

‡ वैदूर्यको भाषामें लहसुनिया कहते हैं।

हुई रहती हैं, अथवा जैसे कारी घटाके बीच २ में सूर्यकी किरणें पड़ती हैं। फिर "उद्दाम०*" बिना किसी प्रकारके बन्धनके आपकी कटिमे किंकणीसे युक्त कटिसूत्र अर्थात् कमरबन्द हैं, भुजाओंमे बाजू है, कलाइयोंमें कङ्कण हैं, ऐसे आभूषणोंसे सुशोभित बालकको वसुदेवने देखा। बिना बन्धनके जो कंकण इत्यादि भूषणोंको कहा, इससे व्यासदेवने यह सूचित किया कि आपका यह सारा स्वरूप नखसे शिख तक केवल ज्योति ही ज्योतिका है, क्योंकि यदि प्राकृत मनुष्यका शरीर हो तो उसमें बंधन सम्भव है और जो केवल ज्योति ही ज्योति देखनेमात्र माया कृत मनुष्य रूप हैं उसमें बंधन इत्यादि नहीं होते। यदि शंका हो कि, इन अवतारोंका शरीर माया मनुष्य रूप क्यों कहते हो? यह साधारण प्राकृत मनुष्योंके समान क्यों नहीं कहते? तो वेदोंने भी इनको मायामनुष्य रूप कहा है, प्राकृत मनुष्य नहीं कहा। मैं आपको ऋग्वेदका प्रमाण देता हूं जिससे दो बातें एकसाथ सिद्ध होजायेंगी। प्रथम तो यह कि, जब २ हमलोग किसी क्लेशके समय उस अपने रक्षकको पुकारते हैं तब २ वह हमारी सहायताके निमित्त प्रकट होता है, और दूसरी बात यह कि, जिन २ रूपो की आवश्यकता होती है तदाकार ही रूपोंको धारण करता है, और वे रूप मायाकृत रूप होते हैं, यथार्थमें वे पाचभौतिक वा प्राकृतिक नही होते, वे देखनेमात्रही भासते हैं।

यहां मैं ऋग्वेदके अष्टक ४ अध्याय ७ वर्ग ३५ के तीन मंत्रोंको सुनाता हूं उनके अर्थोंको भी स्पष्ट कर वर्णन करता हूं सुनिये

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रंपुरुहूतमिन्द्रंस्वस्तिनोमघवा धात्विन्द्रः।

ऋग्वेद मण्डल ६ अ० ४ सूक्त ४७ मंत्र ११.

---

* दाम्नः उद्गतः— बंधनरहितः—यथा— नदत्याकाशगङ्गायाः स्रोतस्युद्दाम दिग्गजे। (रघुवंश स० १ श्लोक ३५)

अर्थात् उस " त्रातारम् " सर्व प्रकारकी आपत्तियों तथा शत्रुओं से रक्षा करनेवाले तथा " अवितारम् *" सर्व कामनाओंके पूर्ण करने वाले " इन्द्रम् " परमेश्वरको तथा " हवे हवे सुहवं " सर्व प्रकारके युद्धके समय जब २ असुरवृन्द धर्मकी हानि करनेके लिये धर्मात्माओंका आक्रमण करते हैं तब २ सुख पूर्वक पुकारेजाने योग्य " शूरमिन्द्रम् " परम बलवान परमेश्वरको तथा " शक्रम् " सर्व कार्योंके पूर्ण करनेमें परम शक्तिमानको, फिर " पुरुहुतं " आपत्तियोंके समय बहुतेरे दीन-जनोंसे पुकारेजाने योग्य " इन्द्रम् " परमेश्वर को " ह्वयामि "हम पुकारते हैं और यही प्रार्थना करते है कि, एवम्प्रकार पुकारेजाने पर " इन्द्रः " परमेश्वर जो " मघवा " सर्व प्रकारके ऐश्वर्यसे युक्त है " नः " हम लोगोंके लिये " स्वस्ति " कल्याणको " धातु " देवे। अर्थात् दुष्टोंको संहार कर हम दीनजनोंका कल्याण करे। फिर क्या करे? सो अगले मंत्रमें कहते है सुनिये!

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृलीको भवतु विश्ववेदाः। बाधतांद्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्यपतयःस्याम।

ऋग्वेद मंत्र ६ अ० ४ सू० ४७ मंत्र १२.

अर्थात् " इन्द्र " वह परमेश्वर जो " सुत्रामा " सुन्दरप्रकारसे हम लोगोंकी रक्षा करनेवाला है और " स्वां " जो ऐश्वर्य औ अनेक सेवकोंसे युक्त है " अवोभिः " वह नानाप्रकारकी रक्षा करनेवाली शक्तियों से हमलोगोंको " सुमृलीको भवतु " सुष्टुप्रकारसे सुखका देनेवाला होवे, फिर वह " विश्ववेदाः " सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके प्राणियोंके दुःख सुखका जाननेवाला " बाधतांद्वेषो " हमारे धर्मसे द्वेषकरनेवाले जिनके द्वारा हमारे धर्मकी ग्लानि, और अधर्मका उत्थान होता है तिन

* अवितारम्–कामैस्तर्पयितारम्– (सायनाचार्यः)

दुष्टोंको नाश करे ! एवम्प्रकार उनको नाश करके हमलोगोंको " अभयं-कृणोतु " निर्भय करदेवे जिसके ऐसे निर्भय करदेनेसे हमलोग " सुवी-र्यस्यपतयः स्याम " अद्भुत पराक्रमके पति होवें अर्थात् बड़े पराक्रमी होजावें।

प्यारे सभासदो ! इसी प्रकारकी प्रार्थना जब वेद सब देवदेवियोंके साथ मिलकर ऋषियोंको गेयाके रूपमें साथ लेकर प्रार्थना करता है तब विश्ववेत्ता सबोंके क्लेशका जाननेवाला परब्रह्म जगदीश्वर क्या करता है सो आगले मन्त्रोंमें यों कहते हैं सुनिये !

रूपंरूपं प्रतिरूपोबभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय
इन्द्रोमायाभिः पुरुरूपईयते युक्ताह्यस्यहरयःशतादश।

ऋ० म० ६ अ० ४ सू० ४७ मं० १८.

अर्थात् वह " इन्द्र " परमेश्वर " मायाभिः " माया करके " पु-रुरूपईयते " बहुतसे मायावी रूपोंको धारण करता है, अर्थात् माया-कृत रूप धारण करता है। इसी कारण " रूपं रूपं प्रतिरूपोबभूव " कहा, तात्पर्य यह है कि, जैसे रूपको धारण करता है तैसे २ रूपके अ-नुसार आचरण करताहुआ देखपड़ता है, अर्थात नृसिंह तथा राम कृष्ण इत्यादि रूपोंको धारण कर उनहीके अनुसार आचरणभी करता है। जैसे सिंहका रूप धारण कर हिरण्यकश्यप ऐसे दुष्टको फाडडालता है। पुरुष-त्वकी मर्य्यादा देखानेके लिये जब मर्य्यादापुरुषोत्तम अवतार अर्थात् रामरूप धारण करता है तब मनुष्योंको क्या करना चाहिये ? मनुष्यत्वकी मर्य्यादा कहांतक है? किस प्रकार अपने माता पिता गुरुकी आज्ञा कर-नी चाहिये ? सब पूर्ण रीतिसे आचरण कर देखलादेता है। जब शृङ्गार रसको अङ्गीकार कर परम मनोहर सुन्दर कृष्णरूप को धारण करता है तब प्रेमियोंको किस प्रकार प्रेमकी शिक्षा देनी चाहिये ? तथा किस प्रकार उनके प्रेमका प्रत्युत्तर करना चाहिये ? सब ठीक २ आचरण कर देखला

देता है । यदि शंका हो कि उस परमपुरुषको इन रूपोंके धारण करने से क्या प्रयोजन ? तो वेद कहता है " तदस्यरूपंप्रतिचक्षणाय " भक्तो के मध्य परस्पर अपने यशको कथन कराकर तारनेके लिये अर्थात् अवतार लेकर नानाप्रकारकी लीला करनेहीसे भक्तजन उसके गुणानुवादको कथन करके भवसागरसे पार उतरजाते हैं । इसी तात्पर्यको गोस्वामी तुलसीदासजी अपने रामायणमें कहते हैं कि ।

जब २ होय धर्मकी हानी । बाढ़हि असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाय नहि वरणी । सीदहि विप्र धेनुसुरधरणी ॥
तब २ प्रभु धरि विविध शरीरा । हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

दोहा असुर मारि थापहिं सुरहि, राखहि निज श्रुतिसेतु ।
जग विस्तारहि विशदयश, रामजन्म करहेतु ॥

सोइ यश गाय २ भव तरहीं । कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं ।

परस्पर कथन करनेवाले और सुननेवालोंमे प्रसिद्ध श्री शिवभगवान और पार्वती, याज्ञवल्क्य और भरद्वाज, काकभुशुण्ड और गरुड़ इत्यादि अनेक उस महाप्रभुके भक्त हुए है, इसी कारण वेदने " प्रतिचक्षणाय " ऐसा पद कहा । ऐसे उस महाप्रभुके सामान्य रूप कितने हैं और विशेष रूप कितने है उसे वेद कहता है कि "युक्ताह्यस्यहरयः" राक्षसों और अनेक दुष्टोंसे प्राप्त हुए दुःखोको जो हरण करनेमें युक्त हैं, (इसी कारण कहा हरयः) वे कितने है तो (शतादश) दशशता अर्थात् सहस्रो हैं, अनगिनत हैं ।

प्यारे सभासदो ! मैंने जो ऋग्वेदके चौथे अष्टक अध्याय ७ का अभी प्रमाण दिया है तहा यह दिखलाया है कि " रूपं २ प्रतिरूपो बभूव" इस मंत्रसे उस महाप्रभुके अवतारोंकी सिद्धि होती है । इसी मंत्रका अर्थ स्वामी दयानन्दने ऐसा भ्रष्ट करदिया है कि, उस अर्थको देखकर लज्जा आती है, यदि वे जीवितहोते तो मै उनसे पूछता कि, भाईसहिब ! आपने इस मंत्रका मनमाना अर्थ करके अनर्थ क्यों करदिया ? क्या आप

को यह ज्ञात नहीं है कि वेदमें जो एक सूक्त चलता है उसमें एक विषय का सम्पादन होता है, जो प्रकरण चलता है उसी प्रकरणको लेकर समाप्त होता है । यह मंत्र (रूपं २ प्रतिरूपो ०००) ऋग्वेद मण्डल ६ अध्याय ४ के ४७ सूक्तका अठारवा मंत्र है , इसका आरम्भ " इन्द्र " नाम परमेश्वरके सम्पादन और महत्वसे हुआ है और समाप्त भी "इन्द्र" नाम ईश्वरके महत्वसे कियागया है । फिर क्या कारण है कि, आपने इस मत्रमें उस परब्रह्म जगदीश्वरकी महिमाको छोड़ विजलीका अर्थ करदिया इससे सिद्ध होता है कि आपके शिष्योंमे बहुतेरे अंग्रेजी जाननेवाले विजलीकी महिमा अंग्रेजी पुस्तकोंमे पढकर विजली पर अधिक विश्वास रखते हैं । वे यही कहते है कि, विजलीसे सारे कार्य होते है, विजलीमे शरीरकी नाड़िया चलती हैं, विजलीकी शक्तिसे हमलोग हँसते रोते हैं, विजलीकी शक्तिसे हमलोग चलते फिरते है । यदि शरीरसे विजली निकलजावे तो शरीर मृतक होजावे । सच है जो विजलीके मानने वाले विद्युत्पूजक हैं उनका यही मत है । इससे ऐसा वोध होता है कि केवल उनको प्रसन्न करनेके लिये आपने वेदमे विजली दिखादी । मैं यह नहीं कहता कि वेदने विजलीको सम्पादन नहीं किया, इस विजलीके वर्णन में सनातन धर्मके वैदिक ग्रंथके ग्रंथ लिखे पड़े हैं, पर इस सूक्तमे विजलीके विपयसे कोई सम्बन्ध नहीं है । यदि स्वामी दयानन्दहीका अर्थ थोड़ी देरके लिये मानलिया जावे तो भी उनहीके अर्थसे आपही प्रकरणान्तर होजाता है, जो ग्रन्थोंमें एक बहुतबड़ा दोप कहाजाता है और प्रमाद कहाजाता है, सो स्वामीके अर्थ करनेहीसे ऋग्वेदमें प्रमाद का सम्भव होता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि, ईश्वरभी प्रमादी है । देखिये मै दिखलाता हूं । सुनिये ! इस सूक्तमें ३१ मंत्र है, जिसके पहले मंत्रसे लेकर १७ मंत्र तक तो दयानन्दजीने " इन्द्र " शब्दका राजा अर्थ किया, न जाने कहाके राजाका महत्व देखलाया ? फ्रासके राजाका, वा जर्मनके राजाका, वा हिंदुस्तान और इग्लैण्डके राजाका । जव आप

इस अठारवे मंत्र (रूपं २ प्रतिरूपो वभूव०) के समीप आये और देखा कि राजाका अर्थ इस मंत्रमे नही घट सकता, राजाके अर्थका समावेश नहीं है, तब यहा दूसरा अर्थ करनेके लिये कटिवद्ध होगये, और इस मंत्रमे विजलीका अर्थ करादिया, जिसको देखना हो वह आपके ऋग्वेद भाष्य अष्टक चतुर्थके पृष्ठ १६०९ से १६३५ तकको जो अजमेरके यन्त्रालयमे छपा है । देखलेवें ।

प्यारे सभासदो ! अव चलिये हमलोग अपने विपयकी ओर चलें, वावा दयानन्दजी की महिमा अपार है, इनके ऋग्वेदभाष्य देखनेहीसे वुद्धि घवराती है, क्योंकि रेलगाडी, एनजिन, तार इत्यादिका अर्थ और राजा रानीके अर्थसे सम्पूर्ण वेदको भरदिया है, मानों वह वेद नहीं है मोमकी नाक है जिधर घुमाइये उधरही अर्थ घूमजावे । इसलिये हमलोगो को उनके अर्थकी ओर ध्यान न देकर अपने विषयकी ओर चलना चाहिये।

मैं पहले यह देखला आया हूं कि वसुदेवने श्यामसुन्दरको अदूभुत वालक देखा, अर्थात् मायाका वालक देखा, देखतेही स्वरूपके दर्शन होने से वसुदेवको दिव्यचक्षु होगया, और जानगये कि यह कोई साधारण मनुष्य नहीं, यह तो साक्षात् परब्रह्म जगदीश्वर है ऐसा विचारकर झट स्तुति करनी आरम्भ करदी ।

वसुदेव उवाच ।

विदितोऽसिभवान्साक्षात्पुरुषःप्रकृतेःपरः ।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥
सएवस्वप्रकृत्येदंसृष्ट्वा यत्त्रिगुणात्मकम् ।
तदनुत्वंह्यप्रविष्टः प्रविष्टइवभाव्यसे ॥

श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे अ० ३ श्लो० १४, १५.

अर्थात् हे भगवन् ! आप तो साक्षात् प्रकृतिसे परे परम पुरुष, केवल अनुभव करके आनन्द स्वरूप, सर्व प्रकारकी बुद्धियोको देखनेवाले, चौदहों भुवन तथा सातो द्वीपमें प्रगट हैं । देवता, देवी, गन्धर्व, किन्नर

कौन आपको नहीं जानता ? सो हे भगवन ! आपने अपनी प्रकृतिसे त्रि॰ गुणात्मक सृष्टिकी रचना करके यद्यपि इससे विलग हैं तथापि इसमें प्र वेश किये हुएके समान भासते हैं । यहां वसुदेवजीके कहनेका तात्पर्य यह है कि जैसे सम्पूर्ण आकाश, चन्द्रमा और तारागणके साथ. नदीके जलमें प्रवेश किये हुए दीखपड़ता है, यद्यपि है वह उससे परे असंख्य योजन दूर, पर उस जलमें प्रवेश कियेहुए देख पड़ता है, अथवा जैसे अपना मुख दर्पणमें देखपड़ता है. यद्यपि मुखका कोई अंश उस दर्पणमें नहीं है इसी प्रकार वह परम महापुरुष यद्यपि प्रकृतिसे परे हैं, तथापि इसमें प्र॰ वेश कियेहुआ देखपड़ता है इसी अर्थको फारसी उर्दूमें यों कहा है ।

[illegible]
[illegible]

प्यारे सभासदो ! इसी प्रकार देवकी माताने भी श्यामसुन्दरको अ- द्भुत बालक जान यही जाना कि, यह प्राकृत बालक नहीं, यह तो सा- क्षात् पूर्ण परब्रह्म जगदीश्वर हैं. ऐसा जान देवकीने भी स्तुति आरम्भ करदी ।

देवक्युवाच ।

रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणंनिर्विकारं ।
सत्तामात्रंनिर्विशेषंनिरीहं सत्त्वंसाक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥

भा० स्कं० १० अ० ४ श्लो० २५

देवकी कहती है कि, जिसके रूपको वेदोंने अव्यक्त * कहा है अर्थात् जिसे किसी प्रकारका अवयव वा शरीर नहीं है, जो सदा स्वतंत्र है, सनातन है, सर्वव्यापक ब्रह्म है, ज्योतिस्वरूप है, निर्गुण और निर्वि- कार है, सत्तामात्र है, अर्थात् आपकी विद्यमानता लक्षमात्र ही है, यथार्थ मे आपको किसीने नहीं जाना, न जानेगा । इसीसे श्रुति कहती है " न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् " ००० (देखो पृष्ट १३६) इसीकारण कहा है कि आप निर्विशेष है, आपके पहचाननेके लिये कोई

* सावयवं परतंत्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ।

विशेष लक्षण नहीं है. जिससे आपको कोई लखसके, अर्थात् आप अ-लख हैं. फिर आप निरीह हैं, अर्थात् सब क्रिया करतेहुए भी आप कुछ नहीं करते. आपमें कर्तृत्वाभिमान नहीं है, न आपको कुछ करनेकी इ-च्छा है, आपतो लापरवा है, सो आप साक्षात् विष्णु हैं, अर्थात् सब में प्रवेश किये हुए है. और सम्पूर्ण विश्वको पालन करनेवाले हैं, फिर आपको वेदने अध्यात्मदीप कहा, अर्थात् इस शरीरमें आत्मारूप होकर सब इन्द्रियोंके परम प्रकाशक आपही हैं ।

प्रिय सभासदो ! भला विचारिये तो सही कि, जो लोग अवतार के विरोधी हैं वे क्यो ऐसी तुच्छबात मुंहसे निकालते है कि राम कृष्णा-दि अवतार उनहीके समान साधारण मनुष्य शरीरवाले थे, भला उनसे यह पूछना चाहिये कि तुनभी - क्या कृष्णचन्द्र हीके सदृश जन्म लेनेके समय १६ वर्षके प्रगट हुएथे ? क्या तुम्हारे माता पिताने भी तुमको अव्यक्त, निर्गुण, निर्विकार करके स्तुति की थी । कदापि नहीं ! तुम्हारे लिये तो तुम्हारे ग्रामकी चर्मकारी (चमारन) आई थी, और धोधाकर तुमको स्वच्छ किया था, तुम चैं २ कै २ रोयाकरते थे । तुमही नहीं हम लोग सब जीवमात्रकी यही दशा थी, फिर कहा राजा भोज और कहां गंगो तेली । किसीने कहा है— " चे निस्वत खाकरा वाआलमपाक"

چه نسبت خاک را با عالم پاک

अब हमारे नवीन प्रकाश वाले यह शंका करेंगे कि, तुम जन्मके स-मय १६ वर्ष की अवस्था कहते हो, पर बाललीलामें तो कृष्णचन्द्रके चार पांच वर्षकी लीलाका वृत्तान्त कथन है, जैसे पूतना औ तृणावर्त्त के वधके समय कृष्णचन्द्रको पालनेमें झूलनेवाला वच्चा वर्णन किया है यह कैसे हुआ ? उत्तर इसका यह है कि, जब वसुदेव देवकीने श्याम-सुन्दरका चतुर्भुजरूपमे दर्शनपाया तब घबराकर बोले कि, हे विश्वात्मन्! यदि आप हमारे गृहसे इसप्रकारका अलौकिकरूप धारण कियेहुए बाहर निकलोगे तो किसीको विश्वास नहीं होगा कि, यह वसुदेव देवकीका पुत्र

है, संसारमे बहुत बड़ी बिडंबना होगी, लोग यही कहेंगे कि किसीसे माग लाई है, इसलिये—

उपसंहरविश्वात्मन् नदोरूपमलौकिकम् ।
शंखचक्रगदापद्म श्रियाजुष्टंचतुर्भुजम् ॥

हे विश्वात्मन्! आप इस शंख चक्र इत्यादि धारण कियेहुए अलौकिक चतुर्भुज स्वरूपका उपसंहार करिये, अर्थात् इस रूपको अन्तर्धान कर छोटा बालकका स्वरूप धारण कर जैसे प्राकृत बालक जन्म लेता है ऐसे छोटा रूप होकर बच्चोंके समान लीला कीजिये । इतना सुनकर श्री श्यामसुन्दरने कहा कि—

वर्षवातातपाहिमघर्मकालगुणाननु ।
सहमानौश्वासरोध विनिर्धूतमनोमलौ ॥
शीर्णपर्णानिलाहारा वुपशान्तेनचेतसा ।
मत्तःकामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥
तदावांपरितुष्टोऽह ममुनावपुषाऽनघे ।
तपसाश्रद्धया नित्यं भक्त्याचहृदिभावितः ॥
प्रादुरासंवरदराड्युवयोः कामदित्सया ।
व्रियतांवरइत्युक्तो माद्दशो वांवृतःसुतः ॥

भागवत अ० ३ श्लो० ३४, ३५, ३७, ३८ ।

अर्थात् जब तुम दोनोंने वर्षा, वायु, आतप, हिम, घर्मको कालानुसार सहतेहुए, श्वासको निरोधकर, मानसिक विकारोंसे शुद्ध हो, सूखी पत्ती और वायुको अहार कर, शान्तचित्त हो, मुझसे अपनी कामनाकी प्राप्तिकी इच्छा करतेहुए मेरी आराधनामे तत्पर होगये, तब मैं जो तप श्रद्धा भक्तिसे सदा प्रसन्न होनेवाला हूं, तुम दोनोंकी तपस्यासे प्रसन्न हो इसी रूपसे जिसको तुम दोनों इससमय अपने सम्मुख देखरहे हौ, तुम्हारी कामनाको देनेकेलिये प्रगट होकर तुम्हारे प्रति यही कहा कि, जो इच्छा हो वर माँगो! तब तुम दोनों उस समय मेरी इस मूर्त्तिको देख ऐसे

मोहित होगये कि मुक्ति मांगना भूलकर यही वरमांगा कि, तुमको मेरे समान सुन्दर पुत्र होवे । तब मैं तुमको ऐसाही वर देकर अन्तर्धान होगया । सो मैं तुमको स्मरण करादेता हूं कि, मैं इसी रूपसे अपने वरदान के अनुसार तुम्हारा पुत्र होने आया हूं । अब तुम कहते हो कि इस स्वरूपसे प्रगट होनेसे संसारको बिडम्बना होगी, कोई विश्वास नहीं करेगा कि यह देवकीका पुत्र है तो अब फिर मैं तयार हूं जो कहो सो करूं, क्योंकि मैं सदा श्रद्धा भक्तिके वशीभूत हूं जो तुमलोग कहोगे करनेको तयार हूं ।

तब देवकीने कहा कि भगवन् ! साधारण प्राकृत बच्चा होकर मेरे सामने प्रगट होजाइये । इतना सुनते ही श्यामसुन्दरने कहा कि, अब मैं इस रूपको त्यागकर बालक होजाता हूं, पर तुमको यदि कंस का भय है तो मुझको इसी समय गोकुलमें लेजाओ । वहां नन्दकी पत्नी यशोदा के गर्भसे आदिशक्ति उत्पन्न हुई है, उसे लेआओ, और मुझे वहां यशोदा के आगे छोड़आओ !

प्यारे सभासदो ! इसी प्रकार रामावतारमे भी श्रीरामचन्द्रने ऐसेही अलौकिक बालरूपसे प्रगट हो कौशल्याको दर्शन दिया है, और उनके कहनेसे बालकरूप होकर लीला करने लगे हैं । देखो श्री गोस्वामी तुलसीदासजी इसी तात्पर्यको अपने रामायणमें कहते है । छन्द

भये प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी ।
हर्षित महतारी मुनिमनहारी अद्भुतरूप निहारी ॥
लोचनअभिरामा तनघनश्यामा निज आयुध भुजचारी ।
भूषणबनमाला नयनविशाला शोभासिंधु खरारी ।
कह दुहुंकरजोरी स्तुतितोरी केहिविधि करौं अनन्ता ॥
माया गुणज्ञानातीतअमाना वेद पुराण भनन्ता ।
करुणागुणसागर सबगुणआगर जेहि गावत श्रुति संता ।
सो ममहितलागी जनअनुरागी प्रगट भये श्रीकन्ता ॥

ब्रह्माण्डनिकाया निर्म्मित माया रोम २ प्रति वेद कहै।
मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीरमति थिर न रहै।
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजे शिशु लीला अति प्रिय शीला यह सुख परम अनूपा।
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होई बालक सुर भूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भव कूपा।

इतना कहनेपर भी जिनको परमात्मासे विरोध है, यही कहेंगे कि ये सब बातें गप्प हैं। सच है भगवत्की अपार महिमाके सागरके थाह लेने में जिनकी बुद्धि कूप मण्डूक (कूपके मेंढक) के समान होरही है, वे इन रहस्योंको क्या जानें।

देखिये मै फिर कहता हूं कि, स्वायंभुवमनु और शतरूपाने अपनी राजगद्दीको त्याग राजके सब सुखको छोड़ वनमें जा एक पावके बल खड़े हो सहस्रों वर्ष तक तप किया, तब आकाशवाणी हुई कि, वर माग! क्या मांगता है? उस समय स्वायंभुवमनुने कहा कि, हे भगवन्! जिसकी वाणी (आकाशवाणी) मेरे कर्ण कुहरोंको प्रसन्न कररही है उस का सुन्दर स्वरूप मै देखूं, यही मेरी अभिलाषा है। तब फिर आकाश वाणी हुई कि मेरे स्वरूपको कोई इन चर्म चक्षुओंसे नहीं देख सकता। तब स्वायंभुवने प्रार्थनाकी कि, भगवन्! आप सर्वशक्तिमानहैं, भला जब आप इन चर्मके कर्णोंको प्रसन्न करनेके लिये वाणी वनही जाते है तो इन चर्मके चक्षुओंने क्या अपराध किया है कि, आप इनके लिये रूप न वनसकें? एवम्प्रकार जब मनुने प्रार्थना की तब वह महापुरुष अत्यन्त सुन्दर रूप धारण किये सारे ब्रह्माण्डकी छविको अङ्गीकार किये झट स्वायंभुवमनु और शतरूपाके सम्मुख प्रगट हो बोला कि, वरं ब्रूहि! वर मांगो २। स्वायंभुवमनु प्रभुकी छविमे मोहित हो बोले कि भगवन्!

आपके सदृश मुझको पुत्र होवे ! और वह ऐसेही रूपगुणसे सम्पन्न पुत्र हो ! तव भगवान् " एवमस्तु " कहकर अन्तर्धान होगये । भगवान् यदि एवम्प्रकार अपने भक्तोंकी मनोकामनाओंके पूर्ण करनेमें समर्थ न हों, और स्वायंभुव मनुको यह उत्तर देदेवे कि, मै अपने क़ानूनका ऐसा बद्ध होरहा हूं कि, खिलाफ़कानून किसीकी शुद्धइच्छा पूर्ण नहीं करसकता दर्शन नहीं देसकता, तव तो वह प्राकृत राजा महाराजाओंके समान क़ानूनके वन्धनमें आकर बद्धजीव कहा जावेगा, फिर उसको सर्वशक्तिमानके स्थान पर सर्व शक्तिहीन क्यों नही कहाजावे । इसालिये भक्तोंकी शुद्ध इच्छा कुछ भी क्यों न हो, वह पूर्ण करनेमें समर्थ है । हां दुष्टजीवोंकी मलीन इच्छाकी पूर्त्ति नहीं करसकता, क्योंकि वह दयासागर है, करुणानिधान है, किसीकी बुराई नहीं चाहता । वह जानता है कि उस मलीन इच्छाकी पूर्त्तिसे जीवोंको कष्ट होगा ।

यदि शका होकि, भक्तोंके हृदयमें यदि कोई मलीन इच्छा प्रगट होआवे तो क्या उसकी पूर्ति वह नहीं करेगा ? तो उत्तर यह है कि, उसकी इच्छाकी पूर्तिमें वह ऐसी युक्ति लगावेगा कि उसकी हानि न हो और वह इच्छा उसके हृदयसे मिटजावे । जैसे महर्षि नारद, जो भगवान्के परम भक्त हैं, राजा शीलनिधिकी कन्याको देख मोहित हो उससे विवाह करने की इच्छासे विष्णुभगवानके समीप उनका सुन्दर स्वरूप मांगने गये, तो उनको बन्दरका मुंह देकर यही कहा कि, हे मुनि ! जिस प्रकार तुम्हारी भलाई होगी मै वैसाही करूंगा । सो बन्दरका मुंह देदेनेसे वह उस कन्यासे बचे, नहीं तो उनका सारा तप भ्रष्ट होजाता । त्यागीसे गृहस्थ की पदवी मिलती, जिसको ऊंचेसे नीचे गिरना कहते है ।

अब मैं आपको उसी भागवत और रामायणसे यह देखलाता हूं कि राम और कृष्णकी मूर्ति माया मनुष्यरूप इच्छामात्र थी । अर्थात् ये दोनों जब जहां जैसी आवश्यकता देखते थे तदाकार मूर्ति बना लेते थे, जहां आवश्यकता नहीं थी वहां अन्तर्धान होजाते थे " स्वेच्छामयस्य

ननुभूनमयस्यस्याधि ''

जैसे मानलीजिये कि किसी समय कौशल्या अथवा यशोदाकी गोद में भगवान् खेलते २ यह देखते थे कि, इनने बहुत सुख लूटा, तब इनसे विलग होनेके लिये गोदहीमें ऊंघना आरम्भ करदेते थे । जब मैया देखती थी कि, बालकको नींद आगई तब लेजाकर शयनगृहमें पर्यङ्कके ऊपर सोलादेती थी और कपाट बन्दकर बाहर निकल गृहकार्यमें लगजातीथी तब यहां शय्याके ऊपर कोई मूर्ति नहीं रहती थी। भगवान अन्तर्धानहोजाया करते थे । फिर जब मैयाको यह स्मरण होआता था कि, चलो बच्चेको सोतेहुए बहुत विलम्ब होगया देखें क्या दशा है ? तब गृहदासियोंसे होकर जैसे शय्याके समीप आतीथी वैसेही फिर उसी रूपसे श्यामसुन्दर प्रगट हो शय्या पर लोटने लगते थे, और हँसकर, मैयाके गले लगजाते थे । इसलिये इसी वचनके सिद्धान्तमें गोस्वामी तुलसीदासजी, जिनको वाल्मीकिका अवतार मानते हैं, यों वर्णन करते हैं कि—

एकबार जननी अन्हवाये । करि शृंगार पलना पौढ़ाये ॥
निजकुल इष्टदेव भगवाना । पूजाहेतु कीन्ह असनाना ॥
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा । आपगई जहां पाक बनावा ॥
बहुरि मातु तहवां चलिआई । भोजनकरत दीख सुतजाई ॥
गइ जननी शिशुपहँ भयभीता । देखिबाल तहां शयन पुनीता ॥
बहुरि आय देखा सुत सोई । हृदयकम्प मन धीर न होई ॥
यहां वहां दुइ बालक देखा । मतिभ्रम मोरि कि आन विशेषा ॥
देखि राम जननी अकुलानी । प्रभु हंसिदीन्ह मधुर मुसकानी ॥

दोहा । देखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखंड ।
रोम २ प्रति लागहीं, कोटि २ ब्रह्मण्ड ॥

चौ० अगणित रविशशि शिवचतुरानन।बहुगिरि सरित सिंधुमहिकानन
काल कर्म गुणदोष सुभाऊ । सो देखा जो सुना न काऊ ॥
देखी माया सब विधि गाढ़ी । अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी ॥

देखा जीव नचावै जाही । देखी भक्ति जो छोरै ताही ॥
तन पुलकित मुखवचन नआवा । नयनमूँदि चरणन सिरनावा ॥
विस्मयवंत देखि महतारी । भये बहुरि शिशुरूप खरारी ॥
अस्तुति करि न जाय भयमाना । जगतपिता मैं सुत करिजाना ॥
हरि जननी बहु विधि समुझाई । यह जनि कतहुँ कहसिकिनमाई ॥

दोहा बार २ कौशल्या, विनय करत करजोरि ।
अब जनि कबहू व्यापई प्रभु मोहि माया तोरि ॥

प्यारे सभासदो ! इन भाषा चौपाइयोंका अर्थ स्पष्ट है, प्रायः बहुतेरे भारत निवासी इस रामायणको पढ़कर इस लीलाको भली भांति समझते हैं, पर बहुतेरे ऐसे भी हैं कि दुर्भाग्यवश भाषारामायणको भी नहीं जानते, संस्कृत वाल्मीकीय इत्यादिका जानना तो उनके लिये दुर्लभ ही है, पर इस तुलसीकृत रामायणको स्वप्नमें भी नहीं देखा, इसलिये इन चौपाइयोंका संक्षिप्त तात्पर्य कहसुनाता हू सुनिये !

एकबार कौशल्या ने परम प्रिय पुत्र श्री रामललाको स्नान करवा, शृङ्गारकर, पलना पर पौढ़ा, अपने कुलदेवताके पूजन निमित्त पक्वान्न तयारकर, नैवेद्य चढ़ा, पाकशालामें गई, फिर वहांसे लौटकर कुलदेवताके समीप आई तो क्या देखती है कि, रामलला उन भाति २ के पक्वानों को भोग लगारहे हैं । तब माताके हृदयमें यह भय हुआ कि बच्चेने देवताके भोगको जूठा करादिया है ऐसे डरतीहुई जो पलनाके समीप गई, तो वहा बालकको घोर निद्रामें सोते पाया, फिर जब नैवेद्यके समीप आई तो बालकको खातेहुए देखा, फिर पलनाके समीप गई, तो बालक को सोया पाया, फिर लौटकर नैवेद्यके समीप गई तो खाते देखा । एवंप्रकार बार २ यहां वहां जाती है दोनों स्थानमें रामललाको देखती है । ऐसे देखकर माता बहुत डरी, और कापनेलगी, अधीर होकर विचारनेलगी कि, मेरी मति कदाचित् भोरी होगई है, मैं कुछ पागलसी होगई हूं, वा कुछ और वार्त्ता है । जब बहुत व्याकुल हुई और रामलला

ने देखा कि, अब मैया बहुत घबड़ानीसी होगई है, तब मुसकराकर हँसदिया, और अपने मुखके भीतर अपना विराट्स्वरूप देखलाया, जिसके रोम २ में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड लटके हुएहैं। अनेक सूर्य, चन्द्रमा, अनगिनत शिव ब्रह्मा, अनगिनत पर्वत, नदी, समुद्र, पृथिवी, वन, काल कर्म, गुण, दोष, स्वभाव, माया, जीव, भक्ति इत्यादि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको देखा। एवम् प्रकार सम्पूर्ण विराड्को मुखमें देखते ही ऐसी घबड़ाई कि कुछ बोल न सकी, आँख बन्दकर बैठगई, और रामललाके चरणोंमें सिर नवाया। जब लालाने यह देखा कि, अब मैया बहुतही व्याकुल होगई तब अपना पूर्व बालक रूप धारण करलिया। मारे भयके कौशल्या स्तुति नहीं करसकी, क्योंकि जी में यह भय हुआ कि मैंने यह क्या अन्धेर किया कि जगत्पिताको पुत्र करके माना, इसी भयसे स्तुति करनेमें घबराई, तब् रघुनन्दनलालने माताको बहुत प्रकारसे समझाया कि हे मैया! यह लीला मैंने तुझको विराड्का दर्शन करानेके लिये की सो तू किसी दूसरेसे नहीं कहना! क्योंकि मैं केवल तेरी मनोकामना पूर्ण करनेके लिये, देवताओंका बन्धन छुड़ानेके लिये तथा संसारके पुरुषोंकी मर्यादा अर्थात् मानवधर्मका उपदेश करनेके लिये गुप्तरूपसे अवतार लेकर प्रगट हुआ हूं। यदि सर्वसाधारण मुझे जानजावेंगे कि, यह साक्षात् परब्रह्म का अवतार है तो मेरी मानुषी लीला सम्पादन करनेमें नाना कारकी विडंबना होजावेगी। तू मेरी माता है तेरेलिये तो मै प्रगट हुआही हूं, इसलिये तुझको अपने अद्भुत विराड्रूपका दर्शन कराया। अन्य दूसरे इसके अधिकारी नहीं हैं, इसलिये तू इस विषयको गुप्त रखना। इतनी बात सुन मैयाने कहा कि हे प्रभु! अबसे आपकी माया मुझपर न व्यापे, यही मैं बरदान मागती हूं।

इसी प्रकार नन्द नन्दन श्री कृष्णचन्द्रने भी अपनी माता यशोदा को अपने मुंहमें विराड् स्वरूपका दर्शन कराया जिसके विषय श्री व्यासदेव श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अध्याय ८ में कहते हैं।

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्यागोपबालकाः ।
कृष्णोमृदंभक्षितवानितिमात्रेन्यवेदयन् ॥ श्लोक ३२

अर्थात् एकबार क्रीडा करते २ जब श्री कृष्णभगवान्की यह इच्छा हुई कि यशोदा मैया मेरी बालक्रीड़ामे मग्न होकर मेरे यथार्थ स्वरूपको भूलगई है, इसलिये मै उसे अपनी विराड् मूर्त्तिका दर्शन देकर अपने स्वरूपका स्मरण करादूं । इतना विचार आपने बालकोंको समान क्रीड़ा देखलानेके तात्पर्यसे खेलते २ मिट्टीका खण्ड मुखमें डाललिया । यह देखकर श्री बलरामजीके साथ २ सब ग्वाल बालोंने जाकर यशोदा मैया से कहदिया कि, कृष्णने मिट्टी खाई है । जब मैया दौड़कर कृष्णके समीप आई और धमकाकर बोली कि, तूने मिट्टी क्यों खाई ? तब श्रीकृष्णभगवानने उत्तर दिया— श्री भगवानुवाच

नाहंभक्षितवानम्ब ! सर्वेमिथ्याभिशंसिनः ।
यदिसत्यगिरस्तर्हि समक्षंपश्यमेमुखं ॥

अर्थात् श्यामसुन्दरने मैयासे कुछ भय खाकर कुछ मुंह बनाकर जैसे बच्चे बोलते है बोले कि, नहीं २ हे मैया ! मैंने तो मिट्टी नहीं खाई है ये सब झूठ बोलते है, यदि इनका कहना तू सच मानती है तो कहैतो मै अपना मुंह खोलकर देखादूं , तू अपने समक्षमें मेरा मुंह देखले । तब मैया बोली—

यद्येवंतर्हिव्यादेहीत्युक्तःसभगवान्हरिः ।
व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥

यदि ऐसा है तो अपना मुंह खोल, इतना सुनकर हरिभगवान्ने अपने यथार्थ ऐश्वर्यको गुप्त कर मानुषी बालकके समान मुंह खोलकर कहा, मैया ! ता ! ता !! ता !!! एवम् प्रकार मुंह खोलनेके साथ आपके मुंहमें मैया क्या देखती है सो सुनिये !

सातत्रददृशेविश्वं जगत्स्थास्नुचखंदिशः ।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥

ज्योतिश्चक्रंजलंतेजो नभःस्वर्वियदेवच ।
वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनोमात्रागुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥

अर्थात् यशोदा मैयाने कृष्ण भगवान्के मुंहके भीतर सम्पूर्ण विश्व को, स्थावर, जंगमको, आकाशको, दशो दिशाओंको, पर्वत, द्वीप, सागर के साथ सम्पूर्ण भूगोलको, वायु अग्नि, चन्द्रमा, तारागण, अश्वनी, भरनी इत्यादि नक्षत्रोंको, जल, तेज, नभ, स्वर्गलोक और भी बाहर आकाशमें जितने पदार्थ है सबको, फिर इन्द्रियोंके देवता, मन, पचतन्मात्रा रज, सत्व, तम, तीनों गुणोंको देखा । जैसे श्री रामललाको देख कौशल्या व्याकुल हो आख बन्द कर बैठगई थी, वैसीही यशोदाकी भी दशा हुई, तव श्यामसुन्दर मुसकराकर अपनी मैयाको सन्तोष देनेके लिये पूर्ववत् मानुषी बालक होगये ।

अब मै उन बुद्धिमानोंसे, जो राम कृष्ण को अपने समान समझते है, यह पूछता हू कि, क्या आपलोगोंने भी कभी बचपनमें मुंह खोलकर विराड्रूप देखलाया था । कदापि नहीं ! कदापि नहीं !! । आपनेतो जब२ अपनी २ मैयाके सामने मुह खोला होगा, तब २ मुंहमें थूक, लार, कफ को छोड़ और क्या देखलाया होगा ? आपही नहीं हमलोग जितने मनुष्य है सबकी यही दशा बचपनमे थी कि, जब मैयाके सामने मुंह फाड़ते थे तब थूक, कफ, और लार, ही देखपड़ता था । ब्रह्माण्डको कौन पूछे ग्रामका एक महल्ला भी नहीं देखासके । महल्लाको कौन कहे महल्ला का एक घर भी नहीं देखा सके । फिर हठात् वार २ यह कहना कि, जैसे हम वैसे ही राम कृष्ण भी मनुष्य थे, कितनी बडी भूलकी बात है ग्राम वासी एक कहावत कहा करते हैं कि— घोंघा अपनी कीन्ह बड़ाई हमहुं शंखके छोटे भाई। एक दिन लोढा कीन्ह बड़ाई, हमहूं शिलानाथके भाई ।

प्यारे सभासदो ! इन इतिहासों और चरित्रोंके वर्णन करनेसे मेरा तात्पर्य यही है कि, राम कृष्ण इत्यादि अवतारोके जन्म, कर्म हमारे आप

के ऐसे नहीं थे। इतना तो सब छोटे बड़े कह सकते हैं कि, देखनेमात्र ये मनुष्यके स्वरूपसे देखपड़ते थे, पर ये मनुष्यशरीरधारी नहीं थे। जैसे दर्पणमें अपना सारा मुख और सारा शरीर दीखपड़ता है, पर वहा शरीर नहीं है। आप हज़ार अपनी बुद्धि अथवा विद्याका बल लगाइये पर ऐसा होही नहीं सकता कि, आप दर्पणके सामने खड़े हों और आपका शरीर नहीं दीखपड़े, पर क्या आप यह कह सकते हैं कि, उस दर्पणमें जो शरीर है वह पाचभौतिक है, जैसा आपका शरीर है, वैसाही वह भी है, कदापि नहीं। आप यदि बुद्धिमान हैं तो अवश्य विचारकी दृष्टिसे अनुभव कर समझजावेंगे कि, दर्पणवाला शरीर निर्मल, निराकार, निर्विकार, सूक्ष्म, कफ, पित्त, वायु, इत्यादि मलोंसे रहित शुद्ध शरीर है। उसमें एक रत्ती मात्र भी रुधिर वा मांस नहीं है, न वह खाता है, न पीता है, पर देखने मात्र ठीक २ चैतन्य मनुष्यका रूप है। इसीप्रकार वह महाप्रभु अपनी मायाका दर्पण हमलोगोंके नेत्रोके सामने रखकर देखने मात्र मनुष्य आकृतिमें देखाजाता है।

बहुतेरे विद्यान्ध कहपड़ेंगे कि, श्रीमद्भागवत औ रामायण इत्यादि ग्रन्थोंमें ये सब बातें गप्प मारीहुई हैं इसलिये ये ग्रंथ मानने योग्य नहीं हैं, यदि तुम वेदसे अवतारोंको सिद्ध करो तो हम मानजावें, इसलिये अब मैं वेदोंका प्रमाण देकर अवतारको सिद्ध करता हूं। सुनिये! शुक्ल यजुर्वेद रुद्राध्याय मंत्र २०

ॐ नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वानाम्पतये नमोनमस्सहमानाय निव्याधिने आव्याधिनीनाम्पतये नमोनमोनिषङ्गिणे ककुभायस्तेनानाम्पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानाम्पतयेनमः।

"नमः कृत्स्नायतयाधावते" अर्थात् कृत्स्न" जो कुची (-बगल)

तिस कुत्सितक " आयत " खींचाहुआ है धनुष जिसका, ऐसे कुत्सितक धनुषको खींचकर राक्षसोंके पीछे (धावते) बहुत वेगसे धावनेवाले तथा " सत्वानांपतये " भक्तजनोंके पति श्री रामरूपके लिये नमस्कार होवे। फिर " सहमानाय " भक्तोंके अपराधोंको क्षमा करनेवाले अथवा असुरों को जीतनेवाले " निव्याधिने " धर्मके विरोधियोंको अर्थात् कंस शिशु-पाल इत्यादिको मारनेवाले, तथा " अव्याधिनीनांपतये " चारों ओरसे घेरकर रणमें मारनेवाले शूरवीरोंके पति श्री हलधर अवतारके लिये बारं बार नमस्कार होवे। " निषङ्गिणे " खड्गके धारणकरनेवाले " कुकुभा-य " प्रधानरूपके लिये अर्थात् खड्गधारियोंमें प्रधानरूप श्री कल्किअव तारकेलिये तथा " स्तेनानांपतये " गोपियोंके घरसे दूध, दधि, औ मा-खन चुरानेवाले ग्वालबालोंकेपति श्रीकृष्णरूपके लिये तथा " निचेरवे" क्षत्रि-योंके मध्य चलनेवाले तथा " परिचराय " पृथिवीके ऊपर २ चलनेवाले श्री परशुरामावतारके लिये नमस्कार होवे " अरण्यानाम्पतये " अरण्य में निवास करनेवाले जीवोंके रक्षक श्री कपिलअवतारके लिये नमस्कार होवे। लीजिये और सुनिये इसी रुद्राध्यायमें दिखलाता हूं।

ॐ नमइषुमद्भ्योधन्वायिभ्यश्चवोनमः (मंत्र २२में देखो)

अर्थात् हस्तकमलोंमें बाण औ धनुष धारण करनेवाले रामरूपके लिये नमस्कार होवे। और भी वेदहीका प्रमाण लीजिये इसी यजुर्वेद रुद्राध्याय के मंत्र ४४ में देखिये।

ॐ नमोव्रज्यायच गोष्ठ्यायच नमः ०। (मंत्र ४४)

अर्थात् " व्रज्याय " व्रजमें निवास करनेवाले तथा " गोष्ठ्याय " गोशालारूप गोलोकमे निवासकरनेवाले श्यामसुन्दरकोलिये नमस्कार होवे। अब चलिये औरभी अवतारोंका प्रमाण ऋग्वेदसे सुनिये—

ॐ यस्य त्रीपूर्णामधुना पदान्यक्षीयमाणा स्व-धयामदन्ति । य ऊ त्रिधातु पृथिवीमुतद्यामेको दाधा-र भुवनानि विश्वा ऋग्वेद मं० १. अध्याय २१ सू०१५४ म०४

इस मंत्रमें वामनावतार अर्थात् त्रिविक्रम अवतारको ऋग्वेद प्रतिपादन करता है । पहले हमारे महर्षि सायणाचार्यने जो भाष्य किया है उसको सुनलीजिये— सा० भा०

यस्य विष्णोर्मधुना मधुरेण दिव्येनामृतेन पूर्णा पूर्णानि त्रीणि पदानि पादप्रक्षेपणान्यक्षीयमाणा क्षीयमाणानि स्वधयान्नेन मदन्ति मादयन्ति तदाश्रितजनान् । य उ य एव पृथिवीं प्रख्यातां भूमिं द्यामुत द्योतनात्मकमन्तरिक्षं च विश्वा भुवनानि सर्वाणि भूतजातानि चतुर्दशलोकांश्च । यद्वा पृथिवी शब्देनाधोवर्त्तिन्यतलवितलादि सप्तभुवनान्युपात्तानि । द्युशब्देन तदवान्तररूपाणि भूरादिसप्तभुवनानि । एवं चतुर्दशलोकान् विश्वा भुवनानि सर्वाण्यपितत्रस्थानि भूतजातानि त्रिधातु " त्रयाणां धातूनां समाहारस्त्रिधातु " पृथिव्यप्तेजोरूपधातुत्रय विशिष्टं यथा भवति तथा दाधार धृतवानित्यर्थः ।

जिसका तात्पर्य यह है कि जब विष्णु भगवान त्रिविक्रम (वामन) अवतार लेकर देवताओंके दुःख दूर करनेके तात्पर्यसे ब्राह्मणके स्वरूपसे राजाबलिके द्वार पर भिक्षा मागनेके मिससे पहुंचे, और तीन पग पृथिवी दान मांगी, उस समय महाराज बलिने दृढ़ संकल्प किया कि, मैं दूंगा तब भगवानने तीन पैर फैलाकर तीनो लोकोंको मापलिया । इसी अवतार की स्तुति ऋग्वेद यों करता है कि— जिसके मधुर दिव्य अमृतसे भरेहुए चरणारविन्द पूर्ण तीनवार प्रक्षेपण कियेजाने पर " अक्षीयमाणा " सर्वत्र व्यापकर स्वधा* रूप अन्न से अपने आश्रित जनोंको " मादयन्ति "‡ प्रसन्न करते हैं, अर्थात् अमर और अभय करते हैं तथा अपने

* स्वधा—पितृणामन्नम् । यथाभुंक्तेत्वं यथात्रिस्वधाख्यातद्वत् स्वाहा हव्यभोक्ता स्वयं देवी ॥ (ऋग्वेद देवीसूक्तम्)

‡ मद (इ. ऽ. स्वप्ने. जाड्ये. मदे. मोदे. स्तुतौ गतौ) (कविकल्पद्रुमः) मन्दतेजनः स्वपिति, जडोभवति, माद्यते, मोदते, स्तौति गच्छति वा इत्यर्थः । " दुर्गादास : "

भक्तोंको प्रेमभक्ति रूपी स्वधा (मधुर रस) का भोजन कराते हैं, तिन च-रणोंने इस त्रिधारात्मक पृथिवी लोकको और धुलोकको " दाधार " धारण करलिया अर्थात् एक पगसे सम्पूर्ण पृथिवी, और दूसरे पगसे अतल वितल इत्यादि सातों नीचेके लोकोंको, तथा तीसरे पगसे भुवर्लोक स्वर्लोक इत्यादि ऊपरके लोकोंको नापलिया। मुख्य तात्पर्य इसमंत्रका यह है कि, विष्णुभगवान्ने वामनका अवतार लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको तीनपगसे मापलिया ऐसे विष्णुभगवान्की जय हो।

यदि किसी प्राणी को यह शंका हो कि, इस सूक्तमें अवतारोंका प्रकरण चलरहा है वा नहीं ? क्योंकि केवल एकही मंत्रसे तो अवतारकी सिद्धि नहीं होसकती ? तो लीजिये मैं आपको यह दिखलाता हूं कि, इस सूक्त में प्रायः विष्णुके अवतारोंहिका प्रसंग चलरहा है। देखिये इस मंत्रसे पूर्व भी इसी सूक्तके दूसरे मंत्रके पिछले वाक्यमें लिखा है—

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्तिभुवनानि-विश्वा ॥ ऋग्वेद मं० १ अ० २१ सू० १५४ मंत्र २

यह पिछले मंत्रका आधा पद है, जिसका भाष्यभी सायणने यों किया है कि— यस्यविष्णोरुरुषु विस्तीर्णेषु त्रिसंख्याकेषु त्रिविक्रमणेषु पादप्रक्षेपेषु विश्वा सर्वाणि भुवनानि भूतजातान्याश्रित्य निवसन्ति स विष्णुः स्तूयते।

अर्थात् जिस विष्णुके तीनवार पादप्रक्षेपण करनेसे अर्थात् फैलानेमें सम्पूर्ण विश्वमात्र अपने सब प्राणियोंके साथ प्रवेश करजाता है ऐसे त्रि-विक्रमावतार विष्णु इन तीनों लोकमें स्तुति कियेजाने योग्य हैं, अर्थात् स्तुति कियेजाते हैं।

यदि शंका हो कि, इस सूक्तमें त्रिविक्रमावतार (वामन) का ही व-र्णन है, अथवा किसी दूसरे अवतारका भी वर्णन है तो इसी मंत्रका पहला वाक्य देखलो जहां नरसिंह भगवान्के अवतारका भी वर्णन है।

प्रतद्विष्णुः स्तवतेवीर्येण मृगोनभीमः कुचरो-गिरिष्ठाः। ऋ० मं० १ अ० २१ सू० १५४. मं० २.।

अर्थात् वह विष्णु भगवान् अपने पराक्रम और महत्वसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड द्वारा स्तुति कियेजाते हैं। क्यों स्तुति कियेजाते हैं? तो अपने भक्तों के दुखोंके निवारण करनेमें समर्थ है, कैसे? जैसे प्रह्लाद भक्तके प्राण बचानेके लिये "मृगोन सिंहादिरिव" सिंहके समान रूपको धारण किया वह रूप कैसा है तो "भीमः" हिरण्यकश्यपके प्राणके शोषण करनेके लिये अत्यन्त भयङ्कर है, फिर वह विष्णु कैसे हैं तो अपने भक्तोंके दुखके निवारणार्थ (कुचरः) शत्रुवधादि कुत्सितकर्मके कर्त्ता है (अथवा "कुषु" सर्वासु भूमिषु लोकत्रये संचारीवा) अर्थात् सम्पूर्ण पृथिवीमें, वा तीनों लोकमें विचरनेवाले और विहार करनेवाले है। फिर वह विष्णु कैसे हैं? "गिरिष्ठा" गिरिवदुच्छ्रित लोकस्थायी, अर्थात् पर्वतोंके समान ऊंचे लोकोंमें निवास करनेवाले है अथवा सुमेरु पर्वतके शृङ्ग पर जो वैकुण्ठ तहां बैकुण्ठनाथ होकर निवास करनेवाले हैं, वा कैलाश पर्वत पर शिवरूप होकर निवास करनेवाले हैं, अथवा ("गिरि" मंत्रादि रूपायां वाचि सर्वदा वर्तमानः) अर्थात् वेदके मंत्ररूप वचनमें सदा वर्त्तमान अर्थात् वेदमंत्रों द्वारा आवाहन कियेजाने पर झट प्राप्त होनेवाले। ऐसे विष्णु भगवान "स्तूयते" अपने महत्त्वसे स्तुति कियेजाने योग्य हैं।

प्यारे श्रोतृगण! यह सम्पूर्ण सूक्त विष्णुभगवान्की स्तुतिमे कथन कियाहुआ है सो देखलेना। यही विष्णु भक्तोंके निमित्त वार २ भिन्न २ रूपोंमें अवतार लिया करते है।

वहुतेरे हठी पुरुष ऐसाभी कहबैठेंगे कि, ऋग्वेदने भूलकर धोखेसे इस सूक्तमें कुछ कहदिया है, यदि इससे भिन्न अन्य किसी सूक्तमें इनही अवतारोंमें किसी अवतारका वर्णन देखादो तो मानलें कि वेदोंमें भी अवतारोंका वर्णन है।

लीजिये मैं ऋग्वेदके इसी प्रथम मण्डलके अध्याय ५ सूक्त २२ मंत्र १७ में इसी वामनावतार अर्थात् त्रिविक्रमावतारको देखलाता हूं।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्। स मूढमस्य पांसुरे।

इस मंत्रका भाष्य सायणाचार्य यों करते हैं—

विष्णुस्त्रिविक्रमावतारधारीदं प्रतीयमानं सर्वं जगदुद्दिश्य विचक्रमे। विशेषेण क्रमणं कृतवान्। तदा त्रेधा त्रिभिः प्रकारैः पदं निदधे। स्वकीयं पादं प्रक्षिप्तवान्। अस्य विष्णोः पांसुरे धूलियुक्ते पादस्थाने समूढमिदं सर्वं जगत् सम्यगन्तर्भूतम्॥

अर्थात् जिस विष्णुभगवान्ने त्रिविक्रमावतार (वामनरूप) धारण कर तीनवार पादोंके प्रक्षेपण करनेसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको नापलिया तिस विष्णुके चरणारविन्दकी धूलिमें यह (सं ऊढम्) सम्यक्प्रकारसे चलने वाला जगत् वर्त्तमान है॥

यहां "इदं" ऐसा पद कहनेसे वेदका तात्पर्य यह है कि पृथिवी, चन्द्र, तारागण जितने लोक लोकान्तर हैं सब अपने २ केन्द्र पर घूमते हुए आगेको बढते हैं और एवम्प्रकार बढ़तेहुए अपने नियतकालपर वहीं ही पहुचजाते हैं जहांसे चलते हैं। इस मंत्रसे पृथिवीका चलना सिद्ध होता है। अंग्रेजी पढ़नेवाले ऐसा न समझें कि, पृथिवीके घूमने वा चलनेका वर्णन वेदोंमें नहीं है।

अब मैं आपको इसी ऋग्वेदके मंत्रसे यह सिद्ध करदेताहूं कि, श्यामसुन्दर श्री कृष्णचन्द्रके अवतारकाभी वर्णन है, जहां वेदने यह देखलाया है कि आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रका मानुषी शरीर नहींथा और न मानुषी गर्भोंके समान वे गर्भमें थे सुनिये—

ॐ कृष्णं त एम रुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम्। यदप्रवीता दधतेह गर्भं सद्यश्चिज्जातो-

भवसीदुद्दूतः। ऋ० मं० ४ अ० १ सू० ७ मं० ६।

अर्थात् हे अग्निदेव! "ते कृष्णं एम" तेरे कृष्णस्वरूप अर्थात् कृष्णावतारके हमलोग शरण प्राप्त हों। वह तेरा कृष्णरूप कैसा है "रुशतः *" पुरोभाः ‡) जिसके परम प्रकाशमय सुन्दर शरीरकी शोभा अर्थात् चतुर्भुजरूप ज्योतिमय (जैसा कि, मैं पहले कहआया हूं) भक्तों के आगे अथवा वसुदेव देवकीके आगे शोभायमान होती है और "चरिष्णुः† " जिसका सर्वत्र चलनेवाला तेज शरीरधारियोके शरीरमें सुन्दरताईका मुख्य कारण है, अर्थात् जिसका तेजही रूपवान पुरुषोंमे सुन्दरताई होकर भासता है, फिर आप कैसे हैं "यदप्रवीता" जिसको नहीं यथार्थ गर्भवाली अथवा बेड़ीमे बाधेजानेके कारण नहीं चलनेवाली देवकी ने "दध्रतेहगर्भं" "त्वज्जननहेतुं गर्भंधत्ते" आपके प्रगट होनेके लिये गर्भधारण करती है, अर्थात् अगर्भा होकर भी गर्भ धारण करती है। ऐसा कहनेसे ऋग्वेदका तात्पर्य यह है कि, सचमुच देवकीके गर्भमें कृष्णचन्द्र नहीं थे, केवल संसारके भरमानेके लिये और गुप्त रूपसे प्रगट होनेके लिये देवकीके गर्भमें केवल वायुमात्रका प्रवेश था, अर्थात् मिथ्या गर्भ था। इसलिये वेदने "अप्रवीता" + अर्थात् नहीं है गर्भ

---

* रुशतः—रोचिष्णुवर्णः।

‡ पुरोभाः — "भाः" तव सम्बन्धिनी दीप्तिः "पुरः" पुरस्ताद् भवति। (सायणाचार्यः)

† चरिष्णुः०— संचरणशीलमर्चिस्त्वदीयं तेजोवपुषां वपुष्मतां रूपवतां एकस्मिन्मुख्यमेव भवति (सायणाचार्यः)

+ अप्रवीता—अगर्भा, वा अनुपगता। वीगतिकान्त्यादिषु। अत्र प्रजननार्थ प्रशब्दाद्वाक्यशेषाच्च प्रजातादि गतसाराभवति नोपभोगमात्रेण, तस्मादप्रवीता अजातेति "हरिस्वामी" (देखोवाचस्पति कोष)

जिसको ऐसा कहा । यदि शंका होकि, मिथ्या गर्भ नहीं होता, तो डाक्टरोंसे जाकर पूछलीजिये कि, वे लोग भी मिथ्या गर्भको (False pregnancy) कहते हैं । प्रायः देखाजाता है कि स्त्रिया गर्भवती देखपड़ती हैं, पर अन्तमें उस गर्भ । केवल वायुमात्र निकलजाता है बच्चा नहीं होता । फिर " सद्यश्चिज्जातोभवसीदूतः " अर्थात् आप शीघ्र उत्पन्न होकर "दूत" होजाते हो। ऐसे तुम्हारे रूपके बार २ हमलोग शरण होवें । यहां दूतः * कहनेके दो मुख्य तात्पर्य हैं, प्रथम यह कि तुम जन्म लेनेके साथ देवकीको छोड़ चलेजाते हो । दूसरा यह कि शीघ्र प्रकट होकर नाना प्रकारके अनर्थोंका निवारण करते हो । वे कौनसे अनर्थ हैं कि, कंसने वसुदेव देवकी को बांधरखा है, जहां तहां दुष्ट राक्षसों को छोटे २ बच्चोंके मारडालनेकी आज्ञा दी है । पूजा, पाठ, जप, तप इत्यादि धर्मके कार्योंको रोक रखा है इत्यादि २ । इनही सब अनर्थोंके निवारण करनेवाले हो । ऋग्वेदने दूत शब्द कहकर यह देखादिया कि, श्यामसुन्दर श्री कृष्णचन्द्रके अवतार लेतेही पहले तो माता पिताके पैरों की बेड़ी आपसे आप खुलगई, और तबहीसे राक्षसोंका नाश होना आरम्भ होगया ।

प्यारे सज्जनो ! विचारिये तो सही कि, ऋग्वेद ने कितनी स्वच्छताके साथ कृष्णावतारका वर्णन किया है । अब जो प्राणी यों कहा करते हैं कि, वेदोंमें अवतार नहीं है उनको लज्जाके सागरमें डूब मरना चाहिये ।

यजुर्वेद और ऋग्वेदके प्रमाण तो आप सुनचुके, अब सामवेदका

---

* दूतः— जवतेर्वा, द्रवतेर्वा, वारयतेर्वा ।
" जवतेर्वा गत्यर्थस्य " स हि गच्छति
" द्रवतेर्वा गत्यर्थस्यैव "
" वारयतेर्वा " वारयत्यनर्थान् (देखो निरुक्त अध्याय ५ खण्ड १ नैगम काण्ड)

प्रमाण सुनिये ! सामवेदके उत्तरार्चिक अध्याय १५ खण्ड २ सू० १ में केवल ईश्वरके अवतार और महत्त्व हीका वर्णन है, इस सूक्तमे केवल तीन मंत्र हैं । वे तीन मंत्र वेदने उसी समय उच्चारण किये है, जब श्री रामचन्द्रजी रावणको विध्वंस कर अयोध्यामें लौट राजगद्दी पर विराजमान हुए हैं, और सब देवतालोग स्तुति करने आये हैं । उस समय वेद ने भी विप्ररूप धारण कर स्तुति की है । उसी समय सामवेदने जिन मंत्रोंसे राजा रामचन्द्रजीको " राजन् " ऐसा शब्द प्रयोग कर उनके महत्त्व और ईश्वरत्वको गानकर स्तुति की है, वे येही तीन मंत्र हैं जो आपको सुनाता हूं ।

ॐ इनो *राजन्नरतिः समिद्धोरौद्रो ० ० ०

ॐ कृष्णांयदेनीमभिवर्चसा ० ० ०

ॐ भद्रोभद्रयासचमानआगात ० ० ० ० ०

इस वेदके अन्य स्थानमे भी बहुतेरे मंत्र अवतारोंके प्रतिपादन करने वाले हैं, पर यहां इन तीन मंत्रोंमें विशेष कर ईश्वरके रामावतारकी स्तुति है । अबमैं इन तीनोंका अर्थ विलग २ आपको सुनाता हूं सो सुनिये—

ॐ इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमां अदर्शि चिकिद्भिभाति भासा बृहता सिक्नीमेति रूशती मपाजन् ॥ १ ॥ सामवेद उत्तरार्चिक अध्या० १५ खं० २ सू० १ मं० १

हे सर्वत्र शोभायमान होनेवाले " राजन् " श्रीरामचन्द्रजी ! आप कैसे हो ? तो " इनः " सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके ईश्वर हो, फिर आप कैसे हो, " अरतिः " वीतराग हो । फिर " समिद्धः ' सर्वत्र प्रकाश करनेवाले

---

* इन-राष्ट्री, अर्यः, नियुत्वान्, इन इन इति चत्वारीश्वरनामानि । निरुक्त नैघन्टुक काण्डे अ० २ खं० ११ पा० ७

हो। फिर " रौद्र " रावण इत्यादि राक्षसोंको अथवा दुष्टोंको भय देनेवाले हो । सो आप केवल सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको " दक्षाय " ज्ञान, दान देनेके लिये "सुषुमां " अपने सुन्दर स्वरूपको अर्थात् किरीट, मुकुट, कुण्डल, पीताम्बर इत्यादिको धारणकर " अदर्शि " सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके जीवोंको दर्शन देते हो, फिर आप कैसे हो कि, इस सृष्टिको उत्पन्न कर "बृहताभासा चिकिद्विभाति " " चिकित् " सबों पर विदित अपने बहुत बड़े तेजसे सर्वत्र शोभायमान होते हो, अर्थात् हज़ार चतुर्युगीकी सृष्टि में आप संदीप्त रहते हो, प्रकाशमान रहते हो, फिर जब प्रलयकी इच्छा होती है तब आप अपने " रुशतीम * " प्रकाशमान स्वरूपको " अपाजन " अपगम करते हुए अर्थात् समेटते हुए "असिक्नीम † " महाप्रलयकी रात्रि में " एति " प्रवेश करजाते हो, अर्थात् हज़ार चतुर्युगीकी रात्रीमें आप अपने तेजको अपने ही स्वरूपमें संहार कर गुप्त होजाते हो ।

अब फिर इसी अर्थको दूसरे मंत्रमें सामवेद यों कहरहा है—

ॐ कृष्णां यदेनीमभिवर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्ज्जाम् । ऊर्द्ध्वभानुꣳ सूर्यस्य स्तभायान्दिवो वसुभिररतिर्विभाति ॥ २ ॥

" वर्पसा " हे भगवन् आप इस अपने सुन्दर स्वरूपसे " एनीम " चलनेवाली " कृष्णां ‡ " रात्रिमें " अभिभूत " व्याप जाते हो, अर्थात्

---

* रुशत्– रुशदिति वर्णनाम रोचतेर्ज्वलति कर्मणः । (देखो निरुक्त अ० ६ खं० १४ पं० ९२)

† असिक्नीम्–रात्री नामानि । श्यावी, क्षपा, शर्वरी, अक्तुः, ऊर्म्या, राम्या, यम्या, नम्या, दोषा, नक्ता, तमः रजः असिक्नी इत्यादि २ निरुक्त नैघण्टुक काण्डे अ० २ खं० १८ प० १ । ७

‡ कृष्णा– कृष्णवर्णा रात्रिः । (निरुक्त नैघंटुक काण्ड अ० २ खं० २०)

प्रलयकी रात्रिमें भी आप व्यापक रहते हौ, फिर दूसरी सृष्टि करनेकी जब इच्छा होती है तब फिर अपने इसरूपसे " योषांजनयन् " अपनी माया को उत्पन्न करते हुए " बृहतःपितुर्ज्जाम् " पितामह ब्रह्माको उसी मायासे उत्पन्न करते हौ, पश्चात् " ऊर्ध्वं भानुंस्तभायन् " आकाशमें बहुत ऊंचे स्थान पर भानुको स्थिर करते हौ, तब उन " सूर्यस्यदिवोवसुभिः सूर्यकी प्रकाशमान किरणोंसे " विभाति " यह आपका स्वरूप भासता है। यहां सूर्यका नाम लेकर सामवेदने यह भाव प्रकट किया कि आप सूर्यवंशी हौ। फिर आप कैसे भासते हौ तो " अरतिः " अपनी मायाकृत सृष्टिसे अलग, अर्थात् यद्यपि आप अपनेही रूपसे रचना औ प्रलय करते रहते हौ, पर आप सर्व कर्मोंसे निर्लेप हौ, अर्थात् प्रलयके समय नाश अर्थात् कुत्सित कर्म तथा सृष्टिके समय रचना वा पालन इत्यादि शोभन कर्म आपको बाधा नहीं करते, तथा आप अपनी मायाके साथ निर्लेप होकर भासते हौ।

अब सामवेद अन्तमें इस तीसरे मंत्रको कहकर स्तुतिकी समाप्ति करता है, और इसी मंत्रमें संपूर्ण रामावतार का संक्षिप्त वृत्तान्त कह स्तुति को समाप्त करता है।

ॐ भद्रो भद्रयासचमान आगात् स्वसारञ्जारो अभ्येति पश्चात्। सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णै रभिराममस्थात्॥ ३॥

अर्थात् इस प्रकारका जो आपका स्वरूप है। वह जब " भद्र " रामरूप होकर " भद्रया " सचमान * आगात् " श्री जानकीजीके साथ प्रकट होता है, तब " जारः " रावण अपनी " स्वसारं † " भगिनी जा-

---

* सचमान सचा सहेत्यर्थः—निरुक्त अ० ५ खं० ५ प० ३०

† " स्वसारं " रावणकी भगिनी जानकी है इसका कारण यह है कि रावण पुलस्त ऋषिका सन्तान है और जानकीभी ऋषिकी ही पुत्री है

नकीको " अभ्येति " हठ कर लेजाता है, तत्पश्चात् " अग्निः " क्रो-ध रूप अग्निसे भराहुआ रावण " वितिष्ठन् " श्री रामके सन्मुख आ युद्धमें माराजाकर " उशद्भिर्वर्णैः सुमकेतुर्घुभिः " अपन उज्ज्वल वर्ण परम प्रसिद्ध ज्योतिसे " रामम् " श्री रामके शरीरमें " अभ्यस्थात् " जा स्थिर होजाता है, अर्थात् रामरूपमें जा मिलता है। तात्पर्य कहने का यह है कि रावणको अति दीन जानकर रघुनाथ अपने स्वरूपमें उस की आत्मज्योतिको मिलालेते है, इसी विषयको श्री गोस्वामी तुलसी-दासजी अपनी रामायणमें यों कहते है।

तासुतेज समान प्रभुआनन, हर्षे देखि शंभु चतुरानन।

प्यारे श्रोताओ! मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तीनों वेदोंसे प्रमाण देकर राम, कृष्ण, नरसिंह, वामन इत्यादि अवतारोंका होना सिद्ध करदिया। इन प्रमाणोंसे बुद्धिमान अवश्य समझ जावेंगे कि, वेदोंमें अ-वतारोंका वर्णन है। मुझे अधिक प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है। वेद बहुतबड़ा ग्रंथ है, जिसमें एकलक्षऋचायें भरीहैं, यदि मै सबप्रमाणों का देना आरम्भ करूं तो व्याख्यान समाप्त ही नहीं होगा, इसलिये प्रत्येक वेदोंसे दो २ तीन २ मंत्रोंके प्रमाण देकर अपने सभासदोंको निश्चय कराता हूं कि, जैसे हाडीमें एक चावलके टटोलनेसे बुद्धिमान समझजाता है कि, सारी हाडीका चावल पकगया, और जो मूर्ख है वह सारी हाडी के सब चावलोंको टटोल २ कर गदा करदेता है वा गीला करदेता है, उसकी समझमें कुछ नहीं आता कि चावल पकगया वा कच्चा है। इसी प्रकार जो बुद्धिमान हैं वे दोही एक मंत्रके सुननेसे समझ जावेंगे कि वेदों में अवतारोंका वर्णन है और जो मूर्ख निरक्षर भट्टाचार्य हैं उनके लिये तो सारा वेद कहजाना भी निरर्थक है।

प्यारे सभासदो! अब बहुतेरे प्राणी यह शंका करबैठेंगे कि, रामा-वतार और कृष्णावतार त्रेता और द्वापरमे हुएहैं, कृष्णावतारको के-बल पाचहजार वर्षोंसे कुछही ऊपर हुआ है, और यह वेद अनादिहै, सो

वेदोंमें अवतारोंका वर्णन कैसे होसकता है ? तो उत्तर इसका यह है कि, इन वेदोंका कर्त्ता स्वयं परमात्मदेव हैं, जो भूत, वर्त्तमान, भविष्यत् (ماضی حال مستقبل) (Past, Present, & Future) तीनों कालोंका वृत्तान्त जाननेवाले है, तीनो कालोकी सृष्टिकी रचना जिसकेकरतलगत है, फ़िर जो स्वयं सृष्टिका कर्त्ता है, और फिर वही वेदका भी कर्त्ता है, तो वेदोंमे तीनों कालकी वार्त्ताओंको क्यों नहीं वर्णन करेगा । जो भारतनिवासी वेदको ईश्वरकृत नहीं मानते उनके लिये नास्तिकोंकी मंडलीमें गोट (صلوات) कराना चाहिये । उनको तो इस व्याख्यानको हाथमें लेना ही व्यर्थ है, क्योंकि " नास्तिको वेदनिन्दकः " जो वेद की निन्दा करता है, अर्थात् ईश्वर कृत नहीं मानता वह नास्तिक है । जब वह वेदहीको नहीं मानता तब उसके लिये दूसरा प्रमाण कहांसे दियाजावे, क्योंकि वेदसे उत्तम कोई दूसरा शब्दप्रमाण होही नहीं सकता यदि यह कहो कि, अनुमानसे अनुभवसे, उपमान इत्यादिसे, उपपत्ति देकर सिद्ध करो तो प्यारे सज्जनो ! जितने प्रमाण हैं सब वेदोंसे निकले है फिर जिस वृक्षकी छायामें बैठना चाहें उसको पहले ही जड़से काट कर फेंकदेवें तो उसकी छाया कैसे मिल सकती है ? कहनेका अभिप्राय यह है कि, अन्य जितने ग्रन्थ है, जितने उपनिषद हैं, सांख्य, मीमांसा इत्यादि दर्शन तथा जितनी स्मृतियां है सब वेदरूप वृक्षकी छाया हैं, जब वेद ही काटकर फेंकदियागया तब उसकी छाया कब ठहर सकती है, इसलिये जो प्राणी वेदही को न माने उसके लिये दूसरा कोई प्रमाण होही नहीं सकता ।

दूसरा उत्तर यहहै कि, मैं पहले कहचुका हूं कि, राम कृष्ण इत्यादि अवतारोका शरीर मानुषी नहीं है, ये केवल देखनेमात्र मनुष्यरूपमें देख पड़ते है, यथार्थमें ये केवल विम्ब मात्र हैं, जैसे दर्पणमें अपना शरीर देखते हैं (देखो पृष्ठ १०६) पर जब तक कोई मुख्य शरीर किसी स्थान में न हो तबतक उसका बिम्ब दर्पणमें नहीं पड़ सकता, सो जिस मुख्य

शरीरके विम्ब ये राम कृष्ण हैं वे मुख्य शरीर साकेतलोक और गो-लोक में निवास करते है, अर्थात् मुख्य रामरूपका निवास साकेतलोक में है, और कृष्णरूपका निवास गोलोकमे है । ये दोनों लोक ब्रह्मलोक से ऊपर ५० कोटि योजनके लगभग अनुमान किये जाते है । (देखो सदाशिव संहिता, तथा ब्रह्मवैवर्त्तपुराण कृष्ण खंड) महाप्रलयमें ब्रह्मलोक तक नाश होजाता है केवल यही दोनों लोक स्थिर रहते हैं । इन दोनों का नाश नहीं होता इस कारण ये दोनों लोक अनादि है । वेद इनसे पीछे है इसलिये इन दोनों लोकके निवासी राम औ कृष्ण दोनोंके मुख्य रूपोंकी स्तुति वेद कर रहा है । येही दोनों स्वरूप भक्तोंके दुखोंके नाश के निमित्त बार २ मायाकृत मनुष्य रूप होकर मृत्युलोकमें प्रकट होते है जब एवम्प्रकार भूलोकमें ये दोनों प्रगट होते हैं तब वही वेद इनके साम-ने आकर जिन मंत्रोंसे इनकी स्तुति साकेतलोक औ गोलोकमें की थी उनही मत्रोंसे फिर इनकी स्तुति करता है । इसमें शंकाका कोई स्थान नहीं है । यदि साकेतलोक औ गोलोक दोनोंलोक नहीं भी मानेजावें और कोई निराकारवादी इन साकार लोकोंको नहीं भी मानें, तथापि वेदमें इन मंत्रोंका होना सिद्ध है, क्योंकि वेद त्रिकाल दर्शी है, तीनोंकालका वृत्ता-न्त वर्णन कर सकता है, इसलिये भविष्यतमें होनेवाले अवतारोंका भी वर्णन है । इन दोनों प्रकारके समाधानोंमें प्रतिवादी किसी एकको तो मानेहीगा । यों तो जो वेदही नहीं मानता उसके लिये कहना ही क्या है हां बहुतेरे प्राणी इस स्थान पर यह शंका कर सकते है कि, अवताररूप राम कृष्ण को जब विम्ब माना गया तब अवतारी जो साकेत औ गो-लोक निवासी रामकृष्ण हैं उनका स्वरूप स्थूल कहना पड़ैगा, क्योंकि दर्पण मे स्थूल शरीरका विम्ब पड़ता है और विम्ब जब होगा तो स्थूल हीका होगा, इसलिये अवताररूप राम कृष्ण तो सूक्ष्म और अवतारी रूप राम कृष्ण जिनको साकेतलोक निवासी और गोलोकनिवासी कहते हो, स्थूल समझे जावेंगे । उत्तर इसका यह है कि, एक तो उदाहरणमें

सारा अङ्ग लेना पंडितोंका काम नहीं है उदाहरणमें केवल एक वा दो मुख्य अङ्ग लिये है सब नहीं लियेजाते । दर्पणका केवल उदाहरण दिया गया है तथापि मै इस शंकाका समाधान पूर्ण प्रकार करता हूं । सुनिये !

इस स्थूल दर्पणमें स्थूल शरीरका विम्ब पड़ता है, पर मायाके दर्पण में स्थूल, सूक्ष्म, महा सूक्ष्म, महा २ सूक्ष्म, परम सूक्ष्म, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सूक्ष्मतर, और सूक्ष्मतम सर्वप्रकारके तत्वोंका विम्ब पड़ता है, क्योंकि मायाका दर्पण अलौकिक है, देखिये स्वप्नमें जो सारे ब्रह्माण्डका विम्ब पड़ता है तिस स्वप्नको स्थूलदर्पण नहीं कह सकते केवल मायाका दर्पण है, तेजस है, जिसका वर्णन मैं अपने पिछले व्याख्यानोंमें कर आया हूं (देखो हंसनाद प्रथम भाग वक्तृता ४ पृष्ठ १६४) इसी प्रकार स्वप्नवत् अवतारोंकी लीला समझिये । जैसे आप स्वप्नमें अपनेको अपने ही स्वरूपमें देखते है इसी प्रकार वह ब्रह्म अपने ही स्वरूपमें आप विम्बायमान होकर अवतारोंको धारण करलेता है ।

एतद्रूपं भगवतोह्यरूपस्य चिदात्मनः ।
मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥

श्रीमद्भागवत स्कं० १ अ० ३ श्लोक ३०

अर्थात् यह जो भगवानका रूप रहित अवतार है उसे भगवानने महदादिक माया गुणोंसे अपने स्वरूपमें स्वयं ही रचा है । तात्पर्य यही है कि, अरूप होनेपर भी रूपवाला देखा जाता है । जैसे स्वप्नमें मनुष्य अपने ही स्वरूपको अपने ही शरीरके भीतर देखता है सो चैतन्य है । यदि आप चैतन्य न हो शरीर मृतक होजावे, मृतक शरीर स्वप्न नहीं देखसकता । इससे सिद्ध होता है कि, चैतन्य आत्मा अपने सारे शरीर को फिर उसी अपने ही चैतन्य आत्मामे देखता है । फिर दूसरा उदाहरण लीजिये । सूर्यकी किरणें जब फैलजाती है, तब सर्वत्र सब तेजस वस्तुओंमें सूर्यका विम्ब देखपड़ता है । यदि सूर्य स्वयं अपनी किरणोको न फैलावे तो अंधेरा होनेके कारण तेजस पात्रोंमें किसी पदार्थका अथवा

अपना विम्ब पड़े । इसी प्रकार वह पूर्णपरब्रह्म जगदीश्वर अपने निर्मल प्रकाशमें अपनेको देखता है तब नाना प्रकारके अवतार हो प्रकट हो भासते हैं। इसलिये प्रतिवादीकी यह शंका कि, विम्ब सूक्ष्म है और जिस का विम्ब है वह स्थूल होना चाहिये, निर्मूल है, क्योंकि केवल स्थूल शरीर विम्बका कारण नहीं होसकता जबतक चैतन्यका संग न हो। जब तक आप दर्पणके सामने शयनमें हैं तब तक आपका विम्ब उस दर्पणमें नहीं है, वह तो आपही जब अपनी आखोंसे दर्पणकी ओर देखते हैं तब आपहीकी आखोंसे किरणे निकल कर उस दर्पणके ऊपर पड़ती है, फिर वह दर्पण आपहीकी आखोंकी किरणों को आपहीके शरीरकी ओर लौटादेता है, इसलिये आपकी आंखें अपने शरीरही की ओर उलटकर देखती है, यही विम्ब कहाजाता है। बनावट ऐसीही है कि, आपको ऐसा भ्रम होता है कि आप दर्पणमें दूसरा शरीर देखरहे हैं। इसी प्रकार आप जितने पदार्थोंको दर्पणमें देखते हैं, अपनी आंखकी किरणों द्वारा उन पदार्थोंहीकी ओर देखरहे है, जैसे आप अपनी दाहिने वा बायें रखी हुई वस्तुओंको दर्पणमें देखते हैं। पत्थर वा ईंट दर्पणमें देखते हैं। सारा मकान दर्पणमें देखते है, पर दर्पणमें एक पदार्थ भी नहीं है, सब पदार्थ बाहर ही हैं, दर्पण पर आपकी दृष्टि टकराकर फिर उनही पदार्थोंकी ओर लौटती है। यद्यपि आप यह कहेंगें कि जो पदार्थ आप अपने सामने इन आंखोंसे नहीं देखते उनको भी तो दर्पणमें देखते हैं। जैसे आप अपने पैरोंकी ओर एक दर्पण रखकर, अथवा नदीमें नउका पर चढ़कर जब नीचें मस्तक कर देखते हैं, तब सम्पूर्ण आकाशको सूर्य चन्द्रके सहित देखते है, सो आकाश आपकी पीठकी ओर है, आखके सामने नहीं है, तो आखकी किरणे वहा कैसे पहुचती है। यह शंका हो तो उत्तर इस का यह है कि, जब आखकी किरणें किसी पदार्थसे टकराती है तब वे किरणें वर्तुलाकार (गोल) होकर चारों ओर फैलजाती हैं, जैसे जलमें जब आप एक काकरी छोड़ते हैं तब उसके धक्केसे जल चारों ओर फैल-

जाता है और एक गोलाकार प्रवाह बनालेता है, अथवा जलका छींटा किसी पत्थर पर मारनेसे चारों ओर छिटक कर गोलाकार बनजाता है, इसीप्रकार नेत्रकी किरणें दर्पण पर टकरानेसे चारों ओर फैल जाती है, इसी कारण चारों ओरकी वस्तुओंको देखते हैं । ऐसेही मायाके दर्पण पर हम लोगोंकी दृष्टि टकरानसे साकेतलोक और गोलोकनिवासीको विम्ब पड़ता है जिसे हमलोग अवतार कहकर पुकारते हैं । जैसे किसी राजा महाराजाके शीशमहलमें हजारों मनुष्य जावें तो सबके सब अपने स्वरूपको तथा औरोंके स्वरूपको भी उसी शीशमहलमें देखेंगे । इसीप्रकार जब अवतार होता है और वह अवतार अपनी मायाको स्वीकार करता है तब सर्वत्र सबकी दृष्टि में मायाका शीशमहल बनजाता है । इसलिये जिनके सामने वह अवतार होता है अथवा जितने शरीर उस अवतारके साथ आते है सबके सब मायाके शीशमहलमें उस मकान वाले राजाको अर्थात् अवतारको तथा अपने सहित सारी रचनाको उस शीशमहलमें देखते हैं, इसलिये ऋग्वेदने कहा कि, ' इन्द्रोमायाभि: पुरुरूपईयते " अर्थात् वह ब्रह्म अपनी मायासे बहुतसे रूपोंको धारण करलेता है । यदि शंका हो कि, वेदका तात्पर्य तो इस सृष्टिके सर्वप्रकारके शरीरधारियों के रूपसे है, अर्थात देव देवी, गन्धर्व, किन्नर, सूर्य, चन्द्र, तारा, अग्नि, जल, पृथिवी फल, फूल, नदी, पर्वत इत्यादि इन स्वरूपोंसे है तबतो औरभी उत्तम हुआ कि, प्रतिवादीने सबको अवतारही माना, क्योंकि ब्रह्मका भिन्न २ रूपोंमे प्रकट होना ही अवतार कहाजाता है और प्रतिवादी सब वस्तुओंको ब्रह्मका ही रूप होना मानता है तो सबके सब अवतार हुए । तथा एक चींटी भी जो आपकी दीवालके नीचे चलरही है वह भी अवतार हुई' फिर जब प्रतिवादी अपने मुखसे सब वस्तुओंको अवतार मानता है तब वाराह, कच्छप, मत्स्य, नरसिंह इत्यादिको अवतार माननेमें क्यों हिचकता है । हां इतना तो सब मतवालोंको तथा सब धर्मवालोंको माननाही पड़ेगा कि, यद्यपि सब जीव परमात्माके अवतार ही हैं पर इनमे गुणोंके भेदसे

तथा महत्त्वके भेद से अंश औ कलाका भेद है। कोई उस ब्रह्मदेवके महत्त्वका हजारवां अंश है अर्थात् १००० है, कोई १०००० है, कोई १००००० है, कोई १०००००० है, कोई १००००००० है, तात्पर्य यह है कि जहांतक बुद्धि जावे अंश करते चले जाइये, तथा एक मशक और मत्कुण तक उसका अंश कहलीजिये, पर ये सब अवतार जीवकोटि में कहेजावेंगे ईश्वरकोटिमें नहीं ।

अब मैं यहां यह देखलाता हूं कि जितने धर्मवाले इस पृथिवीमंडल पर हैं सब किसी न किसी रीतिसे अपने २ धर्ममें अवतार मानते ही हैं, और उनमें अंशकलाका भेद भी मानते हैं। देखिये मुसलमानोंके धर्ममें अपने २ पैगम्बरोंको अवतार माना है । मुसलमानोंमें एक प्रसिद्ध विद्वान जिसका नाम "जामी" है, अपनी बनाई हुई "जलीखा" नामकी पुस्तक में यो कहता है ।

چو آں بیچوں دریں چوں کرد آرام

پی روپوش کردہ یوسفش نام

चो आं बेचूं दरीचूं कर्द आराम ।

पये रूपोश कर्दाः यूसुफ़श् नाम ।

अर्थात् जब उस "बेचूं" ईश्वर ने इस "चूं" शरीर में "कर्द आराम" विश्राम किया, तब केवल "पये रूपोश" अपने को गुप्त रखनेके लिये "कर्दायूसुफ़श नाम" यूसुफ नाम रक्खा । मुख्य अभिप्राय उसके कहनेका यह है कि "हज़रत यूसुफ" (حضرت یوسف)भगवान के अवतार हैं ।

इसी प्रकार मुसलमान हजरत मुहम्मद (حضرت محمد صاحب) कोभी अवतारही मानतेहैं और कहते हैं कि(حبیب خدا اشرف انبیا)"हबीबे खुदा अशरफेअम्बया" अर्थात् मुहम्मदसाहब दोस्तखुदा دوست خدا(अर्थात् भगवानके मित्र है और सब पैगम्बरों में श्रेष्ठ हैं, और "आखिरुज्जमां آخرالزمان" है । मुसलमान अपने धर्ममें ७०००० सत्तर हजार पैगम्बर मा-

नते हैं। इनमें मुहम्मद साहब अन्य सब पैग़म्बरोंसे श्रेष्ठ माने जाते हैं। इन वचनोंसे सिद्ध होता है कि, ये लोग भी अवतार मानते है और एक दूसरे अवतारमें अंश और कलाका भेद रखते हैं क्योंकि जब मुहम्मदसाहब ईश्वर के मित्र मानेगये तो ईश्वरही ठहरे क्योंकि मित्रता समान गुणवालोंमें होती है, और जो जिसका मित्र होता है उसके समान शक्तिवाला होजाता है, इसलिये जब मुहम्मद साहब और ईश्वरमें मित्रता हुई तो दोनों ईश्वर ही समझे गये। इसी कारण मुसलमान लोग मुहम्मद साहब की स्तुति पूजा भी ईश्वर के तुल्य ही करते है। प्रत्यक्ष देखने में आता है कि, जब वह नमाज पढ़ते है तब दोनोंके लिये पढ़ते हैं। जैसे सवेर सूर्य निकलनेसे पहले " फ़जिरकी नमाज " पढ़ते है, जो उस में चार रिकअत (भाग) पढ़ते है। दो खुदा (ईश्वर) के लिये और दो मुहम्मद साहब के लिये। इसी प्रकार जब नमाज पढ़ेंगे तो उसमें कुछ ईश्वरके नाम पर और कुछ मुहम्मद साहबके नामपर। जो मुसलमान ऐसा नहीं करता वह मुसलमान नहीं समझा जाता। मुसलमानी धर्मके ग्रन्थों में यहां तक लिखा हुआ है कि (لولاک لما خلقت الافلاک) " लौलाकलमाखलक्तिल अफ़लाक "अर्थात् खुदा कहता है कि "अय मुहम्मद तू नहीं होता तो मैं नहीं पैदा करता जमीन और आसमानको" लीजिये केवल एक मुहम्मद साहबके कारण सारी सृष्टिका मानना क्या है? मानों मुहम्मदसाहबको सृष्टिका कारण मानना है, सृष्टिका कारण परमात्माही कहा जाता है, इसलिये मुहम्मदसाहब को अवतार कहने में किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहा।

अब आप प्रत्यक्ष देखरहे है कि हज़रत यूसुफ और हजरत मुहम्मद दोनोंको अवतार मानते हैं, पर मुहम्मद साहबमें यूसुफ से अधिक अंश कला मानते है। इससे सिद्ध होता है कि अन्य धर्मावलम्बी भी अवतार मानते हैं और उनमें अंश और कला का भेद मानते हैं।

इसी प्रकार ईसाई (Christians) भी अपने " हजरत ईसा ".

(Christ) को भगवानका बेटा (Son of God) मानते है। यह एक प्रसिद्ध बात है कि, जो बादशाहका बेटा होगा वह बादशाह ही होगा इसलिये हज़रत ईसूमसीहको भगवानका अवतार कहनेमें क्या सन्देहरहा?

जैनमतावलम्बी भी २४ * अवतार मानते है । नानकशाही भी अपने आचार्य नानकबाबाको अवतार मानते हैं । बौद्ध श्री बुद्धदेवको अवतारके नामसे पुकारते हैं।

सर्वसाधारण भारत निवासियों पर यह भी प्रगट करदेना अति ही आवश्यक है कि अंश, कला, तथा शक्ति, और विभूतिके भेदसे अवतारों की तीन कोटि है। १. जीव कोटि, ।२. कारक कोटि,† ३. ईश्वर कोटि हम सनातन धर्मावलम्बी जो २४ अवतार मानते है इन अवतारोंमें पृथु और धन्वन्तरिको जीवकोटिमें मानते हैं। चिकित्साशास्त्र वाले धन्वन्तरि को कारक कोटिमें कहते हैं। व्यास, नारद, ऋषभदेव, हयग्रीव, सनतकुमारादि, कपिल, और दत्तात्रय इन आठोंको कारक कोटिमें मानते है (मत्स्य, वाराह, कूर्म्म नरसिंह, वामन, परशुराम, बुद्धदेव, राम, हलधर, हंस, हरि, यज्ञ, मोहनी, नरनारायण) । इन चौदहोंको ईश्वर कोटिमें मानते है। कृष्णचन्द्र को अवतारोंमें नहीं मानते अवतारी

* १ ऋषभदेव । २ अजित । ३ सभव । ४ अभिनन्दन । ५ सुमति । ६ पद्मप्रभु । ७ सुपार्श्व । ८ चन्द्रप्रभु । ९ सुविध । १० शीतल । ११ श्रेयांस । १२ वासुपूज्य । १३ विमल । १४ अनन्त १५ धर्म । १६ शान्ति । १७ कुन्थु । १८ अरह । १९ मल्लि । २० मुनिव्रत । २१ नमि । २२ नेमि । २३ पार्श्व । २४ महावीर । इनहीं २४ महापुरुषोंको जैनधर्मावलम्बी अवतार मानते हैं और तीर्थंकर कहते हैं।

† वह ब्रह्मदेव अपने उपदेश रूप विभूतिको स्वीकार कर ऋषि महर्षियोंका अवतार ले ज्ञानउपदेश करता है उसे कारक कोटि कहते है।

में मानते हैं और स्वयंब्रह्म पूर्ण कलावाला कहते हैं तहां श्रीहलधरको अवतार मानते हैं। श्रीमद्भागवत प्रथमस्कन्ध अध्याय तीसरेके २८ श्लोक में यों कहा है ।

एतेचांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान स्वम् ।
इन्द्रारिव्याकुलंलोकं मृडयन्ति युगेयुगे ॥

अर्थात् जितने अवतार ऊपर कहआये सो सब अंश औ कलासे हैं और कृष्णतो स्वयंब्रह्म ही हैं । ये सब अवतार प्रतियुगमें राक्षसोंसे व्याकुल लोकोंको प्रसन्न करते हैं ।

कहीं २ रामचन्द्रकी उपासना करनेवाले ऐसा बोलते हैं कि "रामस्तुभगवान् स्वयम् "

यह केवल उपासकोंकी खैंचातानीकी बात है । इन दोनों अवतारोंमें अन्तर कुछ नहीं है । कोई २ रामचन्द्रमें १४ कला मानते है और कृष्ण में पूर्ण १६ कला मानते हैं, और कहते है कि, रामावतारमें श्री राम ने आप १४ कला अंगीकार कर दो कलाओंमे भरत और शत्रुहन को रखा था । कृष्णचन्द्रने उन दोनों कलाओंको अपने संग ही मिला कर १६ कलाओंसे लीलापुरुषोत्तमावतार लिया है ।

इन झगड़ोंसे कोई तात्पर्य नहीं है जो यथार्थ उपासक हैं वे सबको समान जानते है, केवल इतनी विशेषता रखते हैं कि अपने इष्टदेवको प्रधान मानते हैं, और शेष सब अवतारोंके आगे सीस झुकाकर स्तुति करते हुए यही वर मांगते है कि, इष्टदेवके चरणोमें प्रेमभक्तिकी वृद्धि होवे

अब मैं आपको " प्राचीकारिका ग्रंथका प्रमाण देकर यह देखलाता हूं कि, इन अवतारोंमें कौन अवतार किस तात्पर्य से हुआ है और संसारके किस कार्यको साधन करगया है ।

नृसिंहो जामदग्न्यश्च कल्की पुरुषएवच
भगवत्त्वेवचतत्रादे रैश्वर्यस्यप्रकाशकाः
नारदोऽथतथाव्यासो बराहोबुद्धएवच

धर्म्माणामेवर्वैविध्यादमीधर्मप्रदर्शका ।
रामोधन्वन्तरिर्यज्ञः पृथुःकीर्तिप्रदर्शिनः ।
बलरामो मोहिनी च वामनः श्री* प्रधानकाः ॥
दत्तात्रेयश्च मत्स्यश्च कुमार कपिलस्तथा ।
ज्ञानप्रदर्शका ह्येते विज्ञातव्यामनीषिभिः ॥
नारायणो नरश्चेति कूर्मश्च ऋषभस्तथा
वैराग्यदर्शिनोज्ञेया स्तत्तत्कर्मानुसारतः ॥
कृष्णःपूर्णषडैश्वर्य माधुर्य्याणां महोदधिः
अन्तर्भू-समस्तावतारो निखिलशक्तिमानिति ॥

इन श्लोकों का अर्थ स्पष्ट है । संस्कृत नहीं जाननेके कारण जिन श्रोताओंको अर्थ समझनेमें कुछ कष्ट हुआ हो वे संस्कृत पढ़नेका यत्न करेंगे, क्योंकि अन्य विद्या पढ़तेर जो सुख प्राप्तकरचुके हैं वह तो प्राप्त है ही, पर बिना संस्कृत परलोकके सुखसे वंचित रहजावेंगे इसलिये अवश्य आप भी संस्कृत पढ़ें और अपने बच्चोंको भी पढ़ावें ।

प्रिय सभासदो ! बहुतेरे श्रोताओंके मन में तथा अन्य धर्मावलम्बियोंके हृदयमें यह शंका उत्पन्न होरही होगी कि, उस ब्रह्मदेवका अंश, कला कैसे होसक्ता है ? जो निराकार है उसमें अंश कलाका होना असंभव है, साकारकाही अंश होसक्ता है निराकारका अंश नहीं होसकता, पर मैं अपने सर्व प्रकारके श्रोताओंको निश्चय कराता हूं कि निराकारकी जातित्व अर्थात् पुरुषका अंश नहीं होसक्ता, पर उसके महत्त्वका अंश होसक्ता है, पहले वेदका प्रमाण देकर उस ब्रह्मदेवके महत्त्वके अंशका होना सिद्ध करता हू । सुनिये प्रमाण यजुर्वेद पुरुषसूक्त मं० ३.

एतावानस्यमहिमातो ज्यायांश्च पुरुषः
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

---

* श्री अन्नसौन्दर्यम्

इस मंत्र का अर्थ महर्षि सायनाचार्य यों करते हैं ।

अतीतानागतवर्त्तमानरूपं जगद्यावदस्त्येतावान सर्वोऽप्यस्यपुरुषस्य महिमा स्वकीयसामर्थ्यविशेष । नतुतस्यवास्तवंरूपं । वास्तवस्तुपुरुषः । अतोमहीम्नोऽपि ज्यायानातिशयेनाधिकः । एतच्चोभयंस्पष्टी क्रियते । अस्यपुरुषस्यविश्वासर्वाणि भूतानि कालत्रयवर्त्तीनि प्राणिजातानि पादश्चतुर्थांशः । अस्यपुरुषस्यावशिष्टं त्रिपात्स्वरूपमसृतं विनाशरहितं सादिविद्योतनात्मके स्वप्रकाशस्वरूपेव्यवतिष्ठत इति शेषः । यद्यपि सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्मेत्याम्नातस्य परब्रह्मण इयत्ताया अभावात्पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्य तथापि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षयाऽल्पमिति विवक्षितत्वात्पादत्वोपन्यासः ॥

अर्थात् भूत, भविष्य, वर्त्तमान, इन तीनों कालमें जो कुछ रचना होचुकी, होगी, और है सब उस पुरुषकी महिमा मात्र है । उसका वास्तव स्वरूप नहीं है । वास्तव पुरुष तो इससे बहुत अधिक है । अप्रमेय है । अतर्क्य है । अब इन दोनों बातोंको स्पष्ट कहते हैं कि, " अस्यपुरुषस्य " इस परमपुरुष परब्रह्म जगदीश्वरके चार अंश हैं, जिन चारों अंशोंके एक अंशमें तो " विश्वा " इस सृष्टि भर के " भूतानि " सब जीवमात्र है, और जो शेष तीनपाद अर्थात् तीन अंश है वे अमृत अर्थात् विनाश रहित है, और " दिवि " उस पुरुषके परम प्रकाश रूपमें वर्त्तमान हैं । वेदके कहनेका मुख्य अभिप्राय यही है कि, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसके एक अंशमें वर्त्तमान है, अर्थात् सोलह आनामें चार आना है, और शेष वारह आनामें इसके इतर दिव्य और विनाश रहित तत्वोंकी स्थिति है । यद्यपि उस सत्यस्वरूप ज्ञाननिधि अनन्तदेवका कोई नियत प्रमाण नहीं है इसलिये उसका खण्ड नहीं होसक्ता, तथापि उस ब्रह्म की अपेक्षा यह सृष्टि बहुत छोटी है, इसकारण उसकी महिमा का चतुर्थांश केवल अनुमानकर कहागया है । इसलिये जब २ कोई अवतार होता है तब२ वह पुरुष प्रयोजनमात्र अपने महत्त्व अर्थात् शक्तिको अंगीकार कर

कार्य सम्पादन करता है। इसी को वचन द्वारा कथन करनेके लिये और सर्वसाधारणके समझानेके लिये "अंश" के नामसे पुकारते है। अर्थात् जिस शक्तिकी जितनी आवश्याकता होती है, वह सर्वशक्तिमान् केवल उसी शक्तिका उतना ही अंश अंगीकार कर प्रकट होता है, इसलिये भिन्न २ अवतारोंको अंश कलासे पुकारते है। अब इस विषयको मैं उदाहरणोंसे समझाता हूं सुनिये!

जैसे कोई "मोहन" नामका एक पुरुष मान लीजिये, उस मोहन में बहुतसी शक्तिया अनुमान करलीजिये। वेद पढ़ना, गाना, बजाना, नाचना, युद्धकरना, उड़जाना, चित्र बनाना, बड़े २ महलों और अटारियोंको तयार करना, कपड़े रंगना, बरछी, छुरी, गोले, इत्यादि तयार करना, घडी बनाना, तैरना, नउका चलाना, रेलगाड़ी चलाना, जज बनकर न्याय करना। राज्य करना इत्यादि २।

वही पुरुष जब व्यासगद्दी पर बैठकर वेद उच्चारण करता है तब उसे लोग पण्डित कहते हैं, और जहा कहीं किसी पुरुषको वेदमंत्रों द्वारा यज्ञ सम्पादन की आवश्यकता होती है तो उसी मोहनको आवाहन करता है उस समय वही मोहन वहां यज्ञशालामें पुष्प, चन्दन, धूप, दीप औ नैवेध इत्यादि लिये आचार्यका रूप धारणकर पहुंचता है। देखने वाले समझते है कि यह आचार्य है।

जब कोई पुरुष उसी मोहनको अपने विवाह इत्यादि उत्सवोंमें गान करनेके लिये आवाहन करता है तो वह हाथमें तानपूरा लिये गायकका रूप धारण कर पहुंचता है। देखनेवाले समझते है कि यह गायक है।

इसीप्रकार जब किसी उसके मित्र पर कोई आक्रमण करता है और वह उसे पुकारता है तो वही मोहन उस समय युद्धमें खड्ग, संगीन, बन्दूक़, छुरे गोले इत्यादिको लिये योद्धाका स्वरूप धारण कर पहुंचता है देखनेवाले समझते है कि, यह योद्धा है। मुख्य अभिप्राय यह है कि मोहनने अपनी अनेक शक्तियोंसे जिसशक्तिकी आवश्यकता जहा देखी

तहां उतनी ही शक्तिके साथ तदनुसार रूप धारणकर पहुंचगया। इसी प्रकार वह महाप्रभु जहां जिस समय जिस शक्तिकी आवश्यकता देखता है केवल उतनी ही शक्ति धारण कर वहां पहुंच उस कार्यको सम्पादन करता है और तदनुसारही रूपको बनालेता है। सुनिये!

जिस समय अन्यायी दुर्योधनने दुःशासन ऐसे उद्धत पुरुषको यह आज्ञा दी कि, मध्य सभामें द्रौपदीका चीर शरीरसे उतारकर उसे नंगीकर उस समय आज्ञा पाते ही दुष्ट दुःशासनने द्रौपदीका चीर पकड़ खैंचना आरम्भ किया। जब उस अबला, सुशीला, कुलवती, सलज्जा, स्त्रीने देखा कि, इस सभामें जहां मेरेगुरुजन श्वशुर इत्यादि बैठेहुएहैं तहां मैं नंगी कीजाती हूं, वचनबद्ध होनेके कारण सभामें मेरे पति युधिष्ठिर, भीम अर्जुन इत्यादि कुछभी सहायता नहीं करसकते, तब एकबार चारों ओर देख, निराश हो, आकाशकी ओर मुंह कर, दोनों हाथ जोड़, उस महाप्रभु से यों प्रार्थना करने लगी हे कृपासागर! भक्तवत्सल! दुःखभंजन दीनबन्धु! दयामय! हा! अब मैं कहां जाऊं! किससे कहूं? कौन मेरी रक्षा करे? कौन मेरी लज्जा रक्खे? नाथ मेरा सर्व नाश हुआ! मैं मरी! मैं आज निर्लज्ज हुई! आज मेरी पतगई! हे प्रभो! तुम कहां हो! धाओ! धाओ!! धाओ!!! इस दीन अबलाकी पतरक्खो!!

कवित्त

जाहि हाथ धनुष चढायो है सीतापति जाहिहाथ रावण संहार लंक जारी है। जाहि हाथ तारे औ उबारे हाथ हाथी गहि जाहि हाथ सिंधु मथि लक्ष्मी निकारी है। जाहि हाथ गिर उठाय गिरवर गिरधारी भये जाहि हाथ नन्दकाज नाथ्यो नाग कारी है। हौंतो अनाथ हाथ जोड़ कहूं दीनानाथ वाहिहाथ मेरोहाथ गहिवेकी बारी है॥

प्यारे सभासदो! अह! देखिये तो सही! दुःशासनने जब शरीर की साड़ी खींचली केवल एक हाथ साड़ी उसके कटिप्रदेशमें रहगई, उसको

दोनों हाथोंसे पकड़ रखा । जब दुःशासन ने अपना बल लगाकर उसे भी खींचने चाहा और द्रौपदी ने बिचारा कि, इस दुष्टके बलके सामने मेरे हाथोंका बल कहांतक कार्य करसकेगा और कहांतक रोकसकेगा ऐसा विचार आंख बन्द कर उसे दोनों हाथों को छोड़ा कि, एकवारगी पट चीर बढ़ना आरम्भ होगया, अब तो दुःशासन खींचता जाता है, और चीर बढ़ताही चलाजाता है, जो चीर द्रौपदी की कटि में लगा है उतना ही देख पड़ता है, और कपड़ेका छोर इसप्रकार बढ़चला कि बढ़ते बढ़ते एक पर्वतके समान चीरका ढेर लगगया, और द्रौपदी नंगी नहीं हुई

प्यारे बुद्धिमानो! वहां वह महाप्रभु स्वयं चीर बनगया, अर्थात् चीर का अवतार धारण करलिया। चीर होकर प्रगट हुआ । क्योंकि यहां केवल चीरही की आवश्यकता थी, अन्य किसी शक्ति की आवश्यकता नहीं थी।

इसी प्रकार जिस समय हिरण्यकश्यप प्रह्लादको खम्भमें बांधकर उसको मारनेके लिये खड्ग ले बोला कि, तेरा राम कहां है ? देखला ! नहीं तो तुझे इसी खड्गमे दो टुकड़े करदेता हूं । तब प्रह्लादने कहा कि, मेरा राम मुझमें, तुझमें, तेरे खड्गमें, और इस खम्भमें जिसमें तूने मुझे बांधा है व्यापक है ।

इतना कहना था कि, एकबारगी खम्भ फटा और उस खम्भसे नृसिंह भगवान प्रकट हो हिरण्यकश्यपके पेटको नखोंसे विदार, प्राण रहित करडाला । यहां खम्भसे ऐसे भयङ्कर स्वरूपके प्रगट होनेका कारण यह था कि, हिरण्यकश्यप ने घोर तप करके यह वर मांगरखा था कि, हे प्रपंच ! तेरी इस सृष्टि मे आज तक जितने प्रकारके जीव उत्पन्न होचुके हैं उनमें कोई मुझे न मारसके । न मैं किसी रोगसे मरूं । न सूखे शस्त्र से मरूं । न गीले शस्त्रसे मरू ।

इसी कारण परमात्माने यह विचारा कि, इसके मारनेके लिये ऐसा स्वरूप धारण करना चाहिये जो सृष्टिसे भिन्न हो, और शस्त्र भी अलौकिक हो, इसीलिये मस्तकसे नीचे दोनों भुजाओं तक सिंहका और तिस-

से नीचे अर्थात् हृदयसे लेकर चरणों तक मनुष्यका रूप धारण कर प्रकट हो सर्वत्र अपनी व्यापकता भी दरसाई और हिरण्यकश्यपको नखसे विदार कर नाश भी किया। नख वह शस्त्र है जो न सूखा है न भींगा है। इस कथाका पूर्ण वर्णन मै "नाम" के व्याख्यानमें करूंगा। प्रतिवादीको यह निश्चय होगया होगा कि, अवतारोंका शरीर पाचभौतिक नहीं होता, क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष देखनेमें आती है कि, खम्भसे सिंह की उत्पत्ति अलौकिक है, इसलिये यह शरीर भी अलौकिक है, इस अवतारको मै वेदके प्रमाणसे सिद्ध करचुका हूं (देखो पृष्ठ ३१०)

इसी प्रकार श्री दशरथनन्दनका अवतार "मर्य्यादापुरुषोत्तम" का अवतार कहाजाता है। अर्थात् स्वायंभुवमनु और शतरूपाकी मनोकामनाकी पूर्त्ति करतेहुए अपने शुद्ध मानुषी आचरणोंसे संसारको यह उपदेश कर देखाना था कि, उत्तम मनुष्योंकी मर्यादा कहांतक है ? किस प्रकार अपने ऊपर घोर क्लेश उठाकर, अपने पिता, माता, गुरुकी आज्ञा माननी चाहिये ? किस प्रकार अपने हित मित्र से बरताव रखना चाहिये ? किस प्रकार अपनी धर्मपत्नी तथा अपने बन्धुवर्गोंकी रक्षा और सहायता करनी चाहिये ? किस प्रकार शत्रुओंके आक्रमणसे अपनेको बचा उनको पराजय देना चाहिये ? किस प्रकार अपने शरण आयेहुएकी रक्षा करनी चाहिये ? और किस प्रकार बांह पकड़ेहुए प्राणियोंका निर्वाह करना चाहिये इत्यादि २। इन सब मानुषी मर्यादाको **दशरथनन्दन** ने आप अपना आचरण करके देखलाया है। मै पहले भी इस वार्त्ताको सुना चुका हूं। यदि शंका हो कि, उस महाप्रभुको अवतार लेकर देखलानेकी क्या आवश्यकता थी ? इन सब बातोंको तो हमलोग किसी अच्छे विद्वान वा राजा महाराजासे सीख सकते थे। उत्तर इसका यह है कि, जिस प्रकार **दशरथनन्दन** ने देखलाया है, ऐसे किसी प्राकृत मनुष्य में स्वयं देखलाने की सत्ता नहीं है, जबतक किसी अवतारसे उपदेश न पावे तबतक ऐसा नहीं करसकता। सुनिये मै आपको श्री रघुनाथजीकी एक

वार्त्ता सुनाता हूं, जिससे यह बोध होजावेगा कि, यथार्थ मानवधर्म क्या है ? और मनुष्य को कैसा दयालु होना चाहिये ? एकाग्र चित्त होजाइये।

वनवास होजानेके पश्चात् जब वनमें सुग्रीवसे मिताई होचुकी, और हनुमान, अंगद, सुग्रीव, नल, नील, इत्यादि सब बन्दरोंका कटक लियेहुए दशरथनन्दनने लंकाकी यात्रा की, तब एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि, श्री रामचन्द्रजी के संग हनुमान इत्यादि कपि मार्गमें पूर्वकी ओर जारहे थे, ग्रीष्म ऋतुका समय था, प्रचण्ड तापसे दुखित हो सबोंने श्री रघुनाथजीने यों प्रार्थना की। भगवन् ! किसी बड़े सघन वृक्षकी छायामें चलकर श्रम रहित होना चाहिये। इतनी वार्त्ता सबके सब करही रहे थे कि, इतनेमें महर्षि नारद वीणा बजाते, हरियश गान करते, आगेसे आन पहुंचे, उनको देखते ही रघुनाथ खड़े होगये, और उनके पीछे सब कपि भी खड़ेहोगये। एक क्षणमात्र बातें कर नारद तो चलेगये, पर इतनेमें श्रीहनुमानजीको जो श्रीरघुनाथजीके पीछे खड़े थे उनकी पीठ की शीतल छायाके मुख पर पड़नेसे निद्रा आगई। भुजाओं को घुटनों पर टेककर खडे २ सोगये। दशरथनन्दन भक्तउरचन्दन ने विचारा कि, मेरा सच्चा दास मेरी पीठकी छायामें सोगया है, जबतक यह सोआ हुआ रहे, तब तक यहांसे मत हटो। हटनेसे हनुमानकी निद्रा टूटजावेगी।

प्यारे श्रोताओ ! जबतक श्री हनुमानजी शयनमें रहे तबतक रघुनन्दन अपनी पीठकी छाया उनके मुखपर कियेहुए आप अपने मुखपर सूर्यके प्रचण्ड तापको सहतेहुए खड़े रहे। आपका कोमल मुखारविन्द तो सूर्यके तापसे जलरहा है, पर इसकी कुछ परवा नहीं है, आपको तो केवल यही चिन्ता है कि हनुमानकी निद्रा टूटनजावे। जैसे श्रीहनुमानजी की निद्रा टूटी, रघुनाथ वहांसे चलनिकले, और एक वृक्षकी छायामें जाबैठे। यह वार्त्ता जब हनुमानजीने जानली तब अपना अपराध क्षमा करानेके लिये रघुनाथके सन्मुख जा खड़े हुये और क्षमा प्रार्थी हुए। र-

रघुनाथने उत्तर दिया, हे हनुमन्त! सो अनन्य गति जाहिकी मति न टैर हनुमन्त। मैं सेवक सचराचर रूपराशि भगवन्त ॥ जिसका संक्षिप्त तात्पर्य यह है कि हे हनुमन्त! जिसने मेरेमें अनन्य गति कर रक्खी है, अर्थात् सब आशाओं को त्याग मुझमें चित्त लगाया है, उसका मैं सेवक हूं। यद्यपि मैं जड़ चैतन्य सबोंका भगवन्त हूं तथापि उसका तो मैं सेवक ही हूं। प्यारे श्रोताओ दशरथनन्दनने एवंप्रकार आचरण देखलाकर यह उपदेश करदिया कि, सच्चे सेवकोंकी ऐसी रक्षा करनी चाहिये और जीवों पर ऐसी दया करनी चाहिये।

इसी प्रकार श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र का अवतार संसारमें कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, और शुद्ध प्रेम, इत्यादिकी शीक्षा देने, भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने, क्लेश दूर करने, तथा अधर्मियोंको दण्ड देने के लिये और नाना प्रकारसे अपने ईश्वरत्वकी लीला देखानेके लिये है, और लीला ही करके सब जीवोंको भिन्न प्रकारका उपदेश देनेके लिये है, इसी कारण इनको लीलापुरुषोत्तम अवतार कहते हैं।

इस अवतारमे साधारण प्राणियों को यह शंका होती है कि, कृष्णचन्द्र ने तो कामियोंके सदृश ग्वालिनियोंके संग भोग विलास और क्रीड़ाकी है! यह शंका एक दम अयोग्य है। अब मै इसी शंकाके निवारणके लिये "गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद्" का एक सुन्दर प्रमाण देता हूं।

ॐ एकदाहि व्रजस्त्रियः सकामाश्शर्वरीमुषित्वा सर्वेश्वरं गोपालंकृष्णमूचिरे। उवाचताः कृष्ण अमुकऽस्मैब्राह्मणाय भैक्षं दातव्यमितिदुर्वाससे इति। कथं यास्यामोजलंतीर्त्वा यमुनायाः। यतःश्रेयो भवति। कृष्णेति ब्रह्मचारीत्युक्त्वा मार्गं वो दास्यति। यंमां स्मृत्वाऽगाधा गाधा भवति। यंमां स्मृत्वाऽपूतः पूतो भवति। यं मां स्मृत्वाऽव्रती व्रती भवति। यं मां स्मृत्वा सकामो निष्कामो भवति। यं मां स्मृत्वाऽश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति। यंमां स्मृत्वाऽगाधतस्पर्श रहिताऽपि सर्वा सरिद्गाधा भवति। श्रुत्वा तद्वाक्यंहि वैरौद्रंस्मृत्वा

तदावयेन तीर्त्वा वत्सौर्याहिवैगत्वाऽऽश्रमं पुण्यतमंहिवै नत्वामुनिंश्रेष्ठ तमंहिवैरौद्रेति । दत्त्वाऽस्मै ब्राह्मणाय क्षीरमयं घृतमयमिष्टतमंहिवै मृष्टतमंहिवुष्टस्नात्वा भुक्त्वा हित्वाऽऽशीष प्रयुज्यान्नं ज्ञात्वाऽदात् ।
गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत् प्रथम श्रुतिमें देखो ।

अर्थात् एकवार व्रजकी स्त्रियां रात्रिको निवास कर सर्वेश्वर श्रीकृष्ण भगवान्से बातें करने लगीं, तब श्यामसुन्दरने उनसे कहा कि, दुर्वासा नामके ब्राह्मणको भिक्षा देना चाहिये । गोपिकाओंने पूछा कि, हमलोग यमुनाको कैसे पार उतरकर जासकेंगी? तब भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, तुम लोग यमुनासे यों कहदेना कि, श्री कृष्ण यदि ब्रह्मचारी हो अर्थात् कभी किसी स्त्री का स्पर्श न किया हो तो हे यमुने ! तुम हम लोगोंको मार्ग देदो ! जिस मेरे को ही स्मरण करनेसे नहीं तरने योग्य है जो यह भवरूप सरिता वह "गाधा" तरनेयोग्य होजाती है। जिस मेरेकोही स्मरण करनेसे अपवित्र प्राणी पवित्र होजाता है। जिस मेरेकोही स्मरणकरने से अव्रती व्रती होजाता है । जिस मेरेको ही स्मरण करनेसे सकाम पुरुष की कामनाकी पूर्ति होजानेसे वह पुरुष निष्काम होजाता है । जिस मेरेको ही स्मरण करनेसे अश्रोत्रिय भी श्रोत्रिय होजाता है, जिस मेरेको ही स्मरण करनेसे परम अथाह नदी थाह होजाती है । जिस मेरेको ही स्मरण करके यमुना पार उतर जाओगी ! एवम्प्रकार श्री कृष्णके वचन को यमुनासे कह, सबकी सब गोपिकाओंने " रौद्र " रुद्रके अवतार दुर्वासा को स्मरण करती हुई, यमुनापार उतर, परम पवित्र आश्रममें पहुंच, दुर्वासाको नमस्कार कर, घृत, दुग्ध, और मिष्टसे मिश्रित भांति २ के पकवानोंको भोजन कराया । दुर्वासाने भोजन कर परम प्रसन्न हो उन लोगोंको आशीर्वाद दिया कि, तुमलोगोंकी मनोकामना पूर्ण होवे ।

प्यारे सभासदो ! इस उपनिषद्के प्रमाणसे सिद्ध होता है कि, श्यामसुन्दर श्री कृष्णचन्द्र ब्रह्मचारी थे, किसी गोपिकाको स्पर्श भी नहीं किया था । फिर उनके विषय यह कहना कि गोपिकाओंके संग विहार

किया, एक दम निर्मूल है। हा ! इतना तो अवश्य है कि, श्यामसुन्दरने योगियों को योगका महत्त्व और प्रेमियोंको प्रेमका तत्त्व जनादेनेके लिये एक प्रकारकी लीला कर शिक्षा की है । मै पहले ही कहआया हूं कि, आप लीलापुरुषोत्तम अवतार कहेजाते हैं, इसलिये जो कुछ संसारको उपदेश किया है सब लीला द्वारा उपदेश किया है । जैसे लीला करनेवाला वाजीगर लीलाद्वारा मस्तक कटवा देता है, लीला देखनेवालोंको सचमुच वोध होता है कि, मस्तक कटगया, पर यथार्थ में मस्तक कटता नहीं । इसी प्रकार लीलाकर गोपिकाओं के संग हंसना, खेलना, कूदना, नृत्य करना, गाना, बजाना, परस्पर प्रेम भरी बातोंसे सम्भाषण करना इत्यादि लीलाओंको कर उनके हृदय में प्रेमका अंकुर जमा दिया, अर्थात् प्रेम† कौनसा तत्व है यह प्रगट करादिया। प्रेमियोंको पहले कैसे परस्पर प्रेम लगता है ? फिर विरह होजानेसे कैसे प्रेमकी पूर्त्ति होजाती है ? सब बातें सीखादी । वे तो केवल ९ वर्षकी अवस्था तक गोकुलमें ग्वालवाल तथा गोपिकाओं के संग निवास कर फिर उन्हें त्याग, विरहके अथाह सागरमे डाल, मथुरा चलेगये । अर्थात् प्रिय प्रीतमका सम्बन्ध लगा, संयोग वियोग दोनों तत्त्वके सारांशको देखा, सबोंको प्रेमी बनादिया और ऐसा प्रेमी बनादिया कि, आजतक व्रजगोपिकाओं हीकी उपमा प्रेममें लीजाती है । " यथाव्रजगोपिकानाम् " (नारद भक्तिसूत्र)

इधर योगियों को यह उपदेश किया कि, देखो ! मै जैसे इतनी गोपिकाओंके संग रासक्रीड़ा करते हुए भी निर्लेप हूं, मुझको विषय स्पर्श नहीं कर सकता, मेरी इन्द्रियां मेरे वशामूल हैं और मेरे अधीन है, इतनी नारियोंके मध्यमें उर्द्धरेता * बनाहुआ हूं । इसी प्रकार तुमभी

† प्रेम– इस विषय का वर्णन पूर्ण प्रकार "प्रेम "के व्याख्यानमें करूंगा

* उर्द्धरेता जिसका रेत अर्थात् वीज ऊपरको खींचारहे नीचे पतन न होनेपावे ॥

सहस्रों उपद्रवोंके बीच निर्लेप और उर्द्धरेता बननेका यत्न करो । ऐसे करनेही से तुम परम प्रेमी होजाओगे, और प्रेमयोगी होकर मेरे स्वरूप में आमिलोगे ।

प्यारे सभासदो ! अभी जो मै गोपालोत्तरतापिन्योपनिषद् का प्रमाण देकर कृष्णको निर्लेप् और निर्दोष देखलाया इस प्रमाणको जो कोई तुच्छबुद्धि न मानकर यह हठ करे कि, नहीं मैं नहीं मानता, कृष्णने तो अवश्य गोपियोंके संग भोग विलास किया है तो उन तुच्छ बुद्धियोंसे यह पूछना चाहिये कि तुम कैसे सिद्ध करसकते हो कि कृष्णचन्द्रने विषयी जीवोंके समान स्त्रियोंके संग विषयक्रीड़ा की है ? क्यों कि तुम तो उस कृष्ण भगवानको मनुष्यका मानुषी बालक मानते हो । अब मै तुमसे यह पूछता हूं कि आठ नौ वर्षके बालक को क्या इतनी शक्ति हो सकती है कि, कई हजार स्त्रियों को काम क्रीडा से प्रसन्न कर सके? यदि तुम बुद्धिमान हो और तनक भी बुद्धिसे छूआछूत रखते हो तो अवश्य तुमको यही कहना पड़ेगा कि, आठ नौ बर्षके बालकको वीर्यका संस्कार होता ही नहीं और उसकी इन्द्रिया भी ऐसी प्रबल नहीं होसकतीं कि, सहस्रों स्त्रियों को कामसे प्रसन्न करसके । यदि ऐसा करे तो शीघ्र प्राणाव होजावेगा । फिर भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने तो केवल नौ ही वर्षकी अवस्थातक गोकुलकी गोपिकाओंके संग निवास कियाहै, दसवा वर्ष होतेही आप गोकुलसे मथुरा को चलेगये हैं, जहांसे फिर लौटकर एकदिवसकेलिये भी गोकुलमें नहींआये। फिर उनमें स्त्रीसंगकाकलंक कैसे लगाते हो ? यदि तुम उनको मानुषी बालक नहीं कहते हो तो ईश्वरही मानना होगा । फिर जब तुमने ईश्वर माना तो ईश्वरके चरित्रोंमें तुम अपनी बुद्धि नहीं लगा सकते और नहीं जानसकते कि, वह किस तात्पर्यसे क्या लीला करता है । उसकी लीलामें तुमको बोलनेका ठौर नहीं है ।

यदि तुमको यह शंका हो कि, श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि उनको

१६१०८ (सोलह हजार एकसौ आठ स्त्रियां थीं, जिनमें एक २ से दश २ लड़के और एक २ लड़की उत्पन्न हुई थी, सो यदि कृष्णचन्द्र भोग विलास नहीं करते तो इतनी सन्तति कैसे उत्पन्न होती ? उत्तर इसका यह है कि, वे १६१०८ गोपिका नहीं थीं, वे तो राजकन्या थीं, जिनसे वैदिक मर्यादा पूर्वक विवाह किया था। जब आप द्वारकामें द्वारकाधीश होकर विराजमान हुए थे तो गृहस्थोंको गृहस्थकी लीला कर यह वैदिक-धर्म उपदेश किया था कि हे गृहस्थो ! तुमको अपने धर्मपत्नियों से ग्यारह सन्तान तक उत्पन्न करनेकी आज्ञा वेद्ने है। सो मैं तुमको एक २ स्त्रीसे ११ सन्तान उत्पन्न कर देखाता हूं (दयानन्द भी ऐसा ही लिखगये हैं) देखो सत्यार्थ प्रकाश।

यह क्या बात थी ? लीला मात्र थी। क्योंकि एक प्राकृत मनुष्य को इतना सन्तान होही नहीं सकता। दूसरी बात यह है कि, ये लाखों बच्चे काम क्रीड़ा करके उत्पन्न नहीं हुएथे। जिस श्रीमद्भागवत से यह पता लगता है कि, श्रीकृष्णचन्द्रके लाखों बालक थे और १६१०८ पटरानियां थी उसी श्रीमद्भागवतसे यह भी पता लगता है कि, कृष्णभगवानका अवतार इस मृत्युलोकमें केवल १०० वर्षके लिये हुआ था।

अब शंका करनेवालोंसे यह पूछना चाहिये कि, १६१०८ रानियों में यदि एकही एकबार काम क्रीड़ा करके सन्तान उत्पन्न कियाजावे तो एक स्त्रीके समीप जानेमें १६१०८ दिन लगेंगे, अर्थात् केवल एक २ पुत्र उत्पन्न करनेमें १६१०८ दिन होना चाहिये। १६१०८ दिनके ४४ वर्ष ८ महीने २८ दिन होते हैं, इस लेखासे एक स्त्री में केवल दो ही सन्तान उत्पन्न करनेमें ८९ वर्ष होजाते हैं। ८९ वर्षमें ११ वर्ष जोड़नेसे १०० वर्ष होते हैं, सो ११ वर्ष लड़कपनमें जाने दीजिये। यदि कृष्णचन्द्र के बारहवें वर्षसे भी सन्तानकी उत्पत्ति होजावे तौभी १०० वर्षके भीतर प्रति स्त्री से केवल दो ही सन्तानका उत्पन्न होना सम्भव है

पर यहां ११ सन्तानकी उत्पत्ति देखीजाती है जिसके लिये लगभग ५०० वर्षकी आयु होनी चाहिये, पर यह अवतार केवल १०० वर्षके लिये है, काम क्रीड़ा करके इतने सन्तानका होना सम्भव नहीं । अतएव स्पष्टरूप से बोध होता है कि, श्री कृष्ण भगवानने केवल अपने महत्त्वसे इतनी सन्तति प्रगट करदी । यहां भी कामक्रीड़ा सिद्ध नहीं होती । इसलिये कृष्णभगवान निर्लेप, निर्विकार, पूर्ण परब्रह्म, जगदीश्वरके अवतार हैं इन में दोष आरोपण करना महा तुच्छ बुद्धियोंका काम है ।

प्यारे सभासदो ! इसी प्रकार जितने अवतार हैं सबकी लीला अपरंपार है, अवतारोंका होना केवल एकही तात्पर्यसे नहीं है, अनेक प्रयोजनोंके एकत्र होजाने से अवतार होता है, और एक अवतारसे सैकड़ों वरु सहस्रों उपद्रवोंकी शान्ति और शुभ गुणोंका प्राकट्य होता है । धर्म की उन्नति होती है । हरिभक्तोंका उद्धार होता है । वह महाप्रभु भक्तवत्सल है, भक्तोंके प्रेमके वशीभूत है, इसलिये क्षणमात्र भी उनका क्लेश देखना असह्य समझ कर झट आप प्रगट होजाता है ।

बहुतेरे प्राणी यों शंका करबैठते हैं कि, भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तोंके दु:ख निवारणार्थ रावण इत्यादि दुष्टोंके मारनेके लिये आप क्यों कूद पड़ता है ? मृत्यु तो उसकी आज्ञा में है उसे क्यों नहीं आज्ञा देता कि उन दुष्टोंका मारडाले ?

प्यारे सभासदो ! एकबार अकबर बादशाहने भी अपने मंत्री (वज़ीर) बीरबर से इसी प्रकार प्रश्न किया था कि, भगवान् आप क्यों प्रगट होता है ? यमदूत (ملك الموت) को भेजकर क्यों नहीं रावण इत्यादि को मरवा डालता ?

बीरबरने प्रार्थना की, राजन् ! मुझको ६ महीनेका अवकाश मिले तो मैं इस प्रश्नका उत्तर ठीक २ देसकता हूं । बादशाहने ६ महीनेका अवकाश दिया । उस समय बादशाहका परम प्रिय पुत्र केवल एक वर्षका था । छः महीने बीतने के पश्चात् बीरबरने एक काष्ठका पुतला ठीक २

हांपनाहके साथ २ नवार थे। मैं हुजूरके बगलमें खड़ा था। मुझको अथवा इन सवारोंको क्यों नहीं आज्ञा दीगई कि, इस बच्चेको निकालो? जहांपनाह ऐसी ठण्डके समय पानीमें स्वयं क्यों कूदपडे? बादशाहने उत्तर दिया, बीरवल! बच्चेके प्रेमने मुझे इतना अवकाश नहीं दिया कि किसी औरको आज्ञा देता। बच्चेके दुःखको मैं क्षणमात्र भी सहन नहीं करसकता था, इसलिये आप इसनदीमें कूदपड़ा। बीरवलने कहा; राजन्! इसी प्रकार हमलोगोंका जगत्पिता जब हमलोगोंको अत्यन्त कष्टमें देखता है, तब झट आप संसारमें कूदपड़ता है। मारे प्रेमके दूसरोंको आज्ञा देनेका अवकाश नहीं पाता।

प्यारे सभासदो! कोई पुरुष ऐसा न विचार करे कि, अवतार केवल मृत्युलोकमें ही होता है। नहीं! नहीं!! अवतारतो समय २ पर भक्तोंके दुःखों के निवारण करनेके निमित्त, दुष्टोंको दण्ड देनेके निमित्त, अहंकारियोंका अहङ्कार मर्दन करनेके निमित्त, तथा ज्ञान उपदेश करनेके निमित्त, सब लोक लोकान्तरोंमें हुआ करता है। ब्रह्मलोकसे पाताल पर्यन्त जितने लोक हैं, प्रयोजनमात्र सबमें अवतार होता ही रहता है। देखिये आप को केनोपनिषद् का प्रमाण देकर देवलोकमें भी अवतारका होना सिद्ध करदेता हूं॥

एकबार देवासुर संग्राममें देवताओंने विजय प्राप्त किया, तो अग्नि वायु, और इन्द्र इन देवताओं को यह अहङ्कार उत्पन्न होआया कि, हम लोग बड़े शक्तिमान् हैं जो एवम्प्रकार बहुत बड़े राक्षसों पर विजय पाया है, हम लोगोंमें बहुत बड़ा पराक्रम है। इन देवताओंको उस पूर्ण ब्रह्म जगदीश्वर की महिमा विस्मरण होगई, यह नहीं विचार रहा कि, विजय देनेवाला जो सर्वशक्तिमान् परमात्मदेव है उसकी महिमाके बलसे हमलोगोंने जय प्राप्त की है। जब ब्रह्मदेवने यह देखा कि, इन देवताओंके हृदयमें अहंकार उत्पन्न होआया है, जिससे आगे इनकी बहुत बड़ी हानि होगी, तब क्या किया सो सुनिये।

राजकुमार (शाहजादा) के रूपके समान बनवायी और उसे उत्तम २ वस्त्र और अलंकारोंसे सुशोभित कर, उस दाई को, बोलाया जो राजकुमार को नित्य गोदमें खेलाया करती थी, और कहा कि, तू मेरी आज्ञानुसार इस काठके बच्चेको गोदमें खेलाती हुई आज सायंकालके समय यमुनाके किनारे जा खड़ी होजाना, और इसबच्चेको गोदमे खेलाते रहना। आज मैं बादशाहके साथ वहां आऊंगा, जब बादशाह इस बच्चेको प्यार करनेके लिये अपनी गोदमें मांगे तब झट इसको यमुनाकी धारमें फैंक देना। मैं तुझको सहस्रों मुद्रा पुरस्कार (इनाम) दूंगा। दाईने ऐसा ही किया।

वीरवरने बादशाहसे प्रार्थना की, राजन्! आज समा बहुत सुहावना है यमुना किनारे हवा खाने चलना चाहिये। बादशाहने स्वीकार किया और वीरवरको साथ ले बहुतेरे सवारोंके संग यमुना किनारे गये तो क्या देखा कि, दाई शाहजादेको गोदमें लिये खेला रही है। देखते ही वात्सल्य प्रेम हृदयमें उमड़ आया, दाईकी ओर हाथ बढ़ा कर बच्चेको अपनी गोदमें मांगा, मांगतेके साथही दाईने उसको यमुनाकी धारमें फेंक दिया। जैसे बच्चा पानीमें गिरा झट बादशाह उसके साथ ही आप पानीमें कूदपड़ा। जो हाथसे निकाले तो देखता है कि, यह काठका पुतला है, शाहजादा नहीं है, माघका महीना ठण्डका दिन था, बादशाहके बहुमूल्य वस्त्र सब भींग गये, मारे ठण्डके कांपने लगा, दाईकी ओर जैसे क्रोध की दृष्टिसे देखा वैसे ही वीरबर हाथ बांधकर सामने खड़ा हो गया और प्रार्थना की। भगवन्! क्रोध क्षमा हो। दाई का कुछ अपराध नहीं है। अपराधी मैं हूं। बादशाहने पूछा क्या बात है? ठीक २ बतलाओ। वीरबरने उत्तर दिया। राजन्! मैंने जो उसदिन प्रतिज्ञा की थी कि, भगवत्के अवतारके विषय जहांपनाहके प्रश्नका उत्तर छः महीने के पश्चात् दूंगा सो छः महीने वीतगये हैं यह उसी प्रश्नका उत्तर है। बादशाहने पूछा कैसे? वीरवरने उत्तर दिया। राजन्! इतने सवार ज-

जहाँपनाहके साथ २ सवार थे। मैं हुजूरके बगलमें खड़ा था। मुझको अथवा इन सवारोंको क्यों नहीं आज्ञा दीगई कि, इस बच्चेको निकालो? जहाँपनाह ऐसी ठण्डके समय पानीमें स्वयं क्यों कूदपडे? पादशाहने उत्तर दिया, बीरबर! बच्चेके प्रेमने मुझे इतना अवकाश नहीं दिया कि किसी औरको आज्ञा देता। बच्चेके दुःखको मैं क्षणमात्र भी सहन नहीं करसकता था, इसलिये आप इसनदीमें कूदपड़ा। बीरबरने कहा; राजन्! इसी प्रकार हमलोगोंका जगत्पिता जब हमलोगोंको अत्यन्त कष्टमें देखता है, तब झट आप संसार में कूदपड़ता है। मारे प्रेमके दूसरोंको आज्ञा देनेका अवकाश नहीं पाता।

प्यारे सभासदो! कोई पुरुष ऐसा न विचार करे कि, अवतार केवल मृत्युलोकमें ही होता है। नहीं! नहीं!! अवतारतो समय २ पर भक्तोंके दुःखों के निवारण करनेके निमित्त, दुष्टोंको दण्ड देनेके निमित्त, अहंकारियोंका अहंकार मर्दन करनेके निमित्त, तथा ज्ञान उपदेश करनेके निमित्त, सब लोक लोकान्तरोंमें हुआ करता है। ब्रह्मलोकसे पाताल पर्यन्त जितने लोक हैं, प्रयोजनमात्र सबमें अवतार होता ही रहता है। देखिये आप को केनोपनिषद् का प्रमाण देकर देवलोकमें भी अवतारका होना सिद्ध करदेता हूं॥

एकबार देवासुर संग्राममें देवताओंने विजय प्राप्त किया, तो अग्नि वायु, और इन्द्र इन देवताओं को यह अहंकार उत्पन्न होआया कि, हम लोग बड़े शक्तिमान् हैं जो एवम्प्रकार बहुत बड़े राक्षसों पर विजय पाया है. हम लोगोंमें बहुत बड़ा पराक्रम है। इन देवताओंको उस पूर्ण ब्रह्म जगदीश्वर की महिमा विस्मरण होगई, यह नहीं विचार रहा कि, विजय देनेवाला जो सर्वशक्तिमान् परमात्मदेव है, उसकी महिमाके बलसे हमलोगोंने जय प्राप्त की है। जब ब्रह्मदेवने यह देखा कि, इन देवताओंके हृदयमें अहंकार उत्पन्न होआया है, जिससे आगे इनकी बहुत बड़ी हानि होगी, तब क्या किया सो सुनिये।

राजकुमार (शाहजादा) के रूपके समान बनवायो और उसे उत्तम २ वस्त्र और अलंकारोंसे सुशोभित कर, उस दाई को बोलाया जो राजकुमार को नित्य गोदमे खेलाया करती थी, और कहा कि, तू मेरी आज्ञानुसार इस काष्ठके बच्चेको गोदमें खेलाती हुई आज सायंकालके समय यमुनाके किनारे जा खड़ी होजाना, और इसबच्चेको गोदमें खेलाते रहना। आज मैं बादशाहके साथ वहां आऊंगा, जब बादशाह इस बच्चेको प्यार करनेके लिये अपनी गोदमें मांगे तब झट इसको यमुनाकी धारमें फेंक देना। मैं तुझको सहस्रों मुद्रा पुरस्कार (इनाम) दूंगा। दाईने ऐसा ही किया।

वीरबरने बादशाहसे प्रार्थना की, राजन्! आज समा बहुत सुहावना है यमुना किनारे हवा खाने चलना चाहिये। बादशाहने स्वीकार किया और वीरबरको साथ ले बहुतेरे सवारोंके संग यमुना किनारे गये तो क्या देखा कि, दाई शाहजादेको गोदमें लिये खेला रही है। देखते ही वात्सल्य प्रेम हृदयमे उमड़ आया, दाईकी ओर हाथ बढ़ा कर बच्चेको अपनी गोदमें मांगा, मांगनेके साथही दाईने उसको यमुनाकी धारमें फेंक दिया। जैसे बच्चा पानीमें गिरा झट बादशाह उसके साथ ही आप पानीमें कूदपड़ा। जो हाथसे निकाले तो देखता है कि, यह काठका पुतला है, शाहजादा नहीं है, माघका महीना ठण्डका दिन था, बादशाहके बहु मूल्य वस्त्र सब भींग गये, मारे ठण्डके कांपने लगा, दाईकी ओर जैसे क्रोध की दृष्टिसे देखा वैसे ही वीरबर हाथ बांधकर सामने खड़ा हो गया और प्रार्थना की। भगवन्! क्रोध क्षमा हो। दाई का कुछ अपराध नहीं है। अपराधी मैं हूं। बादशाहने पूछा क्या बात है? ठीक २ बतलाओ। वीरबरने उत्तर दिया! राजन्! मैंने जो उसदिन प्रतिज्ञा की थी कि, भगवत्के अवतारके विषय जहापनाहके प्रश्नका उत्तर छः महीने के पश्चात् दूंगा सो छः महीने बीतगये है यह उसी प्रश्नका उत्तर है। बादशाहने पूछा कैसे? वीरबरने उत्तर दिया। राजन्! इतने सवार ज-

हाँपनाहके साथ २ तयार थे । मैं हुजूरके बगलमें खड़ा था । मुझको अथवा इन सवारोंको क्यों नहीं आज्ञा दीगई कि, इस बच्चेको निकालो? जहाँपनाह ऐसी ठण्डके समय पानीमें स्वयं क्यों कूदपड़े ? बादशाहने उत्तर दिया, बीरबर! बच्चेके प्रेमने मुझे इतना अवकाश नहीं दिया कि किसी औरको आज्ञा देता । बच्चेके दुःखको मैं क्षणमात्र भी सहन नहीं करसकता था; इसलिये आप इसनदीमें कूदपड़ा। बीरबरने कहा, राजन्! इसी प्रकार हमलोगोंका जगत्पिता जब हमलोगोंको अत्यन्त कष्टमें देखता है, तब झट आप संसारमें कूदपड़ता है ॥ मारे प्रेमके दूसरोंको आज्ञा देनेका अवकाश नहीं पाता ।

प्यारे सभासदो ! कोई पुरुष ऐसा न विचार करे कि, अवतार केवल मृत्युलोकमें ही होता है । नहीं ! नहीं !! अवतारतो समय २ पर भक्तोंके दुःखों के निवारण करनेके निमित्त, दुष्टोंको दण्ड देनेके निमित्त, अहंकारियोंका अहंकार मर्दन करनेके निमित्त, तथा ज्ञान उपदेश करनेके निमित्त, सब लोक लोकान्तरोंमें हुआ करता है । ब्रह्मलोकसे पाताल पर्यन्त जितने लोक हैं, प्रयोजनमात्र सबमें अवतार होता ही रहता है । देखिये आप को केनोपनिषद् का प्रमाण देकर देवलोकमें भी अवतारका होना सिद्ध करदेता हूं ॥

एकबार देवासुर संग्राममें देवताओंने विजय प्राप्त किया, तो अग्नि वायु, और इन्द्र इन देवताओं को यह अहङ्कार उत्पन्न होगया कि, हम लोग बड़े शक्तिमान् हैं जो एवम्प्रकार बहुत बड़े राक्षसों पर विजय पाया है, हम लोगोंमें बहुत बड़ा पराक्रम है । इन देवताओंको उस पूर्ण ब्रह्म जगदीश्वर की महिमा विस्मरण होगई, यह नहीं विचार रहा कि, विजय देनेवाला जो सर्वशक्तिमान् परमात्मदेव है उसकी महिमाके बलसे हमलोगोंने जय प्राप्त की है । जब ब्रह्मदेवने यह देखा कि, इन देवताओंके हृदयमें अहंकार उत्पन्न होआया है, जिससे आगे इनकी बहुत बड़ी हानि होगी, तब क्या किया सो सुनिये ।

ॐ तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्नव्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ।

केनोपनिषद् श्रुति १५ ।

अर्थात् सो ब्रह्मदेव इन देवताओंके अहंकारको जानगया, तब इस अहंकारकी निवृत्तिके लिये " प्रादुर्बभूव " यक्ष रूपसे प्रादुर्भूत हुआ, अर्थात् यक्षका अवतार लेकर प्रगट होगया और देवताओंके समीप जा खड़ा होगया, परन्तु उन देवताओंने " तन्नव्यजानन्त " उसको नहीं जाना. अर्थात् उनकी समझमें कुछ भी न आई कि " किमिदं यक्षम् " कि यह * यक्ष कौन है ।

ॐ ते अग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ।

केनोपनिषद् श्रु० १६

ॐ तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति अग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ।

के० श्रु १७

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ।

केनोपनिषद् श्रुति १८ ।

तब सब देवताओंने पहले ! अग्निके अधिष्ठातृ देवको कहा हे जातदेव ! (अग्निदेव) तुम जानते हो कि, यह यक्ष कौनहै? यक्षके समीप जाकर पूछो तो सही कि, यह यक्ष कौन है ? तब अग्निदेवने ऐसा ही किया ।१६। झट दौड़कर उस यक्षके समीप गया तब उस यक्षने अग्निसे पूछा कि, तुम कौन हो ? तब अग्निने उत्तर दिया कि, मैं अग्नि हूं और सब दे-

* यक्ष – ये एक प्रकारके देवताओंमें हैं. जो कुबेरके सेवक कहलाते हैं. और उनके धनधान्य इत्यादि की रक्षा करते हैं ।

तता मुझको "जातवेदा" कहकर प्रतिष्ठा देते हैं इसलिये मैं ही जातवेदा अर्थात् वह अग्नि देव हूं जिससे वेद उत्पन्न हुआ है। १७। फिर यक्षने पूछा तुम में क्या शक्ति है? क्या महत्त्व है? तब अग्निने उत्तर दिया कि, मै सम्पूर्ण विश्वमात्रकी वस्तुओंको शीघ्र भस्म करदे सकताहूं मुझमें यही शक्ति है, इतना सुनकर

ॐ तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय। सर्व जवेन तन्नशशाक दग्धुं सततएव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति। के० श्रु १९

तब उस यक्षने एक छोटासा तृण (तिनका) सामने रखकर अग्निसे कहा तू इसको भस्म कर! अग्निने अपनी सारी सामर्थ्य उस तृणके भस्मकरनेमें लगाई,पर वह भस्मनहींहोसका। तब अग्नि अत्यन्त लज्जित होगया, और एक दम नहीं समझ सका कि, यह यक्ष कौन है? लौट कर इन्द्र देवके पास चला गया। तब इन्द्रादि देवताओंने इसी प्रकार वायुसे कहा कि, हे "मातरिश्वा" तुम जाकर पूछो कि, यह यक्ष कौन है। वायुदेव भी उसी प्रकार उस यक्षके समीप गया तब यक्षने वायुसे पूछा तू कौन है? वायुने उत्तर दिया कि, मैं वायुहूं। यक्षनेपूछा तुझमें क्या शक्ति है? वायुने कहा मै ही सम्पूर्ण विश्वके वस्तुओंको धारण किये हुए हूं, और सब वस्तुओंको चाहे वे कितनीही बड़ी क्यों न हों उड़ाकर दूर फेंकदे सकता हूं। यक्षने पूर्ववत् एक छोटासा तृण उसके सामने रखकर कहा कि, इसको उड़ादो। वायुने अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य लगाई, पर वह तृण अपने स्थानसे तनक भी नहीं हटा, न हिला। तब उसी प्रकार वायु भी लज्जित हो इन्द्रके पास लौट गया। पश्चात् इन्द्र स्वयं उस यक्षके समीप गया। उसके समीप जाते ही यक्ष अन्तर्ध्यान होगया। इन्द्र अत्यन्त लज्जित हुआ कि, अग्नि और वायुसे तो यक्ष ने संभाषण भी किया, मेरा जो ऐसा निरादर किया, कि मेरे आते

ही अन्तर्ध्यान होगया। सो मैं तो अग्नि और वायुसे भी तुच्छ हूं। ऐसे बहुत देर तक जब उदास रहा तब परब्रह्म की वह शक्ति जिसे ब्रह्म-विद्या कहते हैं पार्वती रूपसे इन्द्र को ज्ञान देनेके लिये, प्रगट हुई।

ॐ स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमाना मुमां हैमवतीं ताᳬं होवाच किमेतद्यक्षमिति।

के० श्रु० २५

अर्थात् उस आकाशमें वह महाविद्या स्त्री रूपसे प्रगट हुई तब इन्द्र ने उस अत्यन्त शोभायमान उमा रूप पार्वती से पूछा कि, आप जानती है कि, वह यक्ष कौन था? उस ब्रह्मविद्या रूप स्त्री ने इन्द्रको समझाया कि, तुम देवताओंको अपने विजयका अहंकार होगया था, और उस ब्रह्मदेवकी महिमाको भूल कर असुरोंके जय पानेमें अपना महत्त्व समझा था, इसलिये उसी ब्रह्मदेवने यक्ष रूप से अवतार लेकर तुम्हारे मदको तोड़ा है। "मदभञ्जनार्थ यक्षरूपेणावतीर्य्य"

प्यारे श्रोताओ! यह इतिहास पूर्ण रूपसे केनोपनिषद्में वर्णन है, देखलेना। केनोपनिषद्के इन वचनोंसे देवलोकमें दो अवतारोंका होना देखलाया गया, अर्थात् ब्रह्म और उसकी शक्ति दोनोंका अवतार होना सिद्ध करदिया गया।

प्यारे सभासदो! आज मैंने यह व्याख्यान अवतार पर दिया है, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि, श्रोतागण सुनकर केवल प्रसन्न हों और घरोंमें जाकर यों कहें कि, वाह रे कैसा अच्छा व्याख्यान हुआ! केवल वाह २ करनेसे कुछ लाभ न होगा, उचित तो यह है कि, इन अवतारों में एक अवतार राम अथवा कृष्ण की उपासना करनेकी रीति ठीक २ अपने गुरुसे सीखें। उपासनाके विषय जो मैं व्याख्यान दे आया हूं उस को पढ़कर उसके रहस्योंको समझें। जब कर्मकाण्डसे अर्थात् अहिंसा, सत्य, जौ ब्रह्मचर्य इत्यादिके साथ सन्ध्या करते हुए प्राणायाम और

प्रत्याहारके साधनसे उनका चित्त स्वच्छ होजावे, तब किसी एक अवतार में, जिसमें उनकी प्रीति लगे, चित लगाकर प्रेमपूर्वक अहर्निश उस रूप की उपासना में मग्न रहते हुए सब व्यवहारोंमें उसी अपने उपास्यको व्यापक समझते हुए समय बितावें।

इतना तो अवश्य जानना चाहिये कि, कोई अवतार क्षणिक होता है और कोई अवतार किसी विशेष समय तक ठहर जाता है। दशरथ, कौशल्या, नन्द, यशोदा, इत्यादिके लिये जो राम कृष्णके अवतार हुए वे कुछ विशेष काल तक स्थिर रहकर लाखों जीवोंका उपकार करगये, और प्रह्लाद, ध्रुव, द्रौपदी, गज इत्यादिके लिये जो भिन्न २ अवतार हुए वे क्षणमात्र प्रगट हो, अन्तर्ध्यान होगये। सो जैसा आपका भजन होगा उतनाही आनन्द आपको प्राप्त होगा। फिर तो श्यामसुन्दर आपके हैं और आप श्यामसुन्दरके हैं। चाहे उनसे एक घं-टा मिलकर उनके दर्शनका आनन्द लूटिये चाहे दिन रात उनको अपने समीप बैठाले रहिये।

हम सनातन धर्मावलम्बियोंको तो अपने महर्षियोंके वचनों पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिये। वेद, वेदान्त, श्रुति, स्मृतियोंकी आज्ञानुसार ही आंख मूंदकर चलना चाहिये। अधिक बुद्धि लगानेकी आवश्यकता नहीं है। आजकलके नवीन प्रकाश वाले इतनी बुद्धि लगाते हैं कि, उनकी अबुद्धि समझी जाती है, यदि आप यह कहें कि, तुम जब बुद्धिका ही खण्डन करते हो तब महर्षियों की गूढ़ बातें कैसे समझमें आवेंगी? तो प्यारे श्रोताओ! मैं सम्यक् बुद्धिका खण्डन नहीं करता, मैं तो असम्यक् बुद्धिका खण्डन करता हूं। सम्यक् बुद्धि वह है जो साम्यावस्था (Aurea Mediocritas) में हो अर्थात् अपनी मर्यादा (Limit) से अधिक न बढ़जावे, जैसे हमारे पूर्वक महर्षियोंकी बुद्धि, और असम्यक् बुद्धि उसे कहते हैं जो अपनी सीमाका उलंघन कर अत्यन्त होजावे ऐसी बुद्धि व्याधि होजाती है और निन्दनीय है। यही असम्यक् बुद्धि आजकल

के नवीन प्रकाशवालोंका भूषण है, और इसी बुद्धि पर उनको बहुत बड़ा घमण्ड है। इस असम्यक् बुद्धिके विषय में एक दृष्टान्त सुनाता हूं सुनिये —

एक नवीन प्रकाश वाले फ़िलोसफ़र (Philosopher) जो अपने को, बहुत बड़ा बुद्धिमान समझते थे एक दिन एक तेलीकी दुकान पर तेल लाने गये। तेलीके घरमें जो तेल पेरनेका कोल्हू था उसमें एक बैल जोताहुआ था, जो कोल्हू को चारों ओर फिराया करता था। तेलीने उसके गले में एक घंटी बांध दी थी।

फ़िलोसफर साहबने तेल लेनेके पश्चात् तेलीसे पूछा कि, तुमने इस बैलके गलेमें घंटी क्यों बांध दी है? तेलीने कहा जनाब मैं घरका अकेला हूं इसलिये मुझको रोटी बनाना तथा और भी अनेक घरके काम करने पड़ते हैं, और इधर कोल्हू भी चलाना पड़ता है, मैंने इस बैल के गले में घंटी इसलिये बांधरखी है कि, इसको एकवार आकर चला-देता हूं तो यह चलने लगजाता है, तब मै अपने घरका काम धंधा करने चला जाता हूं, और इसकी घंटीका ध्यान रखता हूं, जबतक यह बैल चलता रहता है तबतक घंटी बोलती रहती है, जब यह चलते २ खड़ा होजाता है तब घंटी नहीं बोलती है। मैं समझ जाता हूं कि बैल खड़ा होगया, तब मैं फिर आकर इसको चला देता हूं। इसी प्रकार जब २ खड़ा होजाता है इसी घंटीसे मैं समझजाता हूं और इसको आकर चला-दिया करता हूं।

इतना सुनकर फिलौसोफर साहब बोले कि, यदि यह बैल खड़ाही खड़ा सिर हिलाया करे तो तुम कैसे समझोगे कि चलरहा है वा खड़ा है? तेलीने उत्तर दिया, हुजूर! हमारा बैल इतना पढ़ाहुआ नहीं है जितना हुजूर पढ़े हैं। एक पुरुष दूसरा उसी स्थानपर इनबातोंको सुनरहा था, सुनते ही फिलौसोफ़र साहबकी बुद्धि पर बड़े ज़ोरसे हंसा। फ़िलौसोफ़र साहबने पूछा, तू क्यों हंसता है? उसने उत्तरदिया

आपकी इस बुद्धि पर । बस मेरे श्रोतागण इस दृष्टान्तके मर्मको समझगये होंगे ।

प्यारे श्रोतृगण ! मैं मुक्त कण्ठसे कह सकता हूं कि, उस ब्रह्म देवने हमलोगोंके सुख सम्पादन करने के लिये नाना रूपसे अवतार लिया है । देखिये हमारे चलने फिरने तथा नाना प्रकारके व्यवहार करने के लिये अपनी ज्योतिः स्वरूपका अवतार लेकर सूर्य बनगया है । हमारे भोजनके लिये नाना प्रकारके अन्नों और औषधियों में रस प्रदान करने के लिये अमृत स्वरूपका अवतार लेकर चन्द्रमा बनगया है । हमारे घरों को उजाला करने तथा रोटी पकाने और नाना प्रकारके हवन इत्यादि कर्मोंको साधन करनेके लिये अग्निरूप होकर अवतार लिया है । हमारे प्राणोंको स्थिर रखने के किये वायु होकर अवतार लिया है । हमारी प्यास की शान्ति के लिये जल होकर अवतार लिया है । एवम् प्रकार जब हमारे शारीरिक कल्याणके लिये भिन्न रूपोंमें अवतार लेकर प्रगट होरहा है तो क्या वह दयासागर हमारे आत्मिक कल्याणके निमित्त व्यास, वामन, राम, कृष्ण इत्यादिका अवतार नहीं लेसकता? अवश्य लेता है, लेचुका है, और आगेभी कल्की इत्यादि अनेक अवतारोंको धारण करेगा।

अब मैं एकभक्तकी कथा सुनाताहूं, जिनसे यह बोध होजावेगा कि, वह दयासागर करुणानिधान अपने भक्तोंके लिये किस प्रकार वार २ अवतार लेता है ?

कथा माधवदासजी की ।

यह माधवदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, पहले गृहस्थ थे, धन सम्पत्ति भी अच्छी थी, बड़े विद्वान् थे, इनको वेदव्यासका अवतार मानते है । जैसे वेदव्यासजीने वेदोंका विभाग कर नाना प्रकारके शास्त्र, महाभारत, और पुराण इत्यादि बनाये, इसी प्रकार माधवदासजी ने भी भगवद्भक्ति और भगवत् प्रेमके विषय नाना प्रकारके ग्रन्थोंकी रचना कर

संसारमे भगवद्भक्तिका प्रचार किया। जब आपकी धर्मपत्नीका देहान्त हो-गया तब आप यह विचारने लगे कि, यह संसार सार रहित है, इसमें कुछ सार नहीं है, मिथ्या है, इसमे पचनेसे अन्तमें कुछ हाथ नहीं आता, रीता हाथ जाना पड़ता है, और भगवतसे विमुख रहना पड़ता है। ऐसा विचार आप एकबारगी घर छोड़ श्री जगन्नाथपुरीमें जा समुद्रके किनारे पड़रहे, और भगवत्‌की माधुरी मूर्त्तिके ध्यानमें मग्न रहने लगे। भगवत्‌के प्रेममे कभी हंसते, कभी रोते, कभी गाते, कभी नाचते। ऐसे कई दिवस बीतगये, बिना अन्नपानीके भजन करते रहगये। इधर श्री जगन्नाथदेवने यों विचारा कि, मेरे मन्दिरमें मुझको तो हजारों मन मिष्टान्न भोग लगे, और मेरा परम भक्त माधवदास भूखाही रहे, ऐसा उचित नहीं है। ऐसे विचार श्री जगन्नाथदेवने सुभद्राजीको यह आज्ञा दी कि, सोनेके थालमें भांति २ के पक्वान्न और मिष्टान्न लेकर माधवदासके पास जा उनको खिलाओ! सुभद्राजी जब थाल लेकर माधवदासजीके समीप पहुंची तो उनको ध्यानमें मग्न पाया। यद्यपि सुभद्राजी के प्रकाशसे माधवदासजीके नेत्रोंमें कुछ प्रकाशसा देखपड़ा और नूपुरके शब्दभी कानोंमें आये, पर भगवत्‌के स्वरूपमें मग्न रहनेके कारण आखें नहीं खोली। सुभद्राजी ध्यान को तोड़ना अनुचित समझकर थाल आगेमें रखकर चली गईं। कुछ कालके पश्चात् जब माधवजीने आंखें खोली तो देखा कि, सामने भोजनके पदार्थ सोनेके थालमें रखे हुए है। विचार किया, हो न हो, यह श्रीजगन्नाथदेवजीकी मेहमानी है, दूसरा कौन मेरे लिये ऐसे उत्तम सोनेके थालमें ऐसा उत्तम भोजन रख जावेगा। प्रेममें मग्न होकर और अपने भाग्यकी सराहना करके आनन्द पूर्वक अश्रुपात करते हुए भोगलगाया और उस थालको अलग रखदिया। इधर मन्दिरके पुजारियोंने जब कपाट खोला तो सोनेके थालोंमेंसे एक थाल नहीं पाया। ढूंढने लगे। ढूंढ़ते २ जब समुद्रके किनारे पहुंचे तो थाल देखा। माधवदासजी को चोर और धूर्त्त जानकर बेतोंसे मारा।

माधवजी हंसने लगे और ईश्वरकी इच्छा ऐसी ही जानी। इधर श्री-जगन्नाथदेवने पण्डोंको स्वप्न दिया कि, तुमने जो माधवदासजीको बेत मारी उसकी चोट मैंने मेरे ऊपर अंगीकार की है, क्योंकि वह मेरा परम भक्त है, इसी कारण मैं तुम लोगो पर कुपित हूं। यदि तुम लोग मेरे परम प्रेमी माधवके चरणोंमें गिरकर अपना अपराध क्षमा न करा• ओगे तो तुम्हारा नाश करडालूंगा ? ऐसे स्वप्न होते ही पण्डे दौड गये और माधवदासजी के चरणोंको पकड़ अपना अपराध क्षमा करवाया।

माधवदासजी के प्रेमकी यह दशा थी कि, जब कभी मन्दिर में-दर्शनको जाते थे तो दर्शन करते २ भगवत्की माधुरी मूर्त्तिमें ऐसे ध्या-नावस्थित और मग्न होजाते थे कि, शरीरकी सुधि एकदम भूलजाते थे और मन्दिर हीमें वैठे रहजाते थे। कपाट बन्द करनेके समय भगवत् इच्छासे पुजारीको नहीं देखाई पडते थे।

संयोगवशात् प्रारब्धकी गतिसे एकवार माधवजी के पेट में मुररा का रोग होगया, अतिसारके कारण समुद्रके किनारे जापडे। जव अत्य-न्त निर्बल होगये और अपनेहाथोंसे जललानेकी शक्ति न रही तव भगवा-न् आप सेवकका रूप धारणकर उनकी सेवामें तत्पर होगये। उनको अपने हाथोंसे धोते थे, और शौच इत्यादिके समय जल पहुंचादिया करतेथे। माधवदासजी अपने मनमें विचारने लगे कि, यह कौनसा सेवक है जो विना प्रयोजन इस प्रकार की सेवा किया करता है ? विचारते २ उनकी समझमें यह वात आई कि, हो न हो यह भगवत् स्वयं सेवामें तत्पर हैं। इतनी वात समझमें आतेही व्याकुल हो भगवत्के चरणों पर गिरकर प्रार्थना करने लगे कि, हे नाथ! मुझ ऐसे पतितके लिये इतना क्लेश सहकर मेरे दास्यभावमें भेद डालना उचित नहीं है। मैं तो आपका किं-कर हूं।

भगवत्ने उत्तर दिया कि, हे माधव! मुझे अपने भक्तोंका क्लेश देखा नहीं जाता, इसलिये मै स्वयं प्रगट होकर उनके दुःखमे सहायता क-

रता हूं। माधवजीने कहा कि, हे भगवन्‌ ! आपतो अपनी इच्छामात्र से इस रोगको दूर करसकते थे फिर इतना क्लेश करनेकी आवश्यकता क्यों ? भगवत्‌ने उत्तर दिया, माधव तू नहीं जानता कि, संचित और आगामी कर्म तो ज्ञानसे नष्ट होते है और प्रारब्ध भोगसेही नष्ट होता है, यह मेरा नियम बांधाहुआ है, इसी कारण मैं सदा अपने भक्तोंकी सेवामे तत्पर होजाया करता हूं, और नियम को भी स्थिर रखता हूं, क्योंकि यह नियम भंग होजाने से सृष्टिकर्ममें दोष उत्पन्न होता है। दूसरी बात यह है कि, बहुतेरे चंचल और विश्वासरहित प्राणी जिनके हृदय में धृति नहीं है ऐसा कहा करते है कि, यदि संसारके कुटुम्बियोंको छोड़ त्यागी होजाऊ और अकेला वनमें जा बसूं तो जब कभी कठिन रोग शरीरमें होजावेगा तब कौन रक्षा करेगा ! इसलिये मै तेरे इस रोगमें सहायता कर और तेरे रोगके लिये प्रगट हो संसार को यह उपदेश किया कि, जिस समय हृदयमें तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो तो निःशंक और निःसन्देह सब छोड़ छाड़ वनमे जा मेरेमें चित्त लगावे, रोगादिके दुःखोंकी कोई भी चिन्ता न करे, मै स्वयं सदा सर्वदा ऐसे दुःखोमें सहायता करने को तयार हूं। सो हे माधव ! अब मेरे दोनों काम होगये, सृष्टिके नियमका भी पालन होगया औ संसारके त्यागियोंको उपदेश भी होगया। अब ले मै तेरा रोग नाश करदेता हूं। इतना कह भगवत्‌ तो अन्तर्ध्यान होगये और इधर माधवजीका रोग इसप्रकार जाता रहा कि, देखनेवालों को एकाएक बोध ही नहीं होता था कि, यह कभी रोगग्रस्त हुएथे वा नहीं। माधवदासजीकी यह महिमा ऐसी फैली कि उनके आसपास मनुष्यों की बहुत भीड़ होने लगी। तब माधवजी अपनेको गुप्त करनेके लिये कुछ बावलासा बन इधर उधर शोर मचाया करते और द्वार २ भीख मांगा करते थे। एक दिन किसी स्त्रीके द्वार पर भिख मांगने गये, वह स्त्री घरमें चौका देरही थी मारे क्रोधके उसी चौकाका पोतना * माधवदासजीके सि·

* पोतना उस कपड़ेको कहते है जिसमें मट्टी गोबर लगाकर स्त्रियां घरोमें चौका देती हैं औ लापता हैं।

रपर देमारा। माधवजी बड़े प्रसन्न हुए, और उस पोतनेको धोकर, सुखा कर, भगवत्के मन्दिरमें जा उसकी बत्ती जलाई, जिसका यह प्रताप हुआ कि उस पोतनेकी बत्तीसे जैसे २ मन्दिरमें प्रकाश फैलने लगा वैसे २ उस स्त्रीके हृदयमें भी प्रकाश होना आरम्भ हुआ, यहांतक कि वह स्त्री परम भक्त होगई, और अहर्निश भगवतके ध्यानमें मग्न रहनेलगी। एक दिन अकस्मात् माधवदासजीके चरणोंमें जागिरी और उनकी कृपाका अनेक धन्यवाद दिया। माधवदासजी भगवतकी यह महिमा देख परम प्रसन्न हुए।

एक बार एक पण्डित देशदेशान्तरोंसे दिग्विजय करताहुआ श्री जगन्नाथपुरीमें आया और सुना कि, माधवदासजी विद्वानशिरोमणि गिने जाते हैं, उनसे शास्त्रार्थके लिये हठ किया। माधवदासजी ने शास्त्रार्थ को एक निरर्थक कार्य जानकर, और भगवत्भजनमें बाधा समझकर उस पण्डितको एक पत्र लिखकर हस्ताक्षर करदिया कि, माधवदास हारा औ पण्डित जीता। जब वह पण्डित उसपत्रकोलेकर काशीजीमें गया और पण्डितोंकी सभामें खोला तो उसमें यह लिखापाया कि, माधवदास जीता औ पण्डित हारा। यह लीला पंडितकी समझमें नहीं आई, मारे क्रोध के आग भबूला होगया, और श्री जगन्नाथपुरीमें पहुंचकर माधवदास जीको बहुत गालियां दीं और बोला कि, देख ! मैं तुझको मुह काला कर, गदहे पर चढ़ा, नगरमें फिराऊंगा। माधवदासजी तो चुप रहे. पर जिस दिन शास्त्रार्थ निरूपण हुआ था उस दिन श्री जगन्नाथजी स्वयं माधवदासजीका रूप धारण कर उस पंडितसे शास्त्रार्थ कर उसको परास्त किया और उसका मुह काला कर गदहे पर चढवा नगरमें फिराना आरम्भ किया, और आप बालक बन सौ दो सौ बालकों को संगले उसकी अच्छी धूल उड़ाई। माधवदासजीने उसकी ऐसी दुर्दशा सुनी तो भगवत् के समीप आकर बहुत प्रार्थना की कि, ऐसे पंडितकी ऐसी दुर्दशा करनी

उचित नहीं है। यद्यपि यह अपनी विद्याके अहंकारसे भगवत् विमुख है। तथापि हे नाथ! इस पंडित पर तो दयाही की जावे, और छोड़दिया जावे, । भगवत् तो अन्तर्ध्यान होगये पर माधवदासजीने स्वयं उस पंडित को गदहेसे उतारा और बहुत प्रार्थना कर अपराध क्षमा करवाई।

एक बार श्री माधवदासजीके चित्तमें व्रजकी यात्राकी लालसा उत्पन्न हुई। व्रजकी यात्रामें जारहे थे, मार्गमें एक बाई भोजन कराने लेगई, जब आप भोजन करने लगे तो श्यामसुन्दर साथ २ बैठे भोजन कररहे थे। वह बाई भगवत्के कोमल सुकुमार स्वरूपको देख रोनेलगी, और माधवजीसे पूछा कि, भगवन्! वह कोमल सुकुमार बालक जो आप संग लाये हैं, किसके कुमार हैं? इनके माता पिता कैसे कठोर चित्त हैं कि, ऐसे छोटे बालक को आपके संग करदिया है। माधवदासजीने जो गर्दन फिराकर देखा तो भगवत्का दर्शन पातेही सुध बुध भूलगये, पश्चात् शरीरकी सुधि होने पर उस बाई की तीन बार परिक्रमा की, और कहा कि, तू बड़ी भक्ता है जिसको श्यामसुन्दरने ऐसे दर्शन दिया।

किसी ग्राममें एक सेठ रहता था, जो भगवद्भक्तोंमें अत्यन्त स्नेह रखता था, माधवदासजीने उसे किसी समय वचन दिया था कि, तेरे घर पर आऊंगा, सो उसके घर गये, वह सेठ कहीं बाहर चलागया था उसकी स्त्रीने माधवजीकी बड़ी सेवा की, उसके मकानके छत पर एक महन्त रसोई बनारहा था उस महन्तसे कहा कि, माधवदासजीके लिये भी रसोई बनादो! महन्तने झुंझला कर कहा कि, यहां ऐसे वैसे की रसोई नही बनती। निदान वह स्त्री बोली कि, भगवन्! सामग्री तयार है रसोई बनालीजावे। माधवजीने कहा, रसोई बनाना तो नहीं बनेगा जो कुछ तयार हो देदे मैं भोग लगालूंगा। उस स्त्रीने दूध लादिया आप भोग लगाकर आगे चले और कहगये कि तेरा पति आवे तो उसे कहदेना कि माधवदास जगन्नाथी आया था। पीछेसे वह सेठ जब घरमें आया अपनी स्त्रीसे माधवदासजीका वृत्तान्त सुनकर झट दौड़ा और

मार्गमें उनका दर्शन पाया। बड़ी प्रार्थनाकी कि, भगवन् ! एक बार और गृहको पवित्र किया जावे। माधवदासजी जब सेठके साथ आये तब महन्त उनकी महिमा सुनकर चरणों पर गिरा और अपने उद्धारका उपाय पूछा। माधवदासजीने उपदेश किया कि, तुम श्री हरिद्वारमें जाकर साधुओंका जूठन सेवन करो जब कहीं ठिकाना लगेगा। उस महन्तने ऐसा ही किया

माधवदासजी वृन्दावन आयें, वहा वृन्दावनचन्द्रका दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर व्रजकी परिक्रमा करने लगे, आनन्द पूर्वक अपनी इच्छानुसार जहा चित्त रमजाता वहांही व्रजकिशोरके ध्यानमें मग्न हो पडरहा करते। एक बार भाडीरबनमें पहुंचे, वहां कुछ पानी बरसने लगगया, उस स्थान पर एक वैरागी रहता था, उसके स्थानमें जाकर टिकना चाहा, पर उस मूर्ख वैरागीने उनको टिकने न दिया। प्रायः वैरागियोंका ऐसाही कठोर स्वभाव औ वज्र हृदय होता है कि, उनको किसी पर दया नहीं आती"। निदान बहुत दुखी होकर एक वृक्षके नीचे पानीमें भींगते खड़े रहे। इतनेमें उस वैरागीने अपने लिये तस्मै बनाकर जब आगे रक्खा और भोजन करने चाहा तो सब कीड़े होगये। वैरागीने माधवदासजीका प्रभाव जाना, उनको ढूंढकर अपने स्थान पर लेगया, और अपना अपराध क्षमा करवाया। माधवदासजीने क्षमा करके हरिभजनकी रीति बताई तबसे वह वैरागी हरिभक्त होगया।

व्रजकीयात्रा समाप्त करके वहांसे चलनेके समय अत्यन्त उदासहुए, कई दिन तक अन्न पानी नहीं ग्रहण किया, फिर व्रजचन्दने प्रगट होकर दर्शन दिया, और समझाया कि, हे माधव ! तू उदास न हो मै तो सदा तेरे साथ हूं। तेरे इस शरीरसे मुझे अलौकिक प्रेम होगया है, तू मेरा है मैं तेरा हू। माधवदासजीने प्रार्थना की कि, भगवन् ! कबतक मुझको इस अपवित्र शरीरमें बच्चोंके समान मिथ्या खेलमें फँसा रहना होगा। हे नाथ ! अबतो यह शरीर भार जान पड़ता है, यदि आप इस पतित

के पापोंकी ओर दृष्टि करोगे, तो कहीं ठिकाना नहीं लगेगा, अब तो अपनायेकी लाज रखो ! अपने शरण लेलो ! भगवत्‌ने आज्ञा दी कि, माधव ! अभी तुझसे बहुत कुछ उपकार होनेवाला है, इसलिये तू कुछ दिन धीरज धर ! अपने स्थान पर जा ! जीवोंका उपकार कर ! और उनको उनके उद्धारका मार्ग बता ! फिर समय आनेसे तू मेरे लोकको चला आवेगा । इतना कह भगवत् अन्तर्ध्यान होगये और माधवजी श्री जगन्नाथजीको चले आये । माधदासजीके ऐसे२ अनेक चरित्र है विस्तार के भयसे नहीं वर्णन किया, क्योंकि अब समय नहीं है ।

इस कथासे मेरे श्रोता समझगये होंगे कि, जैसे माधवदासजीकेलिये कई बार प्रगट हो २ कर भगवान्‌ने दर्शन दिया इसी प्रकार भक्तोंकेलिये बार २ प्रगट हुआकरता है । इसीको अवतार लेना कहते हैं । मैं पहलेभी बार२ आप से इस व्याख्यानमें यही कहता चलाआता हूं कि, भगवत्‌के अवतारोंकी गिनती नहीं है । न जाने कब २ कहां२ किस २ प्रयोजनसे प्रति दिन उसके अनेक अवतार होते रहते हैं । अब मैं व्याख्यान समाप्त करता हूं सब मिल एकबार मधुर स्वरसे बोलिये ।

हरे राम ! हरे राम ! राम ! राम ! हरे हरे !
हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! हरे ! हरे !

॥ श्रीभवानीशंकरौ वन्दे ॥

पुस्तक मिलने का पता—

☞ श्री पं० सीताराम शर्म्मा पुस्तकाध्यक्ष

भारत त्रिकुटीमहल चन्दवार

मुजफ्फ़रपुर (विहार)